बोधिप्रभ

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

(मानित विश्वविद्यालय)

सारनाथ, वाराणसी-221007

अंक-3 वर्ष-2023

हिंदी के आदिकवि : सरहपा

वज्रयान की चौरासी सिद्धों की परम्परा में महासिद्ध सरहपा का विशेष स्थान है। यद्यपि चौरासी सिद्धों की सूची में आदिसिद्ध के रूप में लुईपा का नाम अंकित मिलता है, किन्तु बौद्धों में सरहपाद को आदिसिद्ध के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। सिद्धों के नाम के पीछे लगा "पा" 'पाद' का विकृत रूप है। 'पाद' शब्द सम्मान का द्योतक है। सरहपा के अन्य नाम राहुलभद्र, सरोजवज्र आदि भी हैं। इनका जन्म आठवीं शती में माना जाता है। ये जन्म से ब्राह्मण थे, जो कालान्तर में भिक्षु हो गये थे। भोट-देश में सिद्धेश्वर सरहपा 'महाब्राह्मण' के रूप में अधिक प्रचलित हैं।

सरहपा ने जब वज्रयान के मार्ग का अनुसरण किया, तब वे बाण (शर अथवा सर) बनाने वाले की कन्या को महामुद्रा बनाकर अरण्य में रहने लगे। वहाँ ये स्वयं भी बाण बनाने लगे। इसी कारण इनका नाम 'सरह' पड़ा। सिद्धेश्वर शबरपाद इनके प्रधान शिष्य थे। वज्रयान में सिद्धेश्वर सरहपाद से अनुस्यूत अनेक गुरुपर्व-क्रम आम्नाय प्रचलित हैं। राहुल जी द्वारा स्थापित सरह-वंश-वृक्ष के अनुसार गोरखनाथ और महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर भी सरह की परम्परा के ही थे। मूलतः सरहपा संत-सिद्ध परम्परा के आदि-सिद्ध के रूप में अध्यात्मिक तौर से भी नई दिशा दिखलाने वाले हैं।

सरहपाद महामुद्रा दर्शन एवं साधना के भी प्रवर्त्तक थे। इस साधना की गुरुपर्व-आम्नाय की अविरल धारा आज भी भोटदेश में विद्यमान है। सरहपाद चित्त की अपार शक्ति को मानते थे। उनकी दृष्टि में चित्त के यथाभूत स्वरूप को समझ लेना ही परम पुरुषार्थ है। जैसा कि उन्होंने *दोहाकोशगीति* में भी कहा है– *"चित्तेक चित्त सअल बीअ भव-णिब्बाणा जम्म विफुरन्ति। तं चिन्तामणिरुअं पणमह इच्छाफलं देइ॥"* (23) अर्थात् संसार और निर्वाण दोनों चित्त से ही स्फुरित होते हैं। चित्त सबका बीज है। वह चिन्तामणि रूप है। उसकी सेवा करो अर्थात् चित्त की यथाभूत प्रकृति को सहज रूप में जानो, वह इच्छाफल प्रदान करेगा।

कर्म के बंधन से मुक्त होने पर ही, मन या चित्त की मुक्ति संभव होने के सम्बन्ध में सरहपाद कहते हैं कि-*"बज्झइ कम्मेण जणो कम्म-विमुक्केण होइ मणमुक्को। मण-मोक्खेण अणुअरं पाविज्जइ परम णिब्बाणं॥* (24) इसी क्रम में, चित्त की प्रकृति को सहज रूप में जानने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं-*"चित्ते बद्धे बज्झइ मुक्के मुक्कइ णत्थि सन्देहो।"* (91) अर्थात् चित्त के बंधन से ही बंधता है, और चित्त के मुक्त होने से ही मुक्ति होती है। बल पूर्वक चित्त को काबू में न रखकर सहज समरस-भाव में रखने के लिए प्रेरित करते हुए कहते हैं-*"अरे बढ सहज गइ पर रज्जह। मा भव-गन्ध-बन्ध पडिबज्जह। एहु णिअ मण सबल चातर स चल। मेलहिं सहावट्ठाअ वसइ दोस-णिम्मल॥"* (94) अर्थात् इस चंचल तुरंग-मन को उसके स्वभाव पर छोड़ देने से वह निर्मल हो स्थिर हो जाता है। इसी तरह से, शून्यता और करुणा की अभिन्नता पर बल देते हुए कहते हैं कि-*"करुणा-रहिअ ज्जो सुण्णणिं लग्गा। णउ सो प वई उत्तिम मग्गा॥"* (17)

इस तरह, सरहपाद अध्यात्म-विद्या के साथ-साथ संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्य के भी लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे। अपभ्रंश के रूप में जो अश्लिष्ट भाषा सरहपाद के समय में प्राप्त होती है, उसी भाषा ने दोहा-चौपाई और पद्धरी के नए छन्दों से हिन्दी-जगत् को परिचय कराया, जबकि ये छंद प्राकृत या अन्य पूर्ववर्ती भाषाओं में नहीं मिलते। इसलिए सिद्ध कवि सरहपाद को हिन्दी-जगत् का आदि कवि मानने में अतिश्योक्ति नहीं लगती है। तन्युर-संग्रह में सरहपाद के संस्कृत एवं अपभ्रंश में अनेक कृतियाँ हैं। उनमें से 'दोहाकोषगीति' प्रसिद्ध है। सम्प्रति यही ग्रन्थ अपने मूल रूप में प्राप्त है, शेष सभी ग्रन्थ भोट-भाषा में अनूदित रूप में ही मिलते हैं। इनके चर्यागीतों की भाषा पूर्वी अपभ्रंश है और दोहाकोष के पहरों की भाषा पश्चिमी अपभ्रंश (शौरसेनी) है। निस्संदेह, हिन्दी जगत् में भी सरहपा को नयी भाषा और नये छन्दों के युग के आदि-कवि के रूप प्रतिष्ठा प्राप्त है।

बोधिप्रभ

[अंक-3]

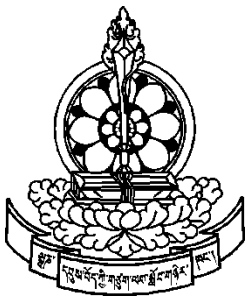

संरक्षक

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

सम्पादक

डॉ. सुनीता चन्द्रा

राजभाषा कार्यान्वयन समिति
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय)
सारनाथ, वाराणसी-221007

वर्ष-2023

प्रधान सम्पादक

डॉ. रामसुधार सिंह

सम्पादन समिति

प्रो. बाबूराम त्रिपाठी
श्री भगवान पाण्डेय
डॉ. हिमांशु पाण्डेय
श्री राजेश कुमार मिश्र
डॉ. शुचिता शर्मा
डॉ. ज्योति सिंह

प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी
डॉ. रमेशचन्द्र नेगी
श्री टी. आर. शाशनी
डॉ. अनुराग त्रिपाठी
डॉ. सुशील कुमार सिंह

अंक-3, वर्ष-2023

प्रकाशक :

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-221007

मुद्रक :

सत्तनाम प्रिन्टर्स, पाण्डेयपुर, वाराणसी

राजीव गौबा
Rajiv Gauba

मंत्रिमंडल सचिव
भारत सरकार
CABINET SECRETARY
GOVERNMENT OF INDIA

सत्यमेव जयते

G20 भारत 2023 INDIA

संदेश

हिंदी दिवस के शुभ अवसर पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। भाषा सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान का भी महत्वपूर्ण साधन है। विविध बोली-भाषाओं और संस्कृति वाले भारत जैसे विशाल देश में हिंदी एक समृद्ध भाषा के रूप में यह भूमिका स्पष्ट रूप से निभा रही है। पूरे देश में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के महत्व को ध्यान में रखते हुए, भारत की संविधान सभा ने 14 सितम्बर, 1949 को देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में अंगीकार किया था। तब से प्रत्येक वर्ष 14 सितम्बर को 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

आज भारत में नई-नई तकनीकों में भी हिंदी भाषा का उपयोग किया जा रहा है और इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में भी हिंदी महत्वपूर्ण योगदान दे रही है, चाहे वह 'आत्मनिर्भर भारत' की संकल्पना हो या फिर 'एक भारत-श्रेष्ठ भारत' की परिकल्पना। विगत वर्षों में सरकार का हिंदी के प्रचार-प्रसार पर अधिक बल दिए जाने से अब हिंदी में कार्य करना आसान हो गया है जो सरकारी कामकाज में बढ़ रहे हिंदी के प्रयोग में परिलक्षित होता है।

हिंदी दिवस के अवसर पर भारत सरकार के समस्त कार्यालयों में कार्यरत सभी वरिष्ठ अधिकारी और कार्मिक यह संकल्प लें कि हम अपने सरकारी कामकाज में हिंदी का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करेंगे। इससे हिंदी का व्यापक स्तर पर संवर्धन होगा और हमारे राष्ट्र का गौरव बढ़ेगा।

आइए, हम राजभाषा हिंदी के प्रति अपने संवैधानिक दायित्व और शासकीय प्रतिबद्धता को दोहराएं और निश्चय करें कि हम अपना अधिक से अधिक कार्य सरल और सुबोध हिंदी में करेंगे।

जय हिंद।

(राजीव गौबा)

Cabinet Secretariat, Rashtrapati Bhavan, New Delhi-110004
Tel: 011-23016696, 23011241 Fax: 011-23018638 E-mail: cabinetsy@nic.in

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी
कुलपति
Prof. Wangchuk Dorjee Negi
Vice Chancellor

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

संरक्षक की कलम से

भगवान् बुद्ध की प्रथम उपदेश स्थली सारनाथ की पावन धरती पर हरे-भरे पेड़-पौधों से आच्छादित, पर्यावरण के अनुकूल वातावरण में स्थित केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान न केवल भोट विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन का प्रमुख केन्द्र है, अपितु शोध विद्यार्थियों एवं देश-विदेश से आने वाले अध्येताओं के मध्य अपने समृद्ध संसाधनों के कारण अत्यन्त लोकप्रिय भी है। यह विश्वविद्यालय बौद्ध एवं बौद्धेत्तर भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं, बौद्ध एवं पाश्चात्य दार्शनिक विचारधाराओं तथा बौद्ध दार्शनिकों एवं वैज्ञानिकों के मध्य विचार-विनिमय एवं संचार का सशक्त मंच है। यहाँ मूलरूप से विलुप्त भारतीय बौद्ध वाङ्मय का उपलब्ध तिब्बती अनुवाद के आधार पर संस्कृत में पुनरुद्धार एवं तिब्बती भाषा में उपलब्ध कृतियों का संस्कृत एवं हिंदी में अनुवाद एवं नवसृजन का कार्य भी किया जाता है।

यह हर्ष का विषय है कि जब पूरा देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है एवं अमृतकाल में जी-20 एवं वाई-20 की गरिमामयी मेजबानी करते हुए नए कीर्तिमान गढ़ रहा है, उस कड़ी में संस्थान भी आजादी के अमृत महोत्सव के तहत हर घर तिरंगा, भारतीय भाषा महोत्सव, मेरी माटी मेरा देश, जी-20 एवं सांसद सांस्कृतिक महोत्सव जैसे विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन कर देश के लक्ष्य के अनुरूप कंधा से कंधा मिलाकर आगे बढ़ रहा है। साथ ही यह संस्थान भारत सरकार के आदेशों के अनुसार संवैधानिक प्रावधानों के अनुपालन के लिए भी कृत-संकल्प है। संस्थान राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के करीब है एवं राजभाषा की पत्रिका "बोधिप्रभ" का तीसरा अंक प्रकाशित कर अग्रणी भूमिका में है।

हजारों वर्षों से भारतीय सभ्यता की अविरल धारा हमारी भाषाओं, संस्कृति एवं लोक जीवन में सुरक्षित रही है। हमारी संस्कृति के संवर्द्धन में भारत के आस-पास की बोलियों और भाषाओं का योगदान अप्रतिम है। इन भाषाओं ने हिंदी को समृद्ध किया है। हिंदी उन समस्त भाषाओं की मूल परम्परा से पुष्पित-पल्लवित हुई हैं, जिन्होंने अपनी शब्द संपदा, रूप-शैली एवं अनेक पदों से हिंदी को लगातार समृद्ध किया है।

भाषाई समरसता को ध्यान में रखते हुए हिंदी तथा हमारी सभी भारतीय भाषाओं का विकास अत्यंत आवश्यक है। राजभाषा हिंदी किसी भी भारतीय भाषा की प्रतिस्पर्धी नहीं है, अपितु उसकी सखी है। हमारी सभी भाषाओं का विकास एक-दूसरे के सहयोग से ही संभव है। हिंदी भाषा की सहजता, सरलता और सुग्राह्यता इसे विशेष भाषा का दर्जा दिलाती है। बोल-चाल और विपुल साहित्य के साथ-साथ तकनीक के क्षेत्र में हिंदी का लगातार बढ़ता प्रयोग और नई पीढ़ी में इसकी लोकप्रियता एक उज्ज्वल भविष्य की तस्वीर प्रस्तुत करती है। ऐसी स्थिति में हमारा प्रयास होना चाहिए कि राजभाषा हिंदी को लेकर संविधान द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जाए।

मुझे आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि "बोधिप्रभ" पत्रिका राजाभाषा के प्रचार-प्रसार का वातावरण तैयार करने के साथ ही संस्थान परिवार को साहित्य सृजन के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा को निखारने का कार्य करेगी।

पत्रिका के लेखकों, रचनाकारों एवं सम्पादन समिति को हार्दिक शुभकामनाएँ ।

प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

डॉ. सुनीता चन्द्रा
कुलसचिव
Dr. Sunita Chandra
Registrar

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

सम्पादकीय

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा राजभाषा के प्रचार-प्रसार को गति देने के लिए राजभाषा की पत्रिका "बोधिप्रभ" के तीसरे अंक का प्रकाशन किया जा रहा है।

राजभाषा हिंदी आपसी संवाद के महत्वपूर्ण एवं मजबूत माध्यम से वैश्विक स्तर पर अपनी विशेष पहचान के साथ विश्व में अपना स्थान बना रही है। यह हम लोगों के लिए गौरव की बात है। विविधताओं से भरे हमारे देश को एकता के सूत्र में पिरोने में राजभाषा हिंदी का महत्वपूर्ण योगदान है। आजादी के अमृत कालखण्ड में भव्य और आत्म-निर्भर भारत के निर्माण में लोगों के बीच बातचीत एवं आपसी समझ विकसित करने में हिंदी भाषा के योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

यहाँ मैं उल्लेख करना चाहती हूँ कि भारत सरकार ने राजभाषा को गति देने एवं संविधान की भावना के अनुरूप यह नीति निर्धारित की है कि प्रत्येक शब्द का हिंदी विकल्प न बनाया जाए, बल्कि जनमानस में प्रचलित जटिल एवं तकनीकी शब्दों को ज्यों का त्यों देवनागरी लिपि में हिंदी भाषा में अपना लिया जाय। सिर्फ इस बात का ध्यान रखना है कि वे हिंदी भाषा की प्रकृति के अनुरूप हो तथा उनके प्रयोग से राजभाषा में किसी प्रकार की विकृति न आये।

स्वतंत्रता प्राप्ति से आज तक प्रत्येक मनीषी का सपना रहा है कि भारत में शिक्षा और तकनीकी के क्षेत्र में हिंदी का अधिक से अधिक प्रयोग किया जाय। हिंदी केवल राजभाषा ही नहीं, अपितु जन-जन की भाषा बने। समस्त कार्य अपनी भाषा में किया जाय।

पुनश्च, मुझे हार्दिक प्रसन्नता एवं संस्थान पर गर्व है कि तिब्बती शिक्षा का केन्द्र होने के बावजूद संस्थान परिवार निरंतर अपना रचनात्मक सहयोग "बोधिप्रभ" पत्रिका को प्रदान कर रहा है।

पत्रिका को आकर्षक, ज्ञानवर्धक एवं उपयोगी बनाने में आपके सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी।

सु. चन्द्रा

डॉ. सुनीता चन्द्रा

प्रो. समदोंग रिनपोछे
पूर्व निदेशक
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

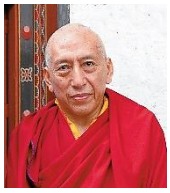

संदेश

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान मेरे स्वप्नों का मूर्तिमान स्वरूप है। मैं जब भी यहाँ आता हूँ और इस संस्थान को निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता हुआ देखता हूँ तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। यह संस्थान एक विशिष्ट संस्थान है, जिसका उद्देश्य अन्य शिक्षण संस्थाओं से विरल है। इस संस्थान की स्थापना के केन्द्र नालंदा मूल की तिब्बती विद्या और बौद्ध परम्परा का संरक्षण एवं संवर्द्धन रहा है। इस परम्परा में बौद्ध दर्शन, न्याय, प्रमाण और साधना प्रक्रिया के साथ-साथ अन्य सामान्य विद्यायें जैसे- चिकित्सा विद्या, कला, ज्योतिष, शब्द, काव्य सभी समाहित हैं। मुझे प्रसन्नता है कि उपर्युक्त सभी विद्याओं के साथ यहाँ अनेक आधुनिक विद्याओं का भी अध्ययन-अध्यापन एवं शोध कार्य हो रहा है।

वर्तमान समय में मेरे आह्लाद का एक विशेष कारण यह भी है कि संस्थान के राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा राजभाषा के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु निष्ठापूर्वक कार्य किया जा रहा है और इस उद्देश्य की सम्पूर्ति के लिए 'बोधिप्रभ' का प्रकाशन प्रतिवर्ष किया जा रहा है। किसी समाज तथा राष्ट्र की अस्मिता उसकी भाषा से जुड़ी होती है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा है। किसी भी कार्यालय के समस्त कार्य जब देश की राजभाषा में होते हैं, तो सभी को गौरव की अनुभूति होती है। मैं व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि कार्यालयों में राजभाषा के प्रयोग के प्रति जागरूकता बढ़ रही है। आज सरकारी कार्यालयों में राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार की प्रेरणा से इसका अनुपालन किया जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि संस्थान के सभी विभाग स्वेच्छा से इस कार्य को सफल बनावें और 'बोधिप्रभ' उनके इस कार्य में सहायिका बने।

मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि इस संस्थान की अनेक योजनाओं के अन्तर्गत बौद्ध दर्शन एवं तिब्बती विद्या आदि विषयों से संबंधित ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद बड़ी संख्या में प्रकाशित हो चुका है और अभी भी हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि इनका सरलतम रूप पत्रिका में भी प्रकाशित

कराये जायें। इसी प्रकार 'सोवा रिग्पा' के कार्यों एवं लाभों को पत्रिका के माध्यम से आमजन तक पहुँचा सकते हैं।

मेरा विश्वास है कि 'बोधिप्रभ' संस्थान के लिए एक ऐसा मंच प्रदान करेगी जहाँ से संस्थान-परिवार के सभी सदस्य अपनी सृजनात्मक क्षमता का पूर्ण उपयोग करते हुए समाज एवं संस्कृति के उन्नयन में अपना समग्र अवदान दे सकेंगे। संस्थान के छात्र-छात्राओं के लिए यह पत्रिका और अधिक उपयोगी हो सकेगी, जहाँ से उनकी कारयित्री प्रतिभा का प्रस्फुरण हो सकेगा। पत्रिका राजभाषा के माध्यम से राष्ट्र गौरव का शोध जागृत करे, ऐसी मेरी शुभकामना है।

मैं 'बोधिप्रभ' के संरक्षक, संपादक तथा सम्पादक मण्डल के सदस्यों के साथ इससे जुड़े अन्य सभी लोगों को बधाई देता हूँ और पत्रिका की मंगलमय यात्रा की शुभकामना देता हूँ।

प्रो. समदोंग रिनपोछे

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	शीर्षक	लेखक	पृ.सं.
1.	भारतीय भाषाओं में संवाद और बहुभाषिकता	प्रो. निरंजन सहाय	1-11
2.	हिंदी, हिंदुस्तानी और भारतीय संस्कृति	ओम निश्चल	12-23
3.	बदलते हम बदलती हिन्दी : जिम्मेदारी किसकी	प्रो. रचना शर्मा	24-29
4.	प्रजातांत्रिक मूल्यों का संरक्षण एवं मीडिया तथा उसकी भाषा : एक विश्लेषण	डॉ. राजेश चन्द्र पाण्डेय	30-37
5.	खड़ी बोली हिन्दी की उत्पत्ति एवं विकास	डॉ. रवि गुप्त मौर्य	38-47
6.	राष्ट्रलिपि : नागरी लिपि	डॉ. हरिसिंह पाल	48-55
7.	राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 एवं भारतीय भाषाएँ	डॉ. अनुराग त्रिपाठी	56-61
8.	राजभाषा हिन्दी का आधुनिक स्वरूप	एस. पी. सिंह	62-65
9.	हिन्दी को संस्कृत से 'दायभाग' में प्राप्त विशाल शब्द-सम्पदा	डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय	66-69
10.	भोटी भाषा	स्तानजीन तोनयोद	70-73
11.	दक्षिण भारतीयों की नजर में प्रेमचंद और उनका साहित्य	डॉ. रामसुधार सिंह	74-79
12.	राष्ट्रीय एकता का आधार है हमारी भाषा	भगवान पाण्डेय	80-82
13.	भाषा और संस्कृति	एम. एल. सिंह	83-85
14.	अंग्रेजी के दौर में हिन्दी भाषा की स्थिति	अंकिता सिंह	86-88
15.	बौद्धधर्म की विश्वव्यापी समरसता	प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी	89-97
16.	तिब्बत देश में प्रख्यात भारतीय महान् आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति का योगदान	डॉ. गेशे लोब्संग दोर्जे रबलिङ्	98-105
17.	त्रिपिटक : संक्षिप्त परिचय	डॉ. विजयराज वज्राचार्य	106-116
18.	उपासिका विशाखा की संक्षिप्त जीवनी	डॉ. छेरिङ् डोलकर	117-123
19.	भारत के शोध क्षितिज विस्तार का उपक्रम होगा नेशनल रिसर्च फाउंडेशन	डॉ. सुनीता चंद्रा	124-126
20.	योगनिद्रा एक चिकित्सा	डॉ. अरुण कुमार राय	127-130
21.	सूचना समाज और मानव का भविष्य	राजेश कुमार मिश्र	131-136

22.	महातीर्थ डिल-बु-री (घण्टापाद-गिरि) तथा गन्धोला का स्फुटार्थ-प्रदीप नामक तीर्थ-लेख	अनुवादक- टी. आर. शाशनी एवं डॉ. छेरिङ् डोलकर	137-143
23.	भाग्य और कर्म	प्रमोद सिंह	144-147
24.	प्राचीन भारत में विधवा विवाह - एक विचारणीय प्रश्न ?	डॉ. मधुर गुप्ता	148-150
25.	बच्चों का भविष्य : हमारा दायित्व	डॉ. विश्व प्रकाश त्रिपाठी	151-155
26.	फ़िलहाल महिलाओं ने संभाल रखा है श्रम का 76.2% हिस्सा !	डॉ. हुमा कयूम	156-160
27.	ईश्वरीय सम्प्रत्य	डॉ. शुचिता शर्मा	161-162
28.	भारत और नारी	ओजस शांडिल्य	163-167
29.	धर्म	रीना पांडेय	168-169
30.	कविता	डॉ. रमेश चन्द्र नेगी (माथस)	170-172
31.	भारत माँ की बिंदी हिंदी	दीपंकर	173-174
32.	ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी	डॉ. विश्व प्रकाश त्रिपाठी	175
33.	इंसान बनके देख	डॉ. सुशील कुमार सिंह	176
34.	अधूरी-जिन्दगी	अमित कुमार विश्वकर्मा	177
35.	दैनिक उपयोग के शब्द		178-179
36.	पारिभाषिक शब्दावली		180-181
37.	राजभाषा अधिनियम-1963 की धारा-3(3) के अन्तर्गत आने वाले दस्तावेज, आठवीं अनुसूची की भाषाएं एवं क,ख,ग क्षेत्र		182
38.	भाषा से संबंधित कार्यक्रम		183-194

•

नोट - पत्रिका में दी गई रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं।

भारतीय भाषाओं में संवाद और बहुभाषिकता

—प्रो. निरंजन सहाय—

भारतीय भाषाओं में संवाद का सिलसिला बहुत पुराना है। यह एक दिलचस्प तथ्य है कि भारत में भाषाओं की दुनिया में पाँच अंतरवर्ती धाराएँ विकसित-निर्मित होती रहीं। वे वृहत जनसमुदाय द्वारा बोली-बरती जाती रही हैं। उनमें जबरदस्त संवाद एवं अकादमिक सम्पर्कों का उत्साह प्राचीन काल से जारी है। यह एक अनकहा सा तथ्य रहा कि प्राय: भारत के मध्य क्षेत्र की भाषा को अखिल भारतीय संवाद भाषा के रूप में स्वीकारोक्ति मिलती रही। लौकिक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अवधी, ब्रज, खड़ी बोली ने इसी सिलसिले में अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया। सरहपा, कबीर, नामदेव, नरसी मेहता, आंडाल जैसे शिखर रचनाकारों ने अखिल भारतीय भाषिक और सांस्कृतिक छवियों के निर्माण में अपनी भूमिका निभायी।

रामकथाएँ, निर्गुण अभिव्यक्तियाँ, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की सामूहिक रंगतें, किसानों, स्त्रियों आदि के संघर्ष और वेदना गीत आदि अनेक आवाजों का प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में लगभग एक साथ मुखर होना यह प्रकट करता है कि भारतीय भूमि पर एक-दूसरे का हाथ पकड़ साथ चलने का अभ्यास और सिलसिला पुराना है। आवश्यकता इस बात की है कि अकादमिक दुनिया में इन समवेत स्वरों को खंड-खंड में न देखकर एक विराट जन अभिव्यक्ति के रूप में परखा जाय, ताकि एक-दूसरे की उपलब्धियों और शक्ति का सकारात्मक उपयोग सम्भव हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शैक्षिक यात्राओं और शोधों में भारतीय सांस्कृतिक एकता के भाषायी पक्ष, मातृभाषा की ताकत और बहुभाषिकता की विराट चेतना को समाहित करने की उत्कट चाहत रखती है।

भारतीय भाषाओं और साहित्य में अन्तर्सम्बन्ध के विभिन्न पक्षों, अंतर्वस्तु और रूप की समानता के आग्रहों, भाषा रूपों की सामान गतियों, विभिन्न विधाओं में सर्जना के बहुविध पक्षों और साथ ही उनकी सम्वादधार्मिता की सांस्कृतिक निरन्तरता के विविध धरातलों से सम्बन्धित पक्षों का हम सहज ही अनुभव कर सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय ज्ञान परम्परा को अहम् भूमिका प्रदान करती है, जिसे वैश्विक प्रतिस्पर्धा के आलोक में अधिकाधिक कारगर तरीके से लागू करना है। यह आधुनिक भारतीय भाषाओं और शास्त्रीय भाषाओं के माध्यम से ही सम्भव है। हिन्दी

भारत की सर्वाधिक बोली-बरती जाने वाली भाषा है। इसका स्रोत संस्कृत है। जनपदीय भाषाएँ इसके लिए प्राणवायु का काम करती हैं। द्रविण भाषा परिवार, मुंडा-आस्ट्रिक भाषा परिवार, तिब्बती-चीनी भाषा परिवार और अण्डमानी भाषा परिवार से भी हिन्दी का गहरा सम्बन्ध है।

इसी तरह भारतीय भाषाओं में ध्वनि साम्यता और विषयवस्तु साम्यता के भी अनेक गवाक्ष हैं। इन्हें सहचर शब्दों, एक ही शब्द की पुनरावृत्ति से विशेष प्रयोजनों को हासिल करने के सिलसिले जैसे विविध सन्दर्भों में देख सकते हैं। विषयवस्तु के भी अनेक गवाक्षों में समानता के सिलसिले हैं। सभ्यता की विकास यात्रा में अनेक नई दृष्टियों ने भारतीय भाषाओं को समृद्ध किया है। इन सब विषयों पर विस्तारपूर्वक विचार की विविध संभावनाएँ हैं।

भारतीय समाज भाषाओं के मामले में अनूठा है। भारतीय परिदृश्य में यह दृश्य आम है कि पहली मर्तबा भी जो बच्चा/बच्ची विद्यालय आता है/आती है, उसे भी एक से अधिक भाषाएँ आती हैं। यानी उन भाषाओं के व्यवहारगत प्रयोगों से वे परिचित होते हैं। कहना न होगा बहुभाषिकता भारतीय समाज की सामान्य विशेषता है। शिक्षा संबंधी नए अनुसंधानों ने यह साबित किया है कि बहुभाषिकता की विशेषताओं के स्वीकार से बेहतर शैक्षिक उपलब्धियों को हासिल किया जा सकता है। भारतीय समाज स्वभावत: बहुभाषी है। भारतीय समाज में घरेलू, सामाजिक और सार्वजनिक जीवन की विभिन्न छवियों में बहुभाषी प्रकृति का आसानी से अहसास होता है। भारत में बोली-बरती जाने वाली भाषाओं को यदि हम एक विराट भाषायी छतरी के अन्दर समझने की कोशिश करें तो इसके लिए भारतीय भाषा परिवार पद से सम्बोधित किया जा सकता है। इसकी अंतरवर्ती धाराओं में पाँच भाषा परिवारों (भारोपीय, द्रविण, इंडो आस्ट्रिक, तिब्बती-चीनी और अंडमानी भाषा परिवार) को चिह्नित कर सकते हैं। भाषायी समृद्धि के बहुविध स्वरों वाले देश में बहुभाषिक स्थितियों की मौजूदगी नितान्त स्वाभाविक है। इस मुद्दे को थोड़ी गहराई से समझने का प्रयास करें। यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या भारत महज इसीलिए बहुभाषी देश है कि भारतीय संविधान ने हिन्दी, अंग्रेजी समेत आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं को वैधानिक दर्ज़ा दिया है ? दरअसल 'बहुभाषिक परिदृष्य' से जुड़े अनेक दृश्य हैं। उदाहरण के लिए जिस भाषा की अपनी कोई लिपि न हो या जिसकी कोई बहुत लंबी-चौड़ी विरासत न हो तब भी उस भाषा का भारत के बहुभाषिक परिदृश्य में बड़ा योगदान आँका जा सकता है। 1971 की जनगणना रिपोर्ट के मुताबिक भारत में केवल

20-22 भाषाएँ ही नहीं बल्कि 1632 भाषाएँ हैं। (1971 की जनगणना के बाद केवल आँठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं की जनगणना रिपोर्ट दर्ज़ की जाने लगी।) इसी तरह एक और बात उल्लेखनीय है कि कुछ लोग भारत को बहुभाषिक इसलिए भी मानते हैं कि हमारे यहाँ टेलीविजन, अखबार, रेडियो, दफ्तर, शिक्षा, कचहरी आदि का कामकाज एक साथ अनेक भाषाओं में होता है। यानी बहुभाषिकता के बहुविध संदर्भ भी हैं। बहुभाषी होना हमें एक दूसरे से जुड़ने ही नहीं उन्हें समझने में भी सहायक होता है। लोग रोजगार, शिक्षा या विभिन्न कामों के सिलसिले में एक जगह से दूसरी जगह पहले की अपेक्षा ज़्यादा आवागमन (आवाजाही) करने लगे हैं। इस आवागमन के चलते विभिन्न संस्कृतियों के निर्माण, आर्थिक संरचना, सामाजिक संरचना आदि में अलग भाषा-भाषी लोगों का योगदान भी हम सहज ही रेखांकित कर सकते हैं। हमारे देश में अनेक भाषाएँ व्यवहार में लायी जाती हैं। 2001 की जनगणना रिपोर्ट के मुताबिक भारत के 28 राज्यों और 8 केन्द्रशासित प्रदेशों में चार भाषा परिवारों (भारोपीय, द्रविड़, मुंडा या आस्ट्रिक और तिब्बती-चीनी परिवार) की 234 मातृभाषाएँ, 100 वर्गीकृत भाषाएँ और 10 लिपियाँ हैं। ऐसे बहुभाषिक देश में निश्चित तौर पर भाषा का सवाल बेहद अहम और उलझा हुआ है। जाहिर है बहुभाषिकता को जब हम ज्ञानार्जन के एक महत्त्वपूर्ण संसाधन के रूप में देखते हैं, तब हमें अनेक विशेषताओं को भी समझना होगा। किसी एक भाषा के भीतर भी विविधताएँ हैं। जैसे हिन्दी को ही लीजिए। असल में हिन्दी बहुरूपा है। संपर्क भाषा, राजभाषा, प्रयोजनमूलक भाषा, शिक्षायी हिन्दी, अंतरराष्ट्रीय भाषा, ज्ञान की भाषा वाणिज्य-व्यवसाय की भाषा के रूप जैसे संदर्भों में हम हिन्दी की पहचान बखूबी कर सकते हैं। हिन्दी अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क में विभिन्न रूपों में विकसित हुई जो एक अर्थ में जनतान्त्रिक विकास की विशिष्ट कसौटी कही जा सकती है। गुजराती के संपर्क में हिदी का रूप अलग ढंग से निखरता है दूसरी तरफ बांग्ला, असमिया, उड़िया के संपर्क में विकसित होने वाली हिन्दी का स्वरूप अलग है तो पंजाबी, डोगरी जैसी पश्चिमोत्तर भाषाओं के संपर्क की हिन्दी का रूप अन्य ढंग से विशिष्ट है। उसी तरह द्रविण भाषाओं जैसे तेलुगु के संपर्क की हिन्दी और सुदूर पश्चिम की मराठी, कोंकणी के संपर्क की हिन्दी का रूप अलग तरह की सुंदरता धारण किये हुए है। कुल मिलाकर हिन्दी के मोटे तौर पर चार या पाँच रूप ऐसे हैं जो अन्य भारतीय भाषाओं के संपर्क से वजूद में आये।

हम कितनी भाषाओं में बात कर सकते हैं ? संभव है हम हिन्दी, भोजपुरी, ब्रजभाषा, कन्नड़, मलयालम, मैथिली, वज्जिका, अंगिका, अंग्रेजी, बांग्ला जैसी भाषाओं में अपने

भाव प्रकट करते/करती हों। यह भी संभव है कि हम अनेक ऐसे गाने गाते/गाती हों जिनमें भोजपुरी, मगही, मैथिली, वज्जिका, अंगिका, पंजाबी, मराठी या अन्य भाषाओं के शब्द बड़ी सहजता से आ जाते हों। यानी हम स्वभावतः बहुभाषिक हैं। दरअसल बहुभाषिकता हमारी कमज़ोरी नहीं ताक़त है। इस ताकत का बेहतर शिक्षणशास्त्रीय उपयोग संभव है। ज्ञान की पारंपरिक समझ के मुताबिक भाषा के दो ही वर्ग हैं । एक वह जिसे अध्यापक/अध्यापिका शुद्ध या मानक भाषा कहते हैं और जिनमें विभिन्न लेखन परम्पराएं मौजूद रहती हैं। दूसरी वह जिसे प्राय: अशुद्ध भाषा कहने का प्रचलन है। सच्चाई तो यह है कि जिसे हम 'मानक भाषा' कहते हैं उसके बारे में हमारी समझ एकदम सतही और पारंपरिक होती है। मानक भाषा के निर्माण में केवल संस्कृत ही नहीं अनेक जनपदीय (स्थानीय) भाषाओं के साथ ही अंग्रेजी, उर्दू या अन्य भाषाओं से भी शब्द लिए गये हैं। हिन्दी के शब्द संसार का सिरा केवल तत्सम ही नहीं तद्भव, देशज और विदेशज से भी जुड़ा है। यानी शब्द के ये सभी रूप शुद्ध हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में मैथिली, ब्रजभाषा, अवधी आदि अनेक परंपराओं के दिग्गज साहित्यकारों की मौजूदगी रही है। बिहार में मैट्रिक की बोर्ड परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में 1953 तक हिन्दी की किताब (गद्य/पद्य संग्रह) में मैथिली, भोजपुरी आदि भाषाओं की रचनाएँ शामिल रहतीं थीं। उसी तरह जो भाषा हम लिखते हैं या बोलते हैं, उसकी जड़ें विभिन्न समुदायों की अनेक भाषाओं की स्मृतियों का अंग है। ऐसे में भाषा के लचीलेपन और बहुरूपा स्वभाव को संवेदनशीलता से समझने/जानने की ज़रूरत है। विभिन्न जातीय और सामुदायिक और सांस्कृतिक स्मृतियाँ भाषाओं के माध्यम से प्रकट होती हैं। कहना न होगा कक्षा में अध्ययन-अध्यापन के सिलसिले में यही बहुभाषिकता की सचेत चेतना पाठ की अवधारणात्मक और संकल्पनात्मक समझ को सरलता और सुगमता से प्रकट करने में सहायक होती है।

बिहार और उत्तर प्रदेश की कुछ भाषाओं के सन्दर्भ में इसे समझने का प्रयास करें। उदाहरण के लिए हिन्दी वाक्य 'मैं किताब पढ़ूँगा' या 'मैं चिट्ठी लिखूँगा' के विभिन्न भोजपुरी रूपों को देखा जा सकता है –

आरा-बक्सर	बेतिया-सिवान-गोपालगंज	छपरा
हम किताब पढ़ब।	हम किताब पढ़ेम।	हम किताब पढ़ेब।
हम चिट्ठी लिखब।	हम चिट्ठी लिखेम।	हम चिट्ठी लिखेब ।

उक्त वाक्यों में क्रियाओं के अलग-अलग रूप नज़र आ रहे हैं। यानी भोजपुरी की बहुरूप प्रकृति स्पष्ट हो रही है। यही भोजपुरी जब उत्तर प्रदेश में जाती है तब अलग रंग में उसका रूप निखरता है। बनारस की भोजपुरी का यह रूप 'काशिका' कहलाता है। पुरानी कहावत है- 'कोस-कोस पर भाषा बदले, चार कोस पर बानी।' दरअसल बहुभाषिकता भाषा की एक संपन्न स्थिति है। उसके व्यापक संदर्भों की चर्चा करने से पहले बिहार की विशेष बहुभाषिक परिस्थिति पर भी एक नज़र डाली जाए। यही बात अन्य राज्यों के सन्दर्भ में भी सही है ।

भारतीय भाषा-विविधता को और अधिक गहराई से समझने के लिए एक उदाहरण देखिए। हम जानते हैं कि एक ही भाव की अभिव्यक्ति अनेक भाषाओं में हो सकती है। जैसे- इन वाक्यों को देखिए -

1) मुझे रसगुल्ला अच्छा लगता है। - हिंदी
2) हमरा रसगुल्ला नीमन लागेला। - भोजपुरी
3) हमरा रसगुल्ला नीक लगइत अछि। - मैथिली
4) हूं रसगुल्ला पसंद करूं छूं। - गुजराती
5) हमरा रसगुल्ला ठीक लागइछैय। - अंगिका
6) मने रसगुल्लो हाऊ लागे। - मेवाड़ी (राजस्थानी)
7) ननगे रसगुल्ला बहाळा इस्ता। - कन्नड़

यदि इन अभिव्यक्तियों पर गौर किया जाए तो देखा जा सकता है कि भले ही एक कथन अलग-अलग भाषाओं में लिखा गया है लेकिन उनमें संरचनागत समानता झलकती है। हां, हो सकता है कि कुछ भारतीय भाषाओं में इतनी समानता न हो। लेकिन असल बात यह है कि भाषायी विविधता अभिव्यक्ति की विविधता और सृजनात्मकता के द्वार खोलती है।

वस्तुत: भारतीय लोग विभिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न भाषाओं का सहज प्रयोग करने की क्षमता रखते हैं। भाषा के क्षेत्रा में किए गए शोध यह बताते हैं कि बहुभाषिकता का संज्ञानात्मक विकास और शैक्षिक उपलबद्धि से गहरा सकारात्मक रिश्ता है । एन.सी.ई.आर.टी. के 'भारतीय भाषाओं का शिक्षण' आधार पत्र में अनेक शोधों का उल्लेख करते हुए बताया है कि कैसे भाषिक व्यवहार की विविधता - बहुभाषिक समाजों में संप्रेषण को बाधित करने के बजाय सहायता ही प्रदान करती है। 'हमारी शिक्षा व्यवस्था को दबाने की बजाय बनाए रखने और प्रोत्साहित करने का भरपूर प्रयास करना चाहिए।

..... हमारी शिक्षा व्यवस्था ने हमारे समाज की सबसे बड़ी खासियत - बहुभाषिकतावाद से मिलते आ रहे फायदों को दबाने/कमज़ोर करने का काम किया है। 'अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' वाली स्थिति से बचना हो तो तत्काल हमारी शिक्षा व्यवस्था के योजनाकारों को शिक्षा में भाषा की उक्त खासियत की महत्ता को समझते हुए उक्त खासियत को केंद्रीय स्थान देने की पहलकदमी करनी होगी।' (भारतीय भाषाओं का शिक्षण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2009 : 20-21)

बहुभाषिकता के संदर्भ में हुए अध्ययनों ने यह साबित कर दिया कि जो बच्चे सीखने के दौरान एक से अधिक भाषाओं में कुशलता का विस्तार करते हैं, उनमें सीखने की प्रक्रिया के साथ ही रचनात्मकता और सामाजिक सहिष्णुता जैसे गुणों का बेहतरीन विकास होता है। दो भाषा बोलने वाले बच्चे न केवल अन्य भाषाओं पर अच्छा नियंत्रण रखते हैं, बल्कि शैक्षिक स्तर पर भी ज़्यादा रचनात्मक होते हैं, साथ ही उनमें ज़्यादा सामाजिकता और सहिष्णुता भी पाई गई है। भाषिक ख़जाने की व्यापक व्यवस्था पर नियंत्रण उन्हें विविध प्रकार की एवं विविध स्तर की सामाजिक परिस्थितियों से कुशलतापूर्वक जूझने में सहायक होता है। साथ ही इस बात के पक्के सबूत मिले हैं कि बहुभाषी बच्चे विविध सोच में ज़्यादा अच्छा प्रदर्शन करते हैं। (रा.पा.2005:21) राष्ट्रीय शिक्षा नीति के खंड, 'बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति' खंड के संकल्प का उल्लेख करना तर्कसंगत होगा, सांवैधानिक प्रावधानों, लोगों, क्षेत्रों और संघ की आकांक्षाओं और बहुभाषावाद, राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने की ज़रूरत का ध्यान रखते हुए त्रिभाषा सूत्र को लागू किया जाना जारी रहेगा।'

त्रिभाषा सूत्र

बहुभाषिकता से ही जुड़ा एक मसला 'त्रिभाषा सूत्र' का है। अनेक शिक्षा आयोगों ने इसे लागू करने की सिफारिश की। ज़रूरत इस बात की है कि हम संक्षेप में त्रिभाषा सूत्र पर एक नज़र डालें। 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भाषा के विकास के प्रश्न पर गहन रूप से विचार किया गया। इसके द्वारा सुझाए गए प्रस्तावों से स्थिति में सुधार नहीं लाया जा सका और ये आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने पहले थे। इस तरह की स्थिति कई जटिल मुद्दों पर ध्यान नहीं देती है और यह धारणा बना लेती है कि 1960 से भाषाओं के क्षेत्र में कुछ नहीं हुआ। यहाँ तक कि 1968 की नीति का ठीक से क्रियान्वयन भी नहीं हुआ। 1968 की नीति के अनुसार:

- स्कूल में पहली भाषा जो पढ़ाई जाए वह मातृभाषा हो या क्षेत्रीय भाषा

- द्वितीय भाषा

हिंदी भाषी राज्यों में द्वितीय भाषा कोई भी अन्य आधुनिक भाषा हो या अंग्रेजी, और गैर हिंदी भाषी राज्यों में द्वितीय भाषा हिंदी या अंग्रेजी होगी।

- तृतीय भाषा

हिंदी भाषी राज्यों में तीसरी भाषा अंग्रेजी होगी या एक आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ी जा रही हो।

गैर हिंदी भाषी राज्यों में तीसरी भाषा अंग्रेजी होगी या एक आधुनिक भारतीय भाषा जो द्वितीय भाषा के रूप में न पढ़ी जा रही हो।

यह सुझाव दिया गया था कि प्राथमिक स्तर पर अनुदेशन का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए तथा राज्य सरकारों को इस सूत्र को अपनाने के साथ-साथ इसे गंभीरतापूर्वक कार्यान्वित करने की कोशिश करनी चाहिए जिसमें हिंदी भाषी राज्यों में आधुनिक भारतीय भाषाओं में से मुख्य रूप से एक दक्षिणी भाषा हो, हिंदी और अंग्रेजी के अतिरिक्त और ग़ैर हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी हो।

विश्वविद्यालय तथा कॉलेज स्तर पर भी हिंदी और/या अंग्रेजी के उपयुक्त पाठ्यक्रम उपलब्ध होने चाहिए ताकि इन भाषाओं में विद्यार्थी अपने स्तर के हिसाब से कुशलता हासिल कर सकें।

त्रिभाषा सूत्र भाषा सीखने के लिए कोई लक्ष्य या सीमा निर्धारित नहीं करता है, बल्कि यह तो उस यात्रा का प्रस्थान बिंदु मात्र है, जिसमें लगातार फैलते हुए ज्ञान की खोज और देश की भावनात्मक एकता की तलाश है। इस तरह अपनी मूल भावना में त्रिभाषा सूत्र हिंदी भाषी राज्यों के लिए हिंदी, अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं, ख़ासकर दक्षिण भारतीय भाषा का, और हिंदीतर भाषी राज्यों के लिए क्षेत्रीय भाषा, हिंदी व अंग्रेजी का प्रावधान प्रस्तावित करता है। लेकिन इसके प्रति प्रतिबद्धता से ज़्यादा इसका अतिक्रमण करते हुए ही पाया गया है। हिंदी राज्य हिंदी, अंग्रेजी व संस्कृत तथा गैर हिंदी राज्य ख़ासकर तमिलनाडु द्विभाषी सूत्र यानी तमिल और अंग्रेजी से काम चलाते हैं। तथापि बहुत सारे राज्य त्रिभाषा सूत्र को अपनाए हुए हैं, जैसे उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और कुछ अन्य राज्य।' (भारतीय भाषाओं का शिक्षण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद 2009 : 13-14) इस प्रकार त्रिभाषा सूत्र की अनुशंसाएँ भारत के बहुभाषिक परिदृश्य में भाषायी जनतंत्र की स्वीकृति की वकालत करती है।

संविधान में बहुभाषिकता के संदर्भ को संवेदनशीलता से समाहित किया गया है। अनुच्छेद 350 के आलोक में प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए मातृभाषा में शिक्षा उपलब्ध कराने की दिशा में सभी राज्यों को प्रयास करने हैं। अपवादस्वरूप अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों और मदरसों को छोड़ दें तो विद्यालयों में हिंदी लगभग तमाम बच्चों के लिए आमतौर पर प्रथम भाषा है, क्योंकि ऐसे परिवार बहुत कम हैं जिनकी घरेलू भाषा और प्रथम स्कूली भाषा के बीच फर्क न हो। यह आवश्यक है कि प्रारंभिक कक्षाओं में शिक्षकों द्वारा घरेलू भाषा अथवा स्थानीय बोली को स्वीकार किया जाए। हिंदी के साथ ऐसे बच्चों का परिचय बढ़ाया जाना चाहिए, लेकिन उनकी भाषा उच्चारण तथा शब्दावली को शुरू में बगैर सुधरे स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि शिक्षक मानक हिंदी अथवा सही हिंदी का प्रयोग ही न करे, क्योंकि आज की नई परिस्थितियों में शिक्षार्थियों के लिए हिंदी आगे बढ़ने का महत्वपूर्ण आधार होगी। बिहार में बहुभाषिकता को संसाधन के रूप में विकसित करने की दृष्टि से एक नायाब प्रयोग किया गया है। 'भाषा सेतु' शीर्षक से बिहार की पाँच स्थानीय भाषाओं (भोजपुरी, मगही, मैथिली, बज्जिका, अंगिका) में पहली और दूसरी कक्षा की किताबों में आये मानक हिन्दी के शब्दों का रूपान्तरण प्रस्तुत किया गया है। जाहिर है बच्चे जिस भाषा में अभिव्यक्ति कौशल की सामर्थ्य लेकर स्कूल में आते हैं, उसकी स्वीकृति के बिना शिक्षा संभव नहीं। बहुभाषिकता की शिक्षायी समझ का मतलब स्थानीय भाषा में शिक्षण सामग्री का अनुवाद नहीं है। शिक्षा की दुनिया में इसका मतलब है सीखने के क्रम में स्थानीय भाषा की विभिन्न रंगतों का रचनात्मक उपयोग। बहुभाषिकता की समझ हमें अन्य भाषा-भाषी समुदाय के प्रति संवेदनशील बनाती है। अन्य शब्दों में भाषागत समृद्धि के अनेक रूपों को सही तरीके से समझने के चलते हम एक-दूसरे की भाषा की इज़्ज़त करना सीखते हैं। कहना न होगा इस प्रक्रिया का असर शिक्षा के संवेदनशील विस्तार तक जुड़ता है। इतना ही नहीं एक शिक्षक/शिक्षिका के लिए इस प्रक्रिया का सिरा कक्षा में आनंद पूर्ण अध्ययन-अध्यापन से भी जुड़ता है। इस प्रकार बहुभाषिकता, न केवल बच्चे की अस्मिता का निर्माण करती है बल्कि वह भारत के भाषा-परिदृश्य का विशिष्ट लक्षण भी है। कहना न होगा उसका संसाधन के रूप में उपयोग, कक्षा की कार्यनीति का हिस्सा बनाना तथा उसे लक्ष्य के रूप में रखना रचनात्मक भाषा शिक्षण का कार्य है। निःसंदेह यह उपलब्ध संसाधन का बेहतर इस्तेमाल ही नहीं है बल्कि इससे यह भी सुनिश्चित होता है कि हर बच्चा स्वीकार्य और

संरक्षित महसूस करे और महज़ भाषिक पृष्ठभूमि के आधार पर किसी को पीछे न छोड़ दिया जाए।

भाषाओं के संदर्भ में संवैधानिक प्रावधान

भाषा जैसे संवेदनशील मुद्दे पर यह जानना बेहद ज़रूरी है कि भारतीय संविधान भाषाओं के संदर्भ में कौन-सा रुख अपनाता है। संविधान में धारा 343 से 351 तक हिंदी के राजभाषा रूप का विश्लेषण किया गया है । यानी प्रशासनिक भाषा के स्वरूपों पर संविधान अपना रुख स्पष्ट करता है। एक ऐसे देश में जहाँ अनेक भाषा परिवारों की भाषा बोलने वालों के बीच स्वाभाविक जनतंत्र है, वहां संविधान इस बात के लिए खास तौर पर सचेत रहा कि भाषाओं के नाम पर घमासान न मचे। भारतीय संविधान ने इस बात को सुनिश्चित किया कि विभिन्न अभिव्यक्ति-भाषाओं को समुचित स्थान मिले। इसी संदर्भ में आठवीं अनुसूची की व्यवस्था की गई। आठवीं अनुसूची में 1950 में 14 भाषाओं को शामिल किया गया । ये 14 भाषाएँ थीं- असमिया, बांग्ला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगु और उर्दू। इस सूची में 21वें संविधान संशोधन (1967) ने सिंधी भाषा को जोड़ा । इसी तरह 71वें संविधान संशोधन (1992) द्वारा कोंकणी, मणिपुरी और नेपाली तथा बानवेवां संविधान संशोधन (2003) द्वारा बोडो, संथाली, मैथिली और डोगरी भाषाओं को भी इस सूची में स्थान दिया गया। इस तरह फिलहाल संविधान में कुल 22 भाषाएँ शामिल हैं। इसके अतिरिक्त कई राज्य अपनी भाषाओं को इस सूची में शामिल कराने की कोशिश कर रहे हैं। यह सूची भाषाओं की संख्या पर रोक नहीं लगाती। आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं के पीछे सांस्कृतिक, राजनैतिक और इससे जुड़ी विभिन्न अस्मिताओं की स्वीकृति का संघर्ष उपस्थित है। कहना न होगा संविधान निर्माताओं ने भारत की बहुभाषिक विशेषता को स्वीकार कर आठवीं अनुसूची की व्यवस्था की। अब संविधान की भाषायी धाराओं यानी 343 से 351 तक के प्रावधानों पर एक नज़र डालना मुनासिब होगा।

भारतीय संविधान की धारा 343 : 1 के अनुसार 'भारत की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिंदी होगी। धारा 343 : ख के अनुसार अंग्रेजी को सह-राजभाषा का दर्जा दिया गया। अंग्रेजी को यह दर्जा शुरुआत में 15 वर्षों तक के लिए दिया गया था। हालाँकि 1963 के ऑफिशियल लैंग्वेज एक्ट के माध्यम से अंग्रेजी को हमेशा के लिए सह-राजभाषा का दर्ज़ा दे दिया गया। अनुच्छेद 345 के अनुसार राज्यों को अधिकृत किया गया कि वे विधि द्वारा उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से एक या अधिक अथवा हिन्दी को

राज्य की राजभाषा बनाएँ। अनुच्छेद 345 की पृष्ठभूमि में उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली राज्यों की राजभाषा हिंदी घोषित की गई। पंजाब में पंजाबी, महाराष्ट्र में मराठी तथा गुजरात में हिंदी व गुजराती भाषा को राजभाषा घोषित किया गया। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, उड़ीसा, असम और पश्चिम बंगाल ने क्रमशः तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, असमिया और बांग्ला को अपनी-अपनी राजभाषा बनाया। सिक्किम ने नेपाली, लेपचा, लिंबू और भूटिया को अपनी राजभाषाएँ घोषित किया। नागालैंड ने अंग्रेजी को अपनी राजभाषा बनाया। इसी तरह अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम तथा मेघायल ने किसी भाषा को राजभाषा नहीं बनाया लेकिन सरकारी कामकाज अंग्रेजी में चल रहा है। केन्द्र शासित प्रदेशों- चंडीगढ़, अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह और दादरा नागर हवेली पर केन्द्रीय राजभाषा नीति लागू होती है लेकिन पांडिचेरी की राजभाषा तमिल है।' (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रक्षिक्षण परिषद 2009 : 12-13)

यह बखूबी समझ लेना चाहिए कि राजभाषा के रूप में हिंदी और आठवीं अनुसूची में शामिल हिंदी के स्वरूप में अंतर है। जहाँ राजभाषा हिंदी के रूप में सरकार स्वीकृत मानकीकृत रूप का प्रयोग मान्य है, वहीं आठवीं अनुसूची में शामिल भाषा के रूप में हिंदी के विविध रंग हो सकते हैं। 'यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाओं का मानकीकरण नहीं किया गया है। जबकि राजभाषा हिन्दी के संदर्भ में भारतीय संविधान की धारा 343 से 351 के बीच इसके मानकीकृत रूप की चर्चा की गयी है। राजभाषा को समृद्ध् करने के लिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया गया। राजभाषा हिंदी में शब्द निर्माण के विशिष्ट वैधानिक प्रावधन हैं। शब्द निर्माण के लिए स्रोत के रूप में आधार भाषा संस्कृत को महत्व दिया जाता है। लेकिन भारतीय संविधान इस बात को लेकर खास तौर पर सचेत रहा कि हिंदी कहीं किसी विशेष स्रोत भाषा की प्रतिकृति मात्र न रह जाए। इस संदर्भ में धारा 351 की अनुशंसा देखी जा सकती है। इसके अनुसार 'हिंदी भाषा का इस तरह विकास और प्रोत्साहन दिया जाए ताकि यह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों को अभिव्यक्ति प्रदान कर सकने वाला माध्यम बन सके।' (ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी 2009, सामाजिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में शिक्षायी हिन्दी के स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन) संविधान में इस बात का भी प्रावधान है कि उच्च न्यायालय, सर्वोच्च न्यायालय और संसद की भाषा अंग्रेजी ही रहेगी। साथ ही संविधान प्रत्येक नागरिक को अपनी भाषा में राज्य को संबोधित करने का अधिकार प्रदान

करता है। अनुच्छेद 350 सातवें संशोधन अधिनियम, 1956 में, प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए भाषिक अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों को उनकी मातृभाषा में पठन-पाठन की बात की गई है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत की बहुभाषिकता जहाँ एक ओर भाषायी समृद्धि की ओर संकेत करती है, वहीं दूसरी ओर वह भाषा/भाषाओं के विकास के लिए सचेत प्रयासों की ओर भी इशारा करती है। इसके लिए शिक्षकों/शिक्षिकाओं की बड़े पैमाने पर तैयारी की आवश्यकता होगी, क्योंकि भाषा का जीवन के हरेक क्षेत्र में प्रयोग केवल भाषा शिक्षक ही नहीं वरन् पूरा विद्यालय तथा समाज सिखलाता है।

आचार्य, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

हिंदी, हिंदुस्तानी और भारतीय संस्कृति

—ओम निश्चल—

इसमें संशय नहीं कि हम पर अंग्रेजों का राज रहा, मुगलों का राज रहा, जिसके फलस्वरूप भारत में अंग्रेजी और उर्दू का बोलबाला बढ़ा। हम औपनिवेशिकता के अधीन थे, इसलिए हम पर शासकों की भाषाएँ थोपी गईं। किंतु कोई देश अपनी पहचान, अपनी संस्कृति और सभ्यता की पहचान अपनी भाषा या भाषाओं के जरिए ही रख सकता है। भारत एक बहुभाषी देश है, जहाँ संविधान की आठवीं अनुसूची की 22 राष्ट्रभाषाओं के अलावा भी कई भाषाएँ हैं, तमाम समृद्ध बोलियाँ हैं, जिन्हें बोली न कहकर भाषा ही कहा गया। वे सब मिलकर भारतीयता के हक में एक बड़े प्रभामंडल का निर्माण करती हैं। जैसे बिना अभिव्यक्ति के व्यक्ति मूक है, वैसे ही बिना अपनी भाषा या भाषाओं के कोई भी देश गूंगा है। फर्ज कीजिए भारत के हिंदी भाषी प्रदेशों में सब जगह अंग्रेजी फैल जाए, सब अंग्रेजी बोलते मिलें, गाँव, कस्बे, शहर सब जगह केवल अंग्रेजी हो; तो यह देखकर क्या किसी भारत का आभास होगा? क्या इससे भारतीय संस्कृति का अहसास होगा ? नहीं। इससे धीरे-धीरे भारतीयता और भारतीय संस्कृति के विलोपन का अहसास होगा।

कहना न होगा कि महात्मा गांधी हिंदी और हिंदुस्तानी के समर्थक थे। सर सुंदरलाल ने भी हिंदुस्तानी को बढ़ावा देने का काम किया। गांधी मुसलमानों के रहन-सहन, उनकी स्वीकार्यता को लेकर उदार थे, अपने प्रवचनों, अपनी बातचीत में वे हिंदुओं और मुसलमानों में एकता देखना चाहते थे। कहीं मुसलमानों को तंग किया जा रहा हो या हिंदुओं को सताया जा रहा हो तो इसके प्रति उनके मन में करुणा उपजती थी। वे दोनों कौमों को समझाने का यत्न जीवन भर करते रहे। उर्दू भी मुगल शासन के दौरान फूली-फली किंतु हिंदुस्तानी के विकास में उर्दू का भी अपना योगदान है, वे इस बात को नहीं भूलते थे। वे जानते थे कि उर्दू, जो हिंदी में सदियों से घुली-मिली है, उसे आत्मसात् किया जाए और एक ऐसी भाषा विकसित की जाए, जिससे आम आदमी उसे समझ सके, उसे बरत सके। गांधीजी खुद गुजराती थे, अंग्रेजी माध्यम से उच्च तालीम ली, किंतु बरसों अफ्रीका में काम करने व बैरिस्टरी करने के बावजूद उनके अंतःकरण में हिंदी, हिंदुस्तानी व भारतीयता के प्रति एक खास लगाव था। उन्होंने अपनी पेशेवर जिंदगी में कोट, बूट, सूट, टाई सब अपनाईं, पर अंत में धोती-लँगोटी में अपना कायांतरण कर भारत के प्रबुद्ध लोगों के साथ आम आदमी को यह सीख दी कि भारत यही है। धोती और लँगोटीवाला देश!

अपने इसी वेशभूषा में वे विश्वभर में जाने-पहचाने गए। गांधी केवल सादगी की मिसाल न थे, वे एक ऐसी जिद की मिसाल भी थे कि जो ठान लिया, वह किया। आज हड़तालें होती हैं, सत्ता बदलने के लिए, कुरसी हथियाने के लिए। गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन किया, सत्याग्रह किया, उपवास किया अंग्रेजों को भारत से बाहर का रास्ता दिखाने के लिए और इसके लिए उन्होंने उन्हें अंग्रेजी की लाठी से नहीं, हिंदी और भारतीय भाषाओं की लाठी से खदेड़ा। उनकी इस मुहिम में देश के कोने-कोने के लोग और विदेशों में रह रहे भारतीय- भारतवंशी शामिल थे। आज विदेश में कहीं भी धोती और कुरता या बंडी पहनकर निकल जाइए, लोगों के जेहन में गांधी की तस्वीर उभर उठती है। अपने इस देशी, स्वराजवादी चिंतन से गांधी विश्व में आइकॉन बन गए। उन्होंने भारत को विश्व में एक पहचान दिलाई।

आजादी की लड़ाई भी हमने हथियारों से नहीं लड़ी। हथियारों में हम अंग्रेजों के आगे कुछ न थे। हिंसा के मार्ग पर चलते हुए हम आजादी हासिल नहीं कर सकते थे। यद्यपि आजादी के समर्थक नेताओं में एक समुदाय ऐसा भी था, जो अंग्रेजों को सबक सिखाने के लिए हिंसक राह पर चलने, सैन्य आक्रमण करने की कार्रवाइयों को समर्थन देता था, पर गांधी की ऐसी शक्तियों से कभी नहीं पटी। वे अहिंसा को सबसे बड़ा हथियार मानते थे और हिंदुस्तानी को सबसे ज्यादा अभिव्यक्ति सक्षम भाषा। वे खादी को गरीबों का वस्त्र कहते थे। बाद में लोग कहने लगे, खादी वस्त्र नहीं, विचार है। दिल्ली के कनाट प्लेस में स्थित खादी ग्रामोद्योग भंडार में प्रवेश करते ही दाईं ओर बिल काउंटर पर देश के महान् नेताओं के विचार उनकी ही भाषा में लिखे हैं और यह खुशी की बात है कि एकाधिक नेताओं को छोड़कर सभी के विचार हिंदी में हैं।

हुकूमत की भाषा का अपना रोड रोलर होता है। अंग्रेजों ने यही किया। उनकी भाषा अंग्रेजी का रोडरोलर भारतीय भाषा-भाषियों पर चला, आज भी चल रहा है। आज भी वह भारत की राजभाषा है, जिसे 1965 में खत्म हो जाना चाहिए था तथा हिंदी को उसकी जगह मिल जानी चाहिए थी। गांधी अंग्रेजी जानते थे और अच्छी जानते थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू तो अंग्रेजी के ज्ञाता थे ही। पर इन दोनों नेताओं ने जनता को अकसर हिंदी में संबोधित किया। वे हिंदी का महत्त्व जानते थे; पर भारतीयों पर हुकूमत करनी है, जहाँ तमाम प्रदेश हिंदीत्तर हैं तो महज हिंदी से हुकूमत नहीं की जा सकती, यह बात भी उन्हें मालूम थी। इसलिए हुकूमत में अंग्रेजी बरकरार रही। पर गांधी अंत तक हिंदुस्तानी व खादी के समर्थक बने रहे। वे उस उर्दू का समर्थन नहीं करते थे, जिसमें ठूंस-ठूंसकर अरबी

व फारसी के शब्द डाले गए हों। जबकि हिंदुस्तानी के साथ ऐसा नहीं है। गांधी अपने प्रवचन हिंदी में ही दिया करते थे। उन्हें आम जनता की पसंद मालूम थी, इसलिए भाषा की कठिनाई नहीं महसूस होती थी। 18 अक्तूबर, 1947 को दिए अपने प्रवचन में उन्होंने पूछा था, "क्या अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा होनेवाली है ? बहुत साफ-साफ मैं कहना चाहता हूँ कि वह तो कभी हो ही नहीं सकती। इसमें पड़ने की कोशिश तक न करें। यदि करते हैं तो इसमें हमें हारना है।" (प्रार्थना प्रवचन, खंड 1, पृष्ठ 413) उनके इस विचार की जो भी फलश्रुति रही, पर इतना तय है कि 14 सितंबर, 1949 को जिस भाषा को संविधान में राजभाषा का दर्जा दिया गया, वह कोई एक सदी की भाषा नहीं, बल्कि वह तो सदियों की बोली जानेवाली भाषा रही है।

गांधी और हिंदुस्तानी

खड़ी बोली में लेखन का इतिहास भले एक-डेढ़ सदी पुराना हो, पर लेखन में हिंदुस्तानी लहजा सदियों पुराना है। सूरदास, कबीर, तुलसीदास, नानक, रैदास, मीरा ने जिस भाषा में लिखा, वह कोई संस्कृतनिष्ठ हिंदी नहीं, बल्कि आम लोगों की समझ में आनेवाली हिंदी थी। यही वजह है कि सदियों पहले लिखे गए संत साहित्य का प्रसार पूरे देश में तब हुआ, जब संचार का आज जैसा कोई त्वरित साधन न था। इन संतों को यह समझ थी कि हिंदी-हिंदुस्तानी में लिखकर पूरे देश में पहुँचा जा सकता है, किसी अन्य भाषा में नहीं। एक प्रवचन में गांधी ने हिंदुस्तानी की हिमायत में यह बात कही कि 'हमारे यहाँ हिंदी और उर्दू ये दो भाषाएँ हैं, जो हिंदुस्तान में बनीं और हिंदुस्तानियों द्वारा बनाई गई हैं। उनका व्याकरण भी एक ही रहा है। इन दोनों को मिलाकर मैंने हिंदुस्तानी चलाई। इस भाषा को करोड़ों लोग बोलते हैं। यह एक ऐसी सामान्य भाषा है, जिसे हिंदू और मुसलमान दोनों समझते हैं। यदि आप संस्कृतमय हिंदी बोलें या अरबी फारसी के शब्दों से भरी हुई उर्दू बोलें, जैसा कि प्रो. अब्दुल बारी बोलते थे तो बहुत कम लोग उसे समझेंगे। तो क्या हम द्राविड़स्तान मातृभाषा के तौर की चारों भाषाओं का अनादर कर दें? मेरा मतलब यह है कि वे पर अपनी-अपनी प्रांतीय भाषा को रख सकते हैं, मगर राष्ट्रभाषा के नाते हिंदुस्तानी को जरूर सीख लें।'

वे कहते थे, "यदि मैं अंग्रेजी में बोलना शुरू कर दूँ तो आपमें से बहुत कम लोग समझेंगे। 8-10 वर्ष परिश्रम करें, तब कहीं लँगड़ी अंग्रेजी हम सीख पाते हैं। इस तरह से तो सारा हिंदुस्तान पागल बन जाएगा। अतः अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती। वह

दुनिया की भाषा या व्यापार की भाषा रह सकती है, हालाँकि दुनिया की भाषा भी अभी तक कोई बाजाब्ता तय नहीं हुई है। हिंदुस्तान की भाषा तो हिंदुस्तानी ही रहनेवाली है। इसमें मुझे कोई शक नहीं है। प्रांतीय भाषाएँ अपनी- अपनी जगह बनी रह सकती हैं, परंतु सबसे ज्यादा लोग जो भाषा बोलते हैं, वह हिंदुस्तानी ही है।" उन्होंने कहा था कि दक्षिण भारत के लोगों को हिंदुस्तानी सीख लेनी चाहिए। इन्हीं उद्देश्यों से उन्होंने 'हिंदुस्तानी प्रचार सभाओं' की स्थापनाएँ कराईं। आज पूरे देश में साधारण हिंदी कहीं भी बोली और समझी जाती है। तमिलनाडु के शहरों में भी लोग अब हिंदी के उतने विरोधी नहीं रहे, जितना वे हिंदी के राजभाषा बनने और राजभाषा नियम लागू किए जाने के दिनों में थे। गांधी हिंदी साहित्य सम्मेलन से भी जुड़े थे, पर वहाँ बोली जानेवाली उच्चस्तरीय हिंदी के वे समर्थक नहीं थे, इसलिए उससे निकल आए। लोग उन पर तंज करते कि कहाँ हिंदी के समर्थक हुआ करते थे, कहाँ यह हिंदुस्तानी ? गांधी कहते थे, "मेरी हिंदी तो अजीब प्रकार की है। मेरी हिंदी वह नहीं है, जो साक्षर बोलते हैं। मैं तो टूटी-फूटी हिंदी बोलता हूँ। मगर आप समझ लेते हैं। मैंने तुलसीदास पढ़ लिया है, पर मैं हिंदी में साक्षर नहीं हुआ हूँ। उर्दू में भी साक्षर नहीं बना हूँ, क्योंकि मेरे पास उतना वक्त नहीं है।" वे कहते थे, "न मुझे हिंदी चाहिए, न उर्दू। मुझे गंगा-जमुना का संगम चाहिए। अगर मैं अकेला रहूँगा तो भी यही कहूँगा कि मैं तो हिंदुस्तानी को ही राष्ट्रभाषा मानता हूँ।" गांधी में यह बुनियादी समझ थी कि प्रांतों में प्रांतीय भाषाओं का प्रसार हो, पर देश में हिंदी-हिंदुस्तानी चले। आम नागरिकों की तरह वे यह जानते थे कि अंग्रेज भले चले जाएँ, अंग्रेजियत से हम मुक्त नहीं होनेवाले। यही वजह है कि आज आजादी के दशकों बाद भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए जो संसाधन भारत सरकार दे रही है, उसका शतांश भी अंग्रेजी को मुहैया न कराने के बावजूद अंग्रेजी तालीम के हर स्तर पर स्वीकार्य भाषा बनी हुई है। गांधीवादी चिंतक दिनकर जोशी ने क्षोभपूर्वक लिखा है कि 'तीन या चार वर्ष के छोटे-छोटे मासूमों को गले में फंदे के समान बँधी टाई लगाकर अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में जाते हुए देखते हैं, तब लगता है हम स्वराज से अभी काफी दूर हैं।' (हिंद स्वराज, पृष्ठ 41) कैसी विडंबना है कि गांधी के देहावसान के 75 साल बाद भी हिंदी एक अनामंत्रित अतिथि की तरह संविधान द्वारा प्रदत्त तथाकथित उच्च आसन पर विराजमान होकर भी जन-जन का कंठाहार नहीं बन पाई है !

संत कवियों की बानी

गांधी ने हिंदुस्तानी की ताकत संत कवियों को पढ़कर पहचानी थी कि कैसे देश भर में संत कवियों की पहुँच रही है। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम हर तरफ संतों के संदेश पहुँच

जाते थे। संतों के परिव्राजक स्वभाव की तरह हिंदी भी परिव्राजकों के पीछे-पीछे चलती रही है। यही वजह है कि यह हिंदी मीरा की जबान पर थी, तो सूरदास की जबान पर भी। नानक के पदों में यही हिंदी थी (चाहे वह गुरुमुखी में ही क्यों न हो) तो कबीर की साखी, सबद, रमैनी में भी यही हिंदी रही है। संत रविदास काशी के थे तो कबीर का भी काशी और मगहर से नाता था। तुलसी बाँदा के रहनेवाले थे, तो मीरा राजस्थान की। सूरदास का नाता मथुरा से था, तो सुंदरदास का दौसा, राजस्थान से। दादू के शिष्य रज्जब भी राजस्थान के थे। नानक का रिश्ता लाहौर से था, तो मलूकदास का इलाहाबाद से। ये सभी संत 13वीं शताब्दी से लेकर 16वीं शताब्दी के बीच हुए तथा अपनी 'सधुक्कड़ी' भाषा में रचनाएँ करते। पढ़े-लिखे कवियों के बीच आज भी निर्गुण-सगुण धारा के भक्त एवं संत कवियों की रचनाएँ जीवन की सच्ची सार्थकता का पाथेय हैं।

गांधी अपनी प्रार्थना सभाओं में सरल, सहज भाषा में लिखी प्रार्थनाएँ दुहराते थे। कभी सूरदास, कभी मीरा, कभी कबीर, कभी तुलसीदास, कभी मध्य प्रांत के संत तुकड़ोजी के भजन गाया करते। साधो मन का मान त्यागो, मों सम कौन कुटिल खल कामी, वैष्णव जन तो तेणे कहिए, हरि तुम हरो जन की भीर, इस तन-धन की कौन बड़ाई, सबसे ऊँची प्रेम सगाई, पानी में मीन पियासी रे, मोहिं सुन-सुन आवे हाँसी, किस्मत से राम मिला जिसको/उसने ये तीन जगह पाई/बिसर गई सब तात पराई/जब ते साधु संगत पाई/नहिं कोई बैरी बेगाना/सकल संग हमरी बन आई-जैसे भजन। हम जानते हैं कि सहज-सरल भाषा में लिखी गई प्रार्थनाओं का अपना असर होता है। प्रार्थनाएँ मन की शुद्धि के लिए होती हैं। गांधी सरल चित्त मनुष्य थे, पर वे देश में रहनेवाली हर कौम के प्रति सहिष्णु थे। विभाजन के दंश से गुजरते हिंदुस्तान में उनके विचारों की आलोचना भी होती थी, पर वे न केवल हिंदुओं के लिए बल्कि मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों के हितों के प्रति भी चिंतित रहते थे। गांधीजी को दूर-दूर से तार संदेश आते थे। उन्हें पूरे देश की खबर रहती थी कि किस इलाके में क्या हो रहा है। हिंदू-मुसलमानों के बीच यदि कहीं कोई संघर्ष है तो उसे दूर करने की उन्हें चिंता रहती थी। किसी इलाके में यदि हिंदू धर्म के लोग कुछ गलत करते थे तो वे उन्हें भी समझाते थे। प्रार्थना प्रवचन इसके लिए उपयुक्त स्थल होता था। यहाँ दिया गया उनका संदेश दूर तक पहुँचता था। कहना यह कि वे अंग्रेजी जानते हुए भी लोगों से बातचीत हिंदी में किया करते थे। उनका समाधान हिंदी में सुझाते थे। हिंदी, हिंदुस्तानी के प्रति उनका नजरिया बहुत समावेशी था।

भाखा बहता नीर

आज से सदियों पहले कबीर ने कहा था, 'संस्कीरत है कूप जल, भाखा बहता नीर।' पर हिंदी के निबंधकार कुबेरनाथ राय कबीर की इस अवधारणा से सहमत नहीं थे। वे संस्कृत को कुएँ का जल कहे जाने के संकुचित दृष्टिकोण के खिलाफ थे। उन्होंने इस शीर्षक से एक पूरा निबंध ही लिखा है। कुबेरनाथ राय कहते हैं, "संस्कृत कूपजल मात्र नहीं। उसकी भूमिका विस्तृत और विशाल है। वह भाषा-नदी को जल से सनाथ करनेवाला पावन मेघ है, वह परम पद का तुहिन बोध है, वह हिमालय के हृदय का 'ग्लेशियर' अर्थात् हिमवाह है। जब हिमवाह गलता है, तभी बहते नीर वाली नदी में जीवन-संचार होता है। जब उत्तर दिशा में तुषार पड़ती है तो वही राशिभूत होकर हिमवाह का रूप धारण करती है। जब हिमवाह पिघलता है, जो नदी जीवन पाती है, अन्यथा उसका रूपांतर मृतशैय्या में हो जाता है।" संस्कृत सारी भारतीय भाषाओं की जननी तो है, पर कुएँ की जल की तरह है। कुएँ का जल यानी जैसा पंडित वर्ग इस भाषा पर कब्जा जमाए रहा, इसे जनता में फूलने-फलने नहीं दिया। आसानी से अलभ्य। अप्राप्य, अग्राह्य । यों तो यह गौरव की बात है कि हमारे सारे आदिग्रंथ संस्कृत में हैं। वे जीवन की विविध आवश्यकताओं के लिए समय-समय पर लिखे गए, पर जनता में इसलिए संचरित नहीं हो सके कि वे संस्कृत में थे। पर संस्कृत वाङ्मय सहस्रबाहु है। ज्ञान-विज्ञान, धर्म-दर्शन और चिंतन तमाम सरणियों में प्रवाहित। यह और बात है कि संस्कृत में संस्कारित न होने के कारण संस्कृत के इन वाग्गेयकारों के सृजन एवं चिंतन का लाभ भारत की जनता नहीं उठा सकी।

इसकी वजह यह कि भारत की साक्षरता का दर पहले बहुत ही कम रहा है, पढ़ने-पढ़ाने के साधन आम लोगों के पास नहीं थे। आज के जैसी व्यावसायिक दक्षता और भाषाई पठन-पाठन इतना सघन नहीं था, इसलिए हिंदुस्तानियों का आधा जीवन तो अंग्रेजी सीखने में गुजर जाता है, तब भी वे अंग्रेजी में वैसी दक्षता हासिल नहीं कर पाते, जैसी अंग्रेजी मुल्कों के नागरिक। इसी तरह हमारे आर्षग्रंथ संस्कृत में होने के कारण उनमें पैठ केवल संस्कृतज्ञों की रही है। उसे हमारे पंडित-पुरोहितों ने भी आम जनता से दूर रखा। हमारे समय के बड़े कवि तुलसीदास ने इसीलिए संस्कृतज्ञ होने के बावजूद संस्कृत जैसी सुसंस्कृत भाषा में न लिखकर अवधी बोली में लिखा, जो कि हिंदी की पोषक बोली है। कबीर की भाषा भी सुधक्कड़ी है। वे भोजपुरी अंचल में जनमे, पर भाषा बहुत ही साफ-सुथरी और सहज रखी, जिससे आम जनता को उनकी बात समझ में आ जाए। प्रायः कबीर ने अपने समय की खड़ी बोली में लिखा। भोजपुरी में भी नहीं; पर हाँ, उनकी भाषा को लोक बोलियों

ने सींचा है। बोलियाँ हमारी संस्कृति का आईना हैं। अवधी बोली से अवध संस्कृति का प्रसार हुआ तो भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि बोलियों/भाषाओं से भोजपुरी, मगही एवं मैथिली संस्कृति का प्रसार हुआ। ये बोलियाँ सच कहें तो हिंदी की प्राणवायु हैं। हमारी भारतीय संस्कृति की धड़कनें हैं। सही मायने में यही हमारी जनभाषाएँ हैं। लोक बोलियाँ हैं। पर विडंबना है कि जैसे तमाम अस्मिताएँ अपनी पहचान आधुनिकता के आच्छादन में लुप्त हो रही हैं, हमारी तमाम बोलियाँ व भाषाएँ भी लुप्त होने के कगार पर हैं।

कहना न होगा कि लोकगीत लोक संस्कृति के विधायक तत्त्व हैं। हमारे जीवन के सारे संस्कारों का लोक बोलियों से गहरा रिश्ता है। हम रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संकलित 'ग्राम गीत' के सभी खंड देखें तो कैसे जन-जीवन के हर संस्कार, गतिविधि, यज्ञोपवीत, विवाह, विदाई, संतान जन्म, कटाई, रोपाई, निराई-गुड़ाई के लिए लोक-गीतकारों ने गीत रचे! यानी हमारे जीवन के प्रत्येक उत्सव में गीत-संगीत का अपना योगदान है। आज बिहार की शारदा सिन्हा गाती हैं तो उनके कंठ से भोजपुरी व बिहार की लोक भाषाओं व संस्कृतियों का परिचय मिलता है। उनके साथ पूरी भोजपुरी संस्कृति गाती है, मालिनी अवस्थी गाती हैं तो उनके साथ जैसे पूरा पूर्वी भारत गाता है, पूरी अवधी संस्कृति गाती है, पूरा लोक गाता है। इसलिए हिंदी व उसकी बोलियों के माध्यम से न केवल हिंदी; बल्कि भारतीय संस्कृति, अर्थात्, हिंदुस्तानी संस्कृति का बोध होता है। 'भाखा बहता नीर' से जिस निर्मल प्रवाही भाषा का आशय लिया जाता है, आज वैसी निर्मलता नदियों के जल में कहाँ! अव्वल तो नदियों के प्रवाह अवरुद्ध लगते हैं, दूसरे, नदियों का जल भी कितना गंदला हो चुका है, जैसे हमारी भाषा मटमैली हो रही है। आज अंग्रेजी के मोह में हिंदी में आगत एक नई हिंगलिश का जन्म हो चुका है। हिंदीभाषी पढ़े-लिखे लोग भी शुद्ध हिंदी या हिंदुस्तानी बोलने में संकोच करते हैं।

प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और आभासी सोशल मीडिया पर प्रयुक्त हिंदी को देखें तो एक मिली-जुली भाषाई संस्कृति का बोध होता है। मीडिया ने खिचड़ी भाषा ही सही, हिंदी बोलने का एक वातावरण तो तैयार किया है। पर प्रिंट मीडिया के कुछ अखबारों की खबरों को देखें तो वह भाषा को और सरल बनाने के चक्कर में उसमें अंग्रेजी के शब्द ज्यों-के-त्यों लिये जाने को प्रोत्साहित कर रहे हैं। विडंबना है कि अंग्रेजी भी दूसरी भाषाओं के शब्दों व दूसरी भाषाई संस्कृतियों के शब्द अपने में सहेजती है, पर अंग्रेजी व्याकरण और डिक्शन में गूँथकर। पर हिंदी में ऐसे शब्द ऊपरी सतह पर जल पर तेल की तरह तैरते नजर आते हैं और हिंदी की भाषाई संस्कृति को प्रदूषित करने का काम करते हैं।

भारतीय संस्कृति और हमारी बोलियाँ

कहना न होगा कि भारतीय संस्कृति अपनी बोलियों में सुरक्षित है। जब तक हम अपनी बोलियों से अपना रिश्ता बनाए रखेंगे, भारतीय संस्कृति, हिंदुस्तानी संस्कृति को कोई खतरा नहीं है। बिना लोक भाषाओं, बोलियों, लोक कथाओं, लोक गीतों व कहावतों के कोई भाषाई संस्कृति बनती है भला ! इन लोकतत्त्वों व लोक वार्त्ताओं में हमारी भारतीय संस्कृति के गुणसूत्र छिपे हैं। लोक में अनेक मिथक भी अनुस्यूत हैं। इन्हीं मिथकों की देन है कि पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, सूरज, चाँद, सितारों और पंचतत्त्वों तक से एक आत्मीय रिश्ता है। ऐसा रिश्ता शायद प्रतिवेशी संस्कृतियों में न मिले। वेदों में प्रकृति के उपादानों की उपासना की गई है। उनके आह्वान के लिए मंत्र और सूक्त रचे गए हैं। लोक कथाओं में हमारे यहाँ पंचतंत्र हैं तो पौराणिक कहानियाँ भी। उपनिषद् भी ऐसी ही कथाओं का केंद्र हैं। इन कथाओं में आचरण की शुद्धता, नैतिकता, सत्य, असत्य, लाभ, लोभ, उदारता, सामूहिकता, सहिष्णुता का बखान किया गया है। हमारी संस्कृति के नायक राम, कृष्ण, बुद्ध, नानक, रैदास, मीरा, नामदेव, याज्ञवल्क्य, शंकराचार्य, सावित्री, जाबाला आदि चरित्र हैं। इस तरह हमारे लोक व्यवहार, लोक कथाएँ, लोक वार्त्ताएँ, भारतीय संस्कृति के आधारभूत अंग हैं।

भूमंडलीकरण के चलते सबसे ज्यादा खतरा लोक संस्कृतियों को हुआ। एक ग्लोबल और एकध्रुवीय संस्कृति इंटरनेट व सोशल माध्यमों से हमारी संस्कृति पर मँडरा रही है। वह हिंदुस्तानी संस्कृति, हिंदी भाषा व लोकभाषाओं के फैब्रिक को नष्ट कर रही है। हमारे यहाँ राम के चरित को लेकर कितनी भाषाओं में काव्य, महाकाव्य व आख्यान रचे गए हैं। विश्व के अनेक देशों में रामलीलाएँ मंचित की जाती हैं। रामलीलाएँ भारतीय संस्कृति का एक लोकनाट्य रूप है। जहाँ-जहाँ भारतवंशी हैं, वहाँ-वहाँ भारतीय भाषाओं प्रमुखतया हिंदी, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, भारतीय पूजा पद्धतियों, व्रत, त्योहारों, रीति रिवाजों, लोक व्यवहारों का प्रचलन है। यहाँ से हमारे पुरखे अपनी स्मृतियों में धारण कर यहाँ के लोकगीत ले गए, भजन और संध्या, अर्चन नीरांजन के लिए प्रविधियाँ अपनाईं, इसलिए कि इन प्रतीकों में ही हिंदुस्तानी संस्कृति के तत्त्व निहित हैं। इसलिए लोक भाषा ही वह बहता हुआ नीर है, जो जन-जन में व्याप्त है।

हम जानते हैं कि खड़ी बोली हिंदी पूरे देश में बोली व समझी जाती है तथा लोकभाषाओं का रिश्ता जनपदीय या प्रांतीय है। किंतु यदि राजभाषा देश के राजकीय गौरव का प्रतिनिधित्व करती है तो लोक भाषाएँ समग्र लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह

अच्छी बात है कि कैरेबियाई देशों में हिंदुस्तानी संस्कृति तो पनपी पर हिंदी नहीं, कम-से-कम नागरी लिपि का व्यवहार अभी सफलतापूर्वक नहीं किया जा रहा है। फीजी में बोली जानेवाली भाषा को 'फीजी बात' कहते हैं तो दक्षिण अफ्रीका की हिंदी को 'नैताली'। सूरीनाम में जहाँ भोजपुरी व अवधी मिश्रित हिंदी बोली जाती है, उसे 'सरनामी' कहा जाता है, पर यह 'सरनामी हिंदी' रोमन लिपि में लिखी जाती है। यहाँ नागरी लिपि के प्रचार-प्रसार का अभियान तो चला, पर पूर्णतः सफल नहीं हो सका। हमारी लोक बोली में बोले जाने के बावजूद लिखित में रोमन लिपि से उस भारतीयता या हिंदुस्तानी भाव का बोध नहीं होता, जो नागरी लिपि में लिखी हिंदी या हिंदुस्तानी से होता है। सूरीनाम ही क्यों, जिन देशों में हिंदी या हिंदुस्तानी किसी भी रूप में बोलचाल में है, पर उसका कोई लिखित साहित्य नहीं है या वह पठन-पाठन में स्वीकार्य नहीं है, वहाँ हिंदी या हिंदुस्तानी के विकास में बाधाएँ हैं; क्योंकि भाषा हमारे विचारों की संवाहिका है। भाषा संस्कृति के प्रसार की भी संवाहिका है। इस तरह संस्कृति से भाषा का नाभिनाल संबंध है। यही वजह है कि विदेशी विद्वानों मैक्समूलर, ग्रियर्सन, मैकग्रेगर, ए.बी. कीथ आदि ने, जिनकी रुचि हिंदुस्तान और उसकी संस्कृति को जानने-समझने की रही है, उन्होंने संस्कृत का विपुल अध्ययन किया, भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण कराए तथा संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखकर यह सिद्ध किया कि संस्कृत भले ही एक कठिन व दुस्साध्य भाषा हो, भारतीय संस्कृति के धुनी विद्वानों के लिए यह कोई सीमा नहीं है। कुछ ऐतिहासिक भूल-चूक के कारण भले ही सूरीनाम जैसे देशों में रोमन लिपि में लिखी जानेवाली हिंदी को मान्यता मिली हो, पर आज विश्व भर के विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन-पाठन चल रहा है तथा भारत अपनी संस्कृति, सभ्यता, चिंतन व दर्शन के नाते पूरे विश्व के ध्यानाकर्षण का केंद्र बना हुआ है।

लोकगीतों में रची-बसी संस्कृति

भारतीय संस्कृति को रचने में लोकगीतों का बड़ा योगदान है। पूर्वी भारत में हिंदी में गाए जानेवाले लोकगीत से भारतीय समाज के भीतर की सांस्कृतिक संरचना समझ में आती है। इसी तरह अन्य अंचलों में उनकी अपनी बोलियों में संस्कार गीत गाए जाते हैं। बचपन में हम गाँव-घर में लोकगीत सुना करते थे। तब कैसेट या सीडी का जमाना नहीं था। न पेनड्राइव का। लाउडस्पीकर होते थे, जिन पर फिल्मी गीत बजते थे। अनेक संस्कारों पर गाए जानेवाले गीत। पर जो बात स्त्रियों के कंठ से गाए जानेवाले गीतों में थी, वह लाउडस्पीकर या सीडी पर सुनने में कहाँ है! बहनें, पड़ोसिनें मिलकर जो संस्कार गीत गातीं, विवाह, जन्मोत्सव, कलश, परछन, भीखी आदि के गीत, तो लगता कोई अनुष्ठान

संपन्न हो रहा है। ये लोकगीत सोहर, कजरी, गारी, नटका आदि हमारे जन-जीवन से जुड़े हैं। लोकगीतों में लोकलुभावन तत्त्व होते हैं। आधुनिक-उत्तर आधुनिक होती दुनिया में आज भले ही इनका महत्त्व हो तथा तीव्र जीवनशैली में सबकुछ इंस्टेंट फूड की तरह मौजूद हो, पर इनमें जीवन नहीं होता, संस्कृति की सुवास नहीं होती।

भारतीय संस्कृति आखिरकार लोक संस्कृति है, जिसमें किसान, मजदूर, कामगार सभी आते हैं। नीचे-ऊँचे तबके सभी वर्ग के लोग आते हैं। लोकगीत हमारी वाचिक परंपरा का हिस्सा हैं। यह परंपरा बाहर नहीं है। हमारे यहाँ जैसे श्रुतियाँ, वेद, आरण्यक, उपनिषद्, कथा सरित्सागर, पंचतंत्र आदि वाचिक परंपरा से होते हुए लिखित रूप में आए, वैसे ही लोकगीत, संस्कार गीत भी लाखों कंठों से होते हुए यात्रा करते रहे। कालांतर में वाचिक तौर पर गाए जानेवाले गीतों का संचयन भी किया गया, जिसमें रामनरेश त्रिपाठी, देवेंद्र सत्यार्थी जैसे लोकसंस्कृति के अध्येताओं का योगदान अविस्मरणीय है। इन लोकगीतों में पुरुष वर्चस्व की छवियाँ मिलती हैं तो स्त्री की एक कारुणिक दुनिया भी। देखा जाए तो सच्चा स्त्री- विमर्श तो इन लोकगीतों में समाया हुआ है, जहाँ पुत्र जन्म पर सोहर तो गाए जाते हैं पर कन्या जन्म पर न तो गाने का विधान है, न किसी उत्सव के अनुष्ठान का। हाँ, इसके अपवाद भी हैं, जिनमें बेटी की कामना भी गीतों में मिलती है। एक गीत में कहा गया है, जब मुझे बेटी पैदा हुई तो जैसे चारों ओर अंधकार छा गया। यहाँ तक कि सास और ननद ने घर में दीया तक नहीं जलाया और पिता का मुख मुरझा गया। वहीं एक दूसरे गीत में स्त्री बेटे के साथ बेटी की कामना भी करती है - सोनवा त लेब सोहाग खातिर/रुपवा सींगार खातिर हो/ललना धीयवा त लेबों धरम खातिर/पूता धन संउपे खातिर हो। (लोकगीत और स्त्री, तद्भव, पृष्ठ-19) इन गीतों से पित्तृसत्ता भी उभरकर सामने आती है और स्त्री के उत्पीड़न के लिए सास और ननदों की भूमिका भी। सास बोलीं अड़पी ननद बोलीं तड़पी हो। परिवार की धुरी होकर भी स्त्री हाशिए पर रहती आई है।

जहाँ तमाम स्थलों पर स्त्री का एक दयनीय संसार व्यंजित है, वहीं गाँव-देहात की दुनिया में राम, सीता और कृष्ण लोकगीतों के नायक नजर आते हैं। जीवन के हर उत्सव के गीत लोक गीतकारों ने रचे हैं। कहीं राम का विवाह हो रहा है, कहीं कृष्ण मनिहारी बने साड़ी बेच रहे हैं तो कहीं ग्वालिनें दही बेचने निकली हैं। राधा- कृष्ण के मिलन के गीत रचे गए हैं तो सामान्य स्त्रियों के विरह गीत भी। परदेस गए पतियों के लिए विरह गीत गाए जाते हैं। कुछ गीतों में स्त्री का प्रतिरोध भी दिखा है। इसी तरह तमाम रीति-रिवाजों पर गाए जानेवाले गीत हैं, जिनका लोक जीवन के उत्सवों से रिश्ता है। चाहे वह छठ का त्योहार

हो, होली-दीवाली का या जीउतिया का, ये लोकगीत संस्कारों में पगे हैं। इनकी भाषा पर मत जाइए, इनमें रचे-बसे भावों पर जाइए। इनमें भारतीय मन रचा-बसा है। हिंदी इसी भावजगत् की भाषा है। तभी एक निबंध में विद्यानिवास मिश्रजी कहते हैं, "मेरे लिए हिंदी भाषा नहीं, मन है, वह मन, जिसमें पपीहे की स्वाभिमानी चाह है। 'सुरसरि सम सब कर हित' होने की परबद्धता है, किसी और के लिए वह शहंशाह है या जिसके लिए कोई और बड़ा ऐश्वर्य नहीं है, जिसमें कबीर का फक्कड़पन है-'जो घर फूँकै आपना चलै हमारे साथ', जिसमें भारतेंदु की संयत लापरवाही है, 'दोनों जहाँ के ऐश को खाक में मिलाया', जिसमें दद्दा की चुनौती है- राम को तुम ईश्वर नहीं कह सकते, तुम्हें रमना है, रमे रहो; जिसमें निराला के सीधी राह चलने का संकल्प है, जिसमें महादेवी की सामान्य से सामान्य प्राणी के लिए गहरी आत्मीयता है, जिसमें नवीन का 'अहि आलिंगित शिवत्व' है, जिसमें अज्ञेय के हारिल जैसा उड़ते-उड़ते गगन बन जाने की दुर्धर्ष आकांक्षा है, मैं ऐसे मन की तलाश करता हूँ, तो लगता है कि वह मन कहीं खो गया है।" (हिंदी और हम) क्या विडंबना है कि जो हिंदी कभी मानव मुक्ति के लिए संघर्ष की भाषा रही है, वह खुद उपनिवेशवाद, साम्राज्य-वाद और बाजारवाद से मुक्ति के लिए छटपटा रही है!

कैरेबियाई देशों में हिंदी, हिंदुस्तानी और भारतीयता को बचाने में रामचरितमानस, श्रीमद्भगवत गीता, हनुमान चालीसा के साथ-साथ हिंदुस्तानी त्योहारों, रीति-रिवाजों का बड़ा योगदान है। यह और बात है कि इन देशों की प्रशासनिक कामकाज की भाषा भले ही अन्य हो, भारतवंशियों की अपनी बोलचाल की भाषा हिंदी ही है। तुलसी, कबीर, मीरा, रैदास, नानक की बानी के प्रति यहाँ सद्भाव है। इनके अपने पूजाघर हैं तो भारतीयता की प्रतीक तुलसी भी इनके घरों में देखी जा सकती है। इन देशों के दूतावासों के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया जाता है, जिससे हिंदी, हिंदुस्तानी और भारतीयता के वातावरण के निर्माण में सहायता मिली है। यहाँ स्थापित आर्यसमाज, सनातन धर्म आदि संस्थाओं ने हिंदी व भारतीयता के विकास में अहम योगदान किया है। हिंदी व भारतीय भाषाओं ने औपनिवेशिकता से कड़ा संघर्ष किया है। जिस मुल्क में लंबे अरसे तक मुगलों का साम्राज्य रहा हो, जहाँ अंग्रेजों ने लंबे अरसे तक शासन किया हो, जहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी के कारिंदे भारत को लूटने-खसोटने की व्यापारिक प्रविधियाँ ईजाद करने में संलग्न रहे हों, जहाँ भारतीयों को अंग्रेजी के मोह से इस हद तक बाँध दिया हो कि वे इसके प्रभामंडल से मुक्त न हो सकें, जहाँ भारतीय प्रतीकों, मिथकों, विश्वासों को ध्वस्त और नष्ट करने की कोशिशें की गई हों, वहाँ हिंदी, हिंदुस्तानी और भारतीयता को बचाए रखना ही

सबसे बड़ा मिशन है। आज फिर भूमंडलीकरण, बाजारवाद के चलते भारतीय संस्कृति की संप्रभुता खतरे में है, ऐसी स्थिति में अपनी भाषाओं, अपनी संस्कृतियों, अपनी अस्मिताओं को बचाने की एक लंबी मुहिम की आवश्यकता है। हिंदी ने स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई लड़ी है। इसी भाषा में जीने-मरने की कसमें खाई गई हैं। सबसे ज्यादा स्वतंत्रता के गीत इसी भाषा में रचे गए हैं। इसलिए एक व्यापक भूभाग में बोली और बरती जानेवाली हिंदी यदि जन-जन के कंठों में विराजमान है तो यह इस भाषा की अपनी ताकत है। इसे संतों, लोकगीतकारों, हिंदी फिल्मों, प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने रचा है और आज सोशल मीडिया के मंच पर यह नई हिंदी के रूप में ढल रही है। पर जो तत्त्व इस सबके बावजूद अभी भी लुप्त नहीं हुआ है, वह है हिंदी का हिंदुस्तानी रूप। यानी भाषाई शुचिता के विपरीत विभिन्न सामासिक संस्कृतियों एवं तत्त्वों में घुल-मिलकर एक स्वीकार्य भाषा का स्वरूप हासिल कर लेने की योग्यता, जिसमें हिंदी में सर्वाधिक लचीलापन है। इसीलिए यह भारत की राजभाषा, राष्ट्रभाषा दोनों रूपों में तो समादृत है ही, अपनी लोक बोलियों के सहयोग से बोलचाल के सर्वस्वीकृत ढाँचे में ढलते हुए हिंदी में वह हिंदुस्तानी लहजा बरकरार है जिसे हर भारतवासी अपने-अपने तरीके, उच्चारण एवं भाषाई क्षमता के अनुरूप बोलता और व्यवहार में लाता है।

बदलते हम बदलती हिन्दी : जिम्मेदारी किसकी

— प्रो. रचना शर्मा—

भारत बहुभाषी और बहुविध संस्कृति वाला देश है, फिर भी 'हिन्द देश के निवासी सभी जन एक हैं / रूप रंग वेश भाषा चाहे अनेक हैं' इस गीत की ध्वनि पर भारतवासी भाषा की कसौटी पर हिन्दी के माध्यम से अपने को एक सूत्र में बाँधते हैं। भारत के अधिकांश व्यक्ति हिन्दी समझते हैं। हिन्दी के राष्ट्रभाषा के रूप में घोषित होने के अभाव में भी सम्पूर्ण विश्व हिन्दी को ही भारत की भाषा के रूप में मानता, जानता और पहचानता है। यद्यपि भारत में जन्म लेने वाला बच्चा चाहे उसकी मातृभाषा कुछ भी हो, वह अधिकारपूर्ण ढंग से समाज में हिन्दी बोलता है, तथापि स्वतन्त्रता संग्राम से लेकर अब तक भारत में हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा स्वीकार करने की चिन्ता बनी हुई है- यह बड़े गम्भीर चिन्तन और दुःख का विषय है। भारत की सत्ता का मुसलमानों और अंग्रेजों के हाथों में हस्तानांतरण होने के कारण न केवल भाषा के आगे चुनौतियाँ खड़ी हुईं अपितु संस्कृति को भी आघात पहुँचा। भाषा और संस्कृति परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करने वाले घटक हैं। स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों, राजनीतिज्ञों और विचारकों के प्रयास के बाद भी हिन्दी अपने यथोचित स्थान को नहीं प्राप्त कर सकी। जहाँ यह समस्त समस्याएं हैं वहाँ एक बात और भी है कि यद्यपि हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित नहीं हो सकी परन्तु वर्तमान समय में इसका व्यापक प्रचार-प्रसार देखने को मिल रहा है। सोशल मीडिया, बाजारवाद और हिन्दी सिनेमा ने हिन्दी को जन-जन की जुबान और लेखनी तक पहुँचा दिया है। महात्मा गाँधी का कहना था कि कोई भी देश सच्चे अर्थों में तब तक स्वतन्त्र नहीं है जब तक वह अपनी भाषा नहीं बोलता। इस दृष्टि से अगर हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत की बात करें तो भारत भाषायी धरातल पर स्वतंत्र हो चुका है। आज कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक कोई व्यक्ति चाहे जिस जाति धर्म और मातृभाषा से संबंध रखता हो परन्तु अधिकतर को हिन्दी बोलना और समझना बखूबी आता है। हिन्दी भाषा ने ही पर्यटन को भी बाँध रखा है और गति प्रदान की है। जब हम एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं तो सबसे पहले हमारे मन में यह बात रहती है कि हम वहाँ संवाद कैसे करेंगे ? संवाद की दृष्टि से हिन्दी भाषी व्यक्ति पूरे भारत में बहुत सहज रूप से आवागमन करने में हर्षित महसूस करता है। इसी सहजता का महसूस होना भाषा की सफलता होती है और यह सफलता हिन्दी भाषा को प्राप्त हो चुकी है। जहाँ एक ओर यह सच है कि हम हिन्दी बोल और समझ रहे हैं वहीं यह भी सच है कि संस्कृतियों के परिवर्तन के कारण और आधुनिकता

को अपनाने के कारण भाषा को बहुत चोट पहुँची है और इसके परिनिष्ठित साहित्यिक रूप में भी व्यतिक्रम देखने को मिल रहा है।

सोशल मीडिया के कारण हिन्दी खूब लिखी और पढ़ी जा रही है, परन्तु भाषा की संरचना में वर्तनी और परिनिष्ठित शब्दावली का अभाव सहज ही देखने को मिलता है। इसका बहुत बड़ा कारण भारत में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षण का अतिशय प्रचलन है जो स्वतन्त्र भारत के एक लंबे समय के बीत जाने के बाद भी हिन्दी को शिक्षा के मूलभूत माध्यम के रूप में विकसित करने में बाधक रहा है। यही कारण है कि परिनिष्ठित हिन्दी का प्रचलन अभी तक नहीं हो पाया है और भाषा की श्रेष्ठता की दृष्टि से हिन्दी अपने मूल रूप को छोड़कर एक सहज बोलचाल की भाषा के रूप में विकसित हो रही है। नई शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन में इस बात पर बल दिया गया है कि विद्या-संस्थानों में पढ़ाई अपनी मातृभाषा में होनी चाहिए। ऐसा करने पर वह उस भाषा-भाषी व्यक्ति के लिए अधिक लाभप्रद हो सकेगी और विषय-वस्तु को समझने में उसकी सहायता कर सकेगी। यह बात जो आज नई शिक्षा नीति में कही जा रही है कि अपनी मातृभाषा में पढ़ाई होनी चाहिए - यह बात महात्मा गाँधी ने बहुत पहले ही कह दी थी। आज जापान बहुत आगे है और हमें इस बात को स्वीकार करना चाहिए कि जापान वालों ने जो कुछ पाया अपनी मातृभाषा के कारण ही पाया। विलाप हमें कुछ नहीं दे सकता, जो कुछ करना है वह प्रयास से ही संभव है। भाषा निरंतर विस्तार पाती रहती है, यह भाषा का स्वभाव होता है। उसमें हिंदी ने तो नए शब्दों और प्रचलन को बड़ी सहजता से स्वीकार किया है। यही कारण है की हिंदी का विस्तार हुआ और आज हिंदी न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी स्वयं की सत्ता को स्थापित कर रही है।

हिंदी के विषय में कुछ भी चर्चा करने पर इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि भाषा का विस्तार तो जरूर हुआ है लेकिन भाषा में आ रही विसंगतियों के कारण संस्कृति भी बहुत हद तक प्रभावित हो रही है, क्योंकि भाषा और संस्कृति का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध होता है। भाषा संस्कृति को व्याख्यायित करने वाली होती है और संस्कृति भाषा का निर्माण करने का कार्य करती है। सनातन भारत में संस्कृत बोलचाल की भाषा रही है, इसलिए भारतवर्ष में हिन्दी के विकास में भी परिनिष्ठित शब्दावली का विकास हुआ, किन्तु जैसे-जैसे हम अपनी संस्कृति से दूर हो रहे हैं, या हम कह सकते हैं कि एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति से जो सम्मिलन हो रहा है और उसका जैसा प्रभाव जीवन-शैली, पहनावे और अन्य व्यवहार पर पड़ रहा है वैसा ही असर भाषा पर भी पड़ रहा है। भाषा धीरे-धीरे शर्म और संकोच का त्याग करती जा रही है। इसका उदाहरण आजकल हमें हिन्दी सिनेमा के संवादों और गानों

और ओटीटी प्लेटफॉर्म पर चल रहे सीरियल्स में देखने को मिलता है। जहाँ भाषा अपने सौन्दर्य को खोती हुई सी दिखलाई पड़ रही है। गीतों ने असभ्य उपमा का प्रयोग बहुतायत से देखने को मिल रहा है। सिनेमा के संवादों में अभद्र भाषा-व्यवहार देखने को मिल रहा है। ओटीटी के धारावाहिकों में अश्लील भाषा, द्विअर्थी संवाद और गाली से भरी हुई भाषा का प्रयोग अपनी सीमा का अतिक्रमण कर चुका है। दृश्य काव्य का प्रभाव मनुष्य की स्मृति पटल पर शीघ्रता से होता है और दीर्घ स्थायी होता है। युवा पीढ़ी इससे प्रभावित हो रही है। यह प्रभाव केवल उनकी भाषा को दूषित नहीं कर रहा बल्कि हिंसक असभ्य दृश्य उनके अन्दर आक्रोश को बढ़ावा दे कर अपसंस्कृति के प्रसार का कार्य कर रहे हैं। आचार्य मम्मट साहित्य को कान्तासम्मितशैली की उपदेश कोटि में रखते हैं। सिनेमा और धारावाहिक भी दृश्य काव्य की श्रेणी में आते हैं और उन्हें देखने के बाद हम कुछ न कुछ उपदेश या मनोभाव वहाँ से लेकर लौटते हैं। कोई हीरो (नायक) जैसा नेक बनने की चाह लेकर लौटता है, तो कोई विलेन (खलनायक) की तरह दबंग और समाज में अपने शक्ति-प्रदर्शन के द्वारा अपना रुतबा ज़माने की चाह लेकर लौटता है। इस चाह के साथ वह वहाँ से भाषा औए अभिव्यक्ति के तरीके भी लेकर लौटता है। यह सत्य है कि किसी भी कथा, कहानी या नाटक में नायक के साथ खलनायक भी होता है। हमारे प्राचीन काव्यों में भी खलनायक की उपस्थिति रही है पर कहीं भी लेखकों ने खलनायक के मुख से ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं कराया जो अपसंस्कृति का प्रसार करें। रामायण महाकाव्य में छल से सीता का हरण करने वाला रावण कभी भी अपशब्दों का प्रयोग नहीं करता, न कभी सीता के साथ अशोभनीय आचरण करता है। हम आज अपने को इतना स्वतन्त्र मान चुके हैं कि अभी हाल ही में रामायण को कथानक बना कर निर्मित फिल्म 'आदिपुरुष' के संवादों ने सारी सीमायें तोड़ दीं और भारतीय संस्कृति से जुड़े महनीय पात्रों यथा राम, सीता, हनुमान के साथ ही रावण जैसे भारतीय मानस के शाश्वत पात्रों की छवि को भीषण आघात पहुँचाने का कार्य किया है। आज हम लेखक पात्र को प्रभावशाली बनाने के लिए अनुचित भाषा का प्रयोग कर रहे हैं जिससे भाषा का स्तर तो गिर ही रहा है साथ ही समाज में दूषित मानसिकता, हिंसा और आक्रोश को बढ़ावा मिल रहा और अपसंस्कृति का प्रसार हो रहा है।

मानव जीवन में मनोरंजन का भी महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्य जन टी. वी. और सिनेमा देखकर, फ़िल्मी गीतों को सुनकर अपना मनोरंजन करते हैं। इस दृष्टि से फिल्मों में संवाद लेखन के कार्य में लगे लोगों के साथ ही उन गीतकारों की जिम्मेदारी भी बनती है जो फिल्म जगत की ओर बढ़ गए हैं। फ़िल्मी गीतों के प्रति भी गीतकारों को अपनी जिम्मेदारी समझनी

होगी। एक समय था जब गायकों से पहले गीतकारों के नाम लोगों के लिए श्रद्धेय होते थे। गीतकार प्रदीप, भरत व्यास, साहिर लुधियानवी, शैलेन्द्र, गुलज़ार, मजरुह सुल्तानपुरी, नीरज, समीर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, जिनके लिखे गीत आज भी शिद्दत से याद किये जाते हैं। परिवर्तन की बयार ने कुछ ऐसा रंग बदला कि 90 के दशक में कुछ ऐसे गीत आने शुरू हुए जिन्होंने द्विअर्थी बोल और अश्लीलता को फैलाया। 90 के दशक की 'दलाल' फ़िल्म में एक गाना था जिस पर अश्लीलता परोसने के आरोप लगे। यह गाना था मिथुन चक्रबर्ती और आयशा जुल्का पर फ़िल्माया गया 'गुटुर गुटुर'। माया गोविन्द के लिखे इस गीत के बोल थे, चढ़ गया ऊपर रे, अटरिया पे लोटन कबूतर रे, पंछी दीवाना चुग कर दाना, उड़ गया फर-फर रे। निर्देशक मणि रत्नम की 1992 में आई 'रोजा' एक गंभीर विषय पर बनी फ़िल्म थी। इसमें ए आर रहमान ने संगीत दिया था। हालांकि फिल्म का कथानक बहुत अच्छा था किन्तु दर्शकों को आकर्षित करने के लिये इसमें 'रुक्मणी रुक्मणी' गीत रखा गया जिसको लेकर आपत्ति की गई थी। पी.के. मिश्रा ने इस गीत के बोल लिखे थे। बोल कुछ यूं थे, 'रुक्मणी रुक्मणी शादी के बाद क्या हुआ? खटिया पे धीरे धीरे खट खट होने लगी, आगे पीछे हुआ तो छट पट होने लगी।1993 की सुपर हिट फ़िल्म 'खलनायक' वैसे कई वजहों से चर्चा और विवादों में रही। इनके एक गाने "चोली के पीछे क्या है, चुनरी के नीचे क्या है" को लेकर भी विवाद हुआ। माधुरी दीक्षित पर फ़िल्माए गए इस गाने पर अश्लीलता को बढ़ावा देने जैसे आरोप लगे। गाने को लिखा था गीतकार आनंद बक्शी ने और गाया था इला अरुण और अलका याज्ञनिक ने। हालांकि बाद में बाल ठाकरे के दख़्ल के बाद मामला शांत हो गया। यह गाना आज भी विवादित गानों की लिस्ट में शामिल है। 1995 में 'करन अर्जुन' फिल्म का द्विअर्थी गीत 'गुप चुप गुप चुप' आया जो काफी चर्चा में रहा। यह गीत इन्दीवर ने लिखा था। भारत की पृष्ठभूमि पर 2008-09 में बनी फिल्म 'स्लमडॉग मिलेनियर' ऑस्कर अवॉर्ड से नवाज़े जाने की वजह से काफ़ी चर्चा में रही। लेकिन इसका गाना "रिंग रिंग रिंगा" विवादों के घेरे में रहा था। गुलज़ार के लिखे इस गीत की काफ़ी आलोचना हुई थी। गीत के बोल हैं- 'खटिया पे मैं पड़ी थी और गहरी नींद बड़ी थी, एक खटमल था सयाना, मुझपे था उसका निशाना, चुनरी में घुस गया धीरे धीरे'। इसी तरह एक फ़िल्म के गाने ने लोगों को चौंका दिया जिसके बोल थे- 'भाग डीके बोस...'। युवाओं को केंद्र में रखकर 2011 में बनी फ़िल्म में न सिर्फ फ़िल्म के संवादों को लेकर विवाद हुआ बल्कि इस गाने ने तो लोगों को चौंका ही दिया। अमिताभ भट्टाचार्य के लिखे गाने के बोल थे, डैडी मुझसे बोला, 'तू ग़लती है मेरी, तुझपे जिंदगानी गिल्टी है मेरी, साबुन की शक्ल में, बेटा तू तो निकला केवल झाग...भाग

डीके बोस...डीके बोस' । अगर इसे ग़ौर से सुनें तो इसके बोल आपत्तिजनक लगते हैं । इस गाने पर लोगों ने कड़ी की आपत्ति जताई ।

हिन्दी भाषा में पर्याय सरलता है । जो भी भाषा लोक में प्रचलित होगी सरलता और सहजता को उसका अनिवार्य अंग होना होगा । जिस हिन्दी भाषा ने स्वतन्त्रता आन्दोलन की लड़ाई में जन-जन के मन को जोड़ा, उसका ऐसा विकास देखकर मन डरता है ।

हम जानते हैं कि संविधान में यह बात कही गयी है कि राजभाषा हिन्दी की शब्दावली मूलतः संस्कृत और गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों का आधार ग्रहण कर अपने को समृद्ध करेगी । यह सत्य स्वीकार करने के साथ ही इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि परिवर्तनशील संसार में भाषा को अपने विकास के लिए नये शब्द और नयी संरचना को भी स्वीकार और आत्मसात करना पड़ेगा, परन्तु विस्तार के क्रम में इस बात का भी ध्यान रखना पड़ेगा कि कहीं भाषा इतनी लचीली तो नहीं होती जा रही कि वह ऐसे शब्दों और शैली को ग्रहण करती जा रही है जो अपसंस्कृति के पोषक हो रहे हैं ।

किसी भी देश की भाषा उस राष्ट्र की प्रतिनिधि होती है, अतएव उस राष्ट्र के राष्ट्रीय स्वरुप और चरित्र का प्रस्तुतीकरण करती है । यही कारण है कि भाषा को दुरुस्त रखना आवश्यक है । बोलते-बोलते आम जन में भाषा का एक संस्कार बनता है । इसलिए यह स्पष्ट है कि जैसी भाषा का संस्कार हम समाज में विकसित करेंगे, वैसे ही मन-मस्तिष्क के जन समुदाय का निर्माण होगा । परिष्कृत, सौम्य और सभ्य भाषा, सभ्य और सुसंस्कृत समाज का निर्माण करती है । एक समय था कि प्रेमचन्द को यह चिन्ता थी कि हिन्दी केवल अमीरों और रईसों की भाषा न होकर रह जाए, उसे गरीबों और मजदूरों की भाषा बनाना होगा । आज हिन्दी किसानों और मजदूरों की भाषा तो बन गयी है परन्तु अब चिन्ता इस बात की है कि इसे एलीट क्लास के द्वारा अपनाया जाना चाहिए ।

वर्तमान समय में सोशल मीडिया और सिने जगत ने समाज पर अपनी व्यापक पकड़ बना ली है जिसके कारण एक ओर हिन्दी लेखन का चलन तो बढ़ा है पर भाषा और व्याकरण की दृष्टि से हिन्दी कमजोर हुई है । इस दिशा में हम आम जन से तो अपेक्षा नहीं कर सकते, परन्तु साहित्यकारों, लेखकों और हिन्दी प्राध्यापकों की जिम्मेदारी बनती है कि वे अपनी पहुँच तक भाषा की रक्षा के दायित्व का निर्वहन करें । अच्छा लगता है और सहज है यह कहकर कुछ भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है पर यह भी ध्यान रखना होगा कि हम भाषा को इतना दुरूह न बना दें कि लोग इससे दूर भागने लगें । हम लेखकों और साहित्यकारों की जिम्मेदारी है कि इससे बचा जाए और भाषा तथा संस्कृति रक्षण की जिम्मेदारी अपने कन्धों

पर उठाई जाए। इस दृष्टि से कवि और गीतकारों और लेखकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं–

"केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।"

इन पंक्तियों के आलोक में यही कहूँगी कि बदलते परिवेश में बदलती हिन्दी को अपने सौन्दर्यशाली रूप में बचा कर रखने की जिम्मेदारी हमारी है। हमारी हिन्दी हमारे राष्ट्र की पहचान है। राजभाषा को राष्ट्रभाषा तक पहुँचाने के यात्रा-क्रम में उसे सुरक्षा-कलश में सहेजना और भाषा की प्रयोगवादिता में एक मानक का निर्धारण और निर्वहन दोनों भारत के जन-जन की जिम्मेदारी है।

हिन्दी विभाग
राजकीय महिला महाविद्यालय
डी.एल.डब्ल्यू., वाराणसी
मो. न.- 0950183026

प्रजातांत्रिक मूल्यों का संरक्षण एवं मीडिया तथा उसकी भाषा : एक विश्लेषण

—डॉ. राजेश चन्द्र पाण्डेय—

21वीं सदी के एक दशक बीत जाने के बाद एक बात अब स्पष्ट हो चुकी है कि मनुष्य की अस्मिता महत्वपूर्ण हो गयी है। इस महत्व के एहसास का कारण उसके जागरूक हो जाने से जुड़ता है। दरअसल मानव समाज सभ्य और सुसंस्कृत माना जाता है। सभ्य इसलिये कि उसने अपने लिये व्यवस्था सम्मत् चिन्तन पद्धति को अपनाया है और सुसंस्कृत इसलिये कि आचरण और संस्कार की परिपाटी को उसने स्वीकार किया है। मानवीय सभ्यता के बीच जो सबसे अच्छी स्थिति है, वह यह है कि मनुष्य सम्प्रेषण की कला से जुड़ा है। सम्प्रेषण मनुष्य के सामाजिक होने का बहुत बड़ा प्रमाण है। प्रजातंत्र ऐसे ही संवेदनशील व्यक्तियों का एकत्रित स्वरूप है। प्रत्येक देश का प्रजातंत्र उसकी सबसे बड़ी शक्ति होती है। प्रजातंत्र की सफलता के लिये कई पक्ष महत्वपूर्ण माने जाते हैं। भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में प्रजातंत्र की सफलता के चार प्रमुख स्तम्भ माने गये हैं; इनमें व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और प्रेस को स्वीकार किया गया है।

21वीं सदी के व्यापक परिवेश में लोकतंत्र के चतुर्थ स्तम्भ के रूप में स्वीकृत पत्रकारिता ने भारतीय समाज को नवीनतम आयाम प्रदान किये हैं। लगभग एक शतक से भी अधिक वर्षों में सक्रिय पत्रकारिता ने सामाजिक चिंतन को बदलने में अपनी भूमिका का बखूबी निर्वाह किया है। प्रिन्ट और इलेक्ट्रानिक दोनों ही माध्यमों से उपलब्ध भारतीय पत्रकारिता लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा में निरन्तर सचेत और सक्रिय है। "पत्रकारिता या प्रेस की शक्ति के प्रादुर्भाव से प्रेस प्रजातांत्रिक व्यवस्था के जिस सक्रिय स्तम्भ के रूप में विकसित हुआ, उसने जनता और शासन के बीच आदर्श स्थितियों के निर्माण की परम्परा कायम की। समझदारी, संतुलन तथा नियमितता बनाये रखने में पत्रकारिता ने अपनी भूमिका का बखूबी निर्वाह किया है।"[1]

पत्रकारिता को लोकतंत्र का चतुर्थ स्तम्भ इसलिये कहा जाता है कि वह शासन व्यवस्था और जनता के बीच सीधा संवाद स्थापित कराती है। शासन की नीतियों, उसके कार्यकलापों एवं उसकी कार्यविधियों को जनता तक पहुंचाने का कार्य पत्रकारिता ही करती है। इसी प्रकार जनजीवन की भावनाओं को शासन स्तर तक पहुँचाने का कार्य भी

पत्रकारिता ही करती है। आज के युग में जनजीवन की भावनाओं को समझे बिना उसका मूल्यांकन करना कठिन है। शासन स्तर पर जिन नीतियों का निर्धारण किया जाता है, उन्हें क्रियान्वयन हेतु जनजीवन तक सम्प्रेषित करने का कार्य पत्रकारिता द्वारा ही संभव हो पाता है।[2]

आज की स्थिति में जब सक्रिय पत्रकारिता की बात की जाती है तो यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्रजातांत्रिक संदर्भों की गहरी पड़ताल की जाये क्योंकि आज का समाज अत्यधिक जागरूक है, इसलिये ऐसे में पत्रकारिता का दायित्व और बढ़ जाता है। वर्तमान के कुछ संदर्भों को अगर ध्यान से देखा जाए, तो एक बात बहुत बेहिचक कही जा सकती है कि कभी-कभी पत्रकारिता सक्रिय विपक्ष की भूमिका में भी खड़ी हो जाती है। आज जब ग्लोबल वर्ल्ड की बात चल रही है, तब ऐसे में पत्रकारिता का सचेत होना बहुत जरूरी है।

लोकतंत्र की स्थापना का सबसे बड़ा आधार जनमत माना जाता है और जनमत के बिना राष्ट्र की परिकल्पना असंभव है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक राष्ट्र में जनमत की महत्ता को स्थापित करने के लिये भी सक्रिय रूप से पत्रकारिता का होना अत्यंत महत्वपूर्ण है। शासक और शासित के मध्य प्रेस के माध्यम से जो संवाद स्थापित किया जाता है, उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वह समन्वय की दोहरी भूमिका निभाता है। एक तरफ वह जनता के बीच जाकर स्वयं संतुलन स्थापित करता है और दूसरा जनमत को शासन तक प्रेषित करने का कार्य भी करता है।

आज की परिस्थितियों में प्रेस का सबसे महत्वपूर्ण कार्य लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और उनकी रक्षा करना है। एक तरफ प्रेस शासन के सार्वजनिक आचरण पर नियंत्रण रखने का कार्य करता है, तो दूसरी तरफ उन्हें साफ-सुथरे शासन प्रक्रिया को संचालित करने के लिये बाध्य भी करता है। आज के विभिन्न आन्दोलनों एवं संवैधानिक प्रावधानों के प्रति जनता को सचेत करने में मीडिया (खासकर इलैक्ट्रानिक मीडिया) अपनी इस भूमिका का विधिवत् निर्वहन कर रहा है। "स्वस्थ्य प्रजातांत्रिक व्यवस्था के लिये पत्रकारिता लोगों को उसके जनतांत्रिक अधिकारों के प्रति सचेत और सतर्क भी कराती चलती है। जनता संविधान से जिन अधिकारों को प्राप्त करती है और उसका जिस तरीके से प्रयोग होता है, उसे संज्ञान में लाने का कार्य पत्रकारिता के द्वारा ही होता है।"[3] पत्रकारिता का यह बहुत बड़ा योगदान है कि जनजीवन के बीच राजनैतिक और सामाजिक चेतना का प्रचार निरन्तर किया जा रहा है। यह प्रेस का ही योगदान है कि देश का प्रत्येक नागरिक चुनाव की प्रक्रिया और शासन को भली प्रकार से आत्मसात् कर सका है।

वर्तमान में प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिये भी पत्रकारिता निरन्तर सक्रिय रहती है। प्रजातांत्रिक मूल्यों पर स्वस्थ बहस के आयोजन के माध्यम से जनमत तैयार करना भी पत्रकारिता का बहुत बड़ा कार्य है। राष्ट्रीय स्तर पर जनता के हितों की समय-समय पर समीक्षा प्रेस के माध्यम से निरन्तर की जा रही है। राष्ट्रीय स्तर पर ज्वलंत सामाजिक मुद्दों की परिचर्चा प्रस्तुत कर एक स्वस्थ वातावरण तैयार करने में पत्रकारिता की भूमिका वरेण्य हो गयी है। समय-समय पर विशेष बौद्धिक परिचर्चाओं और लेखों के द्वारा जनजीवन को सशक्त बनाने का कार्य भी पत्रकारिता के द्वारा संभव हो रहा है। दरअसल आज जनता की नब्ज को टटोलने में सबसे बड़ी भूमिका पत्रकारिता की ही है।

"प्रेस संतुलन और नियंत्रण के सिद्धांत को अपनाकर चलती है इस सिद्धांत से एक तरफ जहाँ जनमानस की उग्रता को संतुलित करने में सहायता मिलती है, वहीं दूसरी तरफ शासक वर्ग की नीतियों का नियंत्रण भी स्थापित होता है। शासन के प्रति लोगों की भावना और लोगों के प्रति शासन के उत्तरदायित्व, इन दोनों का बोध पत्रकारिता ही कराती है। जनता को उसके सामाजिक अधिकारों को दिलाने में भी पत्रकारिता की भूमिका महत्वपूर्ण है। वर्तमान संदर्भों में अगर देखा जाये तो यह सहज रूप से स्पष्ट हो जाता है कि दो विपरीत समाज परम्पराओं की भूमिका सबसे अधिक होती है। अंतर्राष्ट्रीय मंचो पर राष्ट्र के स्वाभिमान से जुड़े मुद्दों को उठाने में भी पत्रकारिता का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध पत्रकार चंदा मित्रा ने इस बात को जोर देकर स्थापित किया है कि प्रेस को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आदर्श स्थापित करने के लिए निर्भीक और तटस्थ होकर कार्य करना होगा।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने प्रेस की महत्ता और उसकी स्वतंत्रता पर निरन्तर बल दिया था और उन्होंने प्रेस को शक्तिशाली चतुर्थ स्तम्भ का स्थान दिया था। उन्होंने यह स्वीकार किया था कि किसी भी देश को सुव्यस्थित ढंग से चलाने के लिए जहाँ कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका रूपी तीन स्तम्भों की आवश्यकता होती है; वहीं इन तीनों के मध्य तथा इन तीनों से सामान्य लोगों को जोड़े रखने का महत्वपूर्ण कार्य प्रेस या समाचार पत्र या मीडिया के अन्य साधन करते हैं। इसी कारण पं० नेहरू ने स्वतंत्र प्रेस की वकालत की थी। उन्होंने कहा था-

"I would rather have a completely free press with all the dangers. involved in the very use of that freedom and suppressed and regulated press."

दरअसल मनुष्य के जीवन में प्रारम्भ से लेकर आज तक पत्रकारिता का बड़ा महत्व रहा है। भारतीय पत्रकार अपनी देशभक्ति, निष्ठा, लगन, परिश्रम एवं अपूर्व त्याग के लिए विख्यात रहे हैं। प्रारम्भ में स्वाधीनता के लिए संघर्ष एवं राष्ट्रीयता के लिए प्रचार करना ही उनका कर्तव्य था। पत्रकारिता अपने ऊँचे आदर्शों का सदा से ही पालन करती आ रही है। प्रारम्भिक पत्रकारिता के पत्रकारों के आदर्श महान थे और साधन सीमित । आज पत्रकारिता के साधन सीमित हैं किन्तु उनके आदर्श सम्भवतः छोटे हो गये हैं। सम्प्रति पत्रकारिता के स्वरूप में पर्याप्त बदलाव आया है।|

उपर्युक्त संदर्भों के आलोक में यह कहना समीचीन होगा कि 21वीं शताब्दी में जिस ग्लोबल वर्ल्ड की परिकल्पना की जा रही है और जनता की जागरूकता का जो प्रश्न उठाया जा रहा है, उसमें मीडिया की भूमिका सर्वाधिक प्रांसगिक है । प्रजातांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए मीडिया की जागरूकता भूमिका आज नितान्त आवश्यक और अपेक्षित है। भारत में पत्रकारिता को पहले मिशन के रूप में अपनाया गया। वस्तुतः पत्रकारिता खबरों की सौदागरी नहीं है और न उसका काम सत्ता के साथ रहना है। उसका काम जीवन की सच्चाईयों को सामने लाना है।

मीडिया भाषा :-

मानव सभ्यता की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि भाषा है। मानवीय भाषा की उपलब्धि संसार में सबसे अधिक है। भाषा मनुष्य के सामाजीकरण का प्रमुख माध्यम है। भावों-विचारों का विनमय भाषा द्वारा ही सम्भव है। भाषा के बिना मनुष्य के सामाजिक होने की कल्पना करना असम्भव है। संसार में सृजन की मूल शक्तियाँ भाषा पर ही टिकी होती हैं। भ्रान्ति से लेकर क्रान्ति तक की पृष्ठभूमि में भाषा की शक्ति है। इसी कारण कलम की ताकत को दुनिया की सबसे बड़ी ताकत माना गया है। वस्तुतः आज के युग का सबसे बड़ा सत्याग्रह है कि केवल सभाषी प्रवृत्ति के व्यक्तियों द्वारा ही इस सम्पूर्ण दृष्टि का संचालन हो रहा है। समाज के विवेकशील लोग भाषा की इस शक्ति का उपयोग समाज के व्यापक हित में करते हैं।

21वीं शताब्दी को मूलतः सूचना का युग कहा जाय तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि आज हम जिस व्यापक परिवेश में जी रहे हैं, उसमें सम्पूर्ण विश्व हमसे सीधा जुड़ा है। अर्थात् जिस ग्लोबल वर्ल्ड की कल्पना 20वीं सदी के अंतिम दो दशकों से शुरू होने लगी थी, वह सूचना क्रांति के युग में आज पूर्णतः साकार रूप से दिखायी पड़ रहा है। सूचना का यह कार्य हम मीडिया के द्वारा कर रहे हैं। मीडिया व्यापक संदर्भों में जनसंचार

माध्यम का मूल अंग है। जनसंचार का माध्यम का भाषा से अविच्छेद संबंध है। भाषा ही मीडिया की मूल ताकत है। मीडिया से जुड़ा व्यक्ति जन संवेदनाओं से सम्प्रेषण धर्म का निर्वाह करने के सार्थक और सद्भाषा का कुशल प्रयोग करता है। जन संचार के क्षेत्र में यह बहुत मायने रखता है कि हम जनभावनाओं की सबल अभिव्यक्ति किस प्रकार करते हैं।

21वीं सदी में विश्व जब भाषा और संचार के स्तर पर एक स्थान तक पहुँचता है, तो उसमें भाषा की उपयोगिता ही सबसे अधिक होती है। क्योंकि हम लोक प्रचलित भाषा का प्रयोग करके सम्पूर्ण विश्व को सूचनात्मक आधार पर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जा सकते हैं। यह भी बहुत बड़ा सच है कि देश-काल और परिस्थिति के अनुरूप भाषा परिवर्तनशील होती है। भाषा विभिन्न स्थानों, परिस्थितियों और जाति-धर्म के आधार पर निरन्तर अथवा कभी-कभी परिवर्तित होती है, लेकिन भाषा के इन विविध स्वरूपों से परिचित होकर मीडिया लेखक, समाज के व्यापक हित में संचार माध्यम को एक नई अर्थवत्ता प्रदान करता है।

मौखिक, मुद्रित एवं बोलचाल की भाषा : भाषा की लघुत्तम इकाई ध्वनि है, यद्यपि ध्वनि का स्वयं में कोई अर्थ नहीं होता है। कई ध्वनियों के संयोग से एक शब्द निर्मित होता है। इसी कारण हेनरी स्वीट ने भाषा के सन्दर्भ में यह परिभाषा दी है कि उच्चरित संकेतों की सहायता से भाव या विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति भाषा है।" स्वीट ने ही अन्यत्र यह विचार दिया है कि "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है।" भाषा की परिभाषाओं का अवलोकन करने का मूल उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि भाषा वाचिक परम्परा की सशक्त इकाई है। मौखिक और लिखित दोनों ही स्तरों पर भाषा की परंपरा अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्पष्ट रूप से हम यह कह सकते हैं कि मीडिया में वाचिक और लिखित दोनों ही भाषा होती है और व्यापक अर्थों में हमें इन दोनों पक्षों को सशक्त बनाना पड़ता है। यद्यपि आज हम वाचिक भाषा के बहुत बड़े युग में जी रहे हैं। मौखिक रूप से जो कहते हैं, वही हमें लिपिबद्ध भाषा तक के लिए प्रेरित करता है अर्थात् आज के समय में हमारे भीतर लिपिबद्ध भाषा के जुड़ने के लिए इस बात की बहुत आवश्यकता है कि वाचिक भाषा को सशक्त बनायें और उससे जुड़ने का एक बड़ा आकर्षण पैदा करें।

आज की मीडिया में एक व्यापक सच यह है कि जनसामान्य का या जनमानस का एक बड़ा हिस्सा, जो विश्व को झटपट समझना या सुनना अथवा देखना चाहता है, वह इलैक्ट्रानिक मीडिया से जुड़ा होता है। अतः इस को ध्यान रखते हुए हमें बराबर इस बात को महत्व देना होगा कि मुद्रित भाषा की तुलना में मौखिक भाषा विशेष आकर्षक बने।

इसके लिए हमें कहीं-न-कहीं बोलचाल की अथवा आम जनजीवन की भाषा का या उसकी व्यापक शब्दावली का प्रयोग करना होगा। जहाँ तक मौखिक और मुद्रित भाषा का प्रश्न है, तो मीडिया के संन्दर्भ में मौखिक भाषा सहज, स्वाभाविक और समाज सापेक्ष मानी जाती है। लिखित रूप उसका वैज्ञानिक ढंग से सुव्यवस्थित, कृत्रिम और विशिष्ट अभिव्यक्ति है। यह साक्षर समूहों तक ही सीमित है, जबकि मौखिक भाषा व्यापक जनसमाज के बीच प्रसारणीय है और साक्षर और निरक्षर सभी द्वारा ग्राहय है। वस्तुतः भाषा का मुद्रित रूप उसके मौखिक रूप पर ही आश्रित होता है। मौखिक भाषा को लिपिबद्ध करने में समय-समय पर नवागत ध्वनियों के लिए नयी लिपि चिन्हों को जोड़ा जाता है। उदाहरण स्वरूप अंग्रेजी और फारसी के संयोग से हिन्दी भाषा में कई नवीन ध्वनियों आत्मसात् की गयी हैं। लिखित भाषा पूर्णतः अभिव्यक्त करने की ओर सदैव प्रयत्नशील रहती है; फिर भी हूबहू अभिव्यक्ति में अक्षम होती है। वस्तुतः मीडिया में सम्प्रेषण को मूल कसौटी माना गया है। इस दृष्टि से वाक्य के वाचन में लयात्मकता, उतार चढ़ाव, खास शब्दों पर जोर आदि केवल मौखिक भाषा में ही संभव है, जबकि लिपिबद्ध भाषा में यह सुविधा नहीं है और एक सीमा तक ही तथ्यों को संप्रेषित किया जा सकता है।

स्वरूपगत दृष्टि से मौखिक भाषा और मुद्रित भाषा में तात्विक अंतर नहीं है। बल्कि व्यावहारिक अंतर है। मौखिक भाषा में वाक्य विन्यास सरल, स्पष्ट, लघु और सुबोध होता है। इसमें व्याकरण के नियमों की एक सीमा तक अवहेलना भी की जा सकती है, जबकि मुद्रित भाषा में वाक्य अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं और व्याकरण के नियमों का पूर्ण पालन आवश्यक होता है। लिखित भाषा ही शुद्धि के लिए समय-समय पर भाषा का मानवीकरण किया जाता है। वाक्य विन्यास में सहजता और विशिष्टता इसमें अपेक्षित है।

मौखिक और मुद्रित भाषा के अतिरिक्त मीडिया की दृष्टि से तीसरा महत्वपूर्ण पक्ष बोलचाल की भाषा है। प्रायः यह सहज धारणा है कि जनसामान्य के बीच बोली जाने वाली आम बोलचाल की भाषा इन सबसे भिन्न होती है। 'दर असल मीडिया में वाचिक या मौखिक भाषा में सबसे सशक्त पक्ष आम बोलचाल की भाषा का है।' आम बोलचाल की भाषा में देशी बोली के शब्दों एवं क्षेत्रीय भाषा का अपनापन मिलता है। इसमें क्षेत्रीय रंगत का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आम बोलचाल भाषा में उपभाषा तथा मिश्रित भाषा का भी व्यापक प्रयोग होता है जो शिष्ट भाषा की तुलना में विकृत और भ्रष्ट है। इसे भाषा का भी अपरिनिष्ठित रूप कहा जाना चाहिए और अगर बेबाक होकर कहा जाए तो दुर्भाग्य से आज की मीडिया या व्यापक अर्थों में जनसंचार माध्यम इसी अपरनिष्ठित रूप

को प्रश्रय दे रहा है। हम यह मान सकते हैं कि जनमाध्यमों में भाषा की स्थिति आज बहुत अधिक संवेदनशील हो चुकी है । हिन्दी और अंग्रेजी तथा कुछ स्तरों पर आंचलिक भाषाओं का आपस में इस तरह अपमिश्रण हो चुका है कि मीडिया भाषा का रूप तलाशना मुश्किल हो गया है। भाषा के मूलरूप से छेड़-छाड़ और मूल अस्मिता का खण्डन आज मीडिया भाषा का मूल उद्देश्य हो गया है।

वस्तुतः आज इस बात की सशक्त आवश्यकता है कि हम मीडिया के लिए एक सर्वमान्य भाषा का प्रयोग करें जो मानवीकरण और व्याकरण की दृष्टि से तो पुष्ट हो ही और भाषा के मूल रूप को सुरक्षित रख सके क्योंकि आम बोलचाल की भाषा सुविचारित और पूर्वनियोजित न होकर अव्यवस्थित होती है। जबकि आज के समय में संचार माध्यमों की भाषा सुविचारित और पूर्वनियोजित होती है। चूँकि वाचिक परम्परा की भाषा एक बहुत बड़े समाज से जुड़ती है। अतः संचार भाषा का सचेत प्रयोग होना आवश्यक है। आमतौर पर यह देखा जाता है कि मीडिया की मौखिक भाषा आम बोलचाल की भाषा जैसी होते हुए भी सामान्य स्तर से ऊपर उठ जाती है। लक्षणा, व्यंजना और अन्य शब्द शक्तियों के प्रयोग से मीडिया में सर्जनात्मक भाषा का प्रयोग किया जा रहा है और आज बोलचाल यानि मौखिक भाषा का स्वरूप और अधिक आदर्श हो गया है। दरअसल सर्जनात्मक या रचनात्मक भाव ही वह तत्व है तो मीडिया में मौखिक भाषा को आम बोलचाल की भाषा से अलग करता है और विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

आज की परिभाषा में मीडिया प्रदर्शन का एक बहुत बड़ा माध्यम है, इसलिए प्रदर्शन कला मीडिया में ध्यान देना आवश्यक है । मीडियाकर्मी और लेखक दोनों ही भाषा की विशिष्ट शक्ति का प्रयोग करते हुए संचार भाषा को नया रूप प्रदान करना चाहते है। 'संचार भाषा को नवीनता प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि शब्द संपदा और सर्जनात्मक भाषा को नये सिरे से सम्पर्क के लिए संयोजित किया जाये।'

वस्तुतः 21वीं शताब्दी सूचना क्रान्ति की शताब्दी है। हम हर पल एक गतिशील विश्व को निरंतर अपनी आँखों से देखना और कानों से सुनना चाहते हैं। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि हम सम्प्रेषण के स्तर पर हर नई से नई चुनौती का भलीभाँति सामना कर सकें। मीडिया की भाषा वस्तुतः लेखक के सर्जनात्मक जीजिविषा की भाषा है । मन की गहन संवेदनाओं से लेकर मस्तिष्क के उथल-पुथल तक को अभिव्यक्त करने वाली मीडिया भाषा को नये आयाम प्राप्त करने होगें। मौखिक, मुद्रित और आम बोलचाल की भाषा में मानक के साथ हृदय स्पर्श करने की शक्ति होनी चाहिए,

क्योंकि प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रानिक मीडिया आज हमारे सामने हर पल नवीन संभावनाओं के साथ अवतरित हो, यह आवश्यक है। इसका कारण भी स्पष्ट है कि आज का पाठक समाज और श्रोता समाज बौद्धिक स्तर पर किसी तरह की लापरवाही बर्दाश्त नहीं करना चाहता है।

पत्रकारिता अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण विज्ञान है, आदर्श कला है, उत्तम व्यवसाय है और मानव चेतना का उद्दीपक है। युगबोध के प्रमुख तत्वों के साथ ही मानवता के विकास और विचारोत्तेजन का राजमार्ग ही पत्रकारिता है, जिससे जनजीवन पल-पल उद्वेलित होता रहता है। समाज, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार के चलते मानव संघर्ष, क्रान्ति, प्रगति-दुर्गति से प्रभावित जीवन सागर में उठने वाले ज्वार-भाटा को दिग्दर्शित करने वाली पत्रकारिता अत्यंत महत्वपूर्ण हो चुकी है। जनता, समाज, राष्ट्र और विश्व को गरीबी का भूगोल, पूंजीपतियों का अर्थशास्त्र और नेताओं को समाजशास्त्र पढ़ाने में पत्रकारिता ही सक्षम है। इस जीवंत विद्या से जन-जन के दुख-सुख, आशा-आकांक्षा को मुखरित किया जाता है।

संदर्भ :-

1. कुमार, डॉ० आशीष; हिन्दी पत्रकारिता का परिचय, पृ० 74
2. तिवारी, डॉ० ए० के०; जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता, पृ० 110
3. वर्मा, डॉ० सुजाता; पत्रकारिता के विविध आयाम, पृ० 64
4. डॉ०, लक्ष्मी भांकरदार; प्रेस प्रबन्धन, पृ० 180
5. भाल, डॉ० वी०एस०; हिन्दी की संवैधानिक स्थिति और प्रेस आचार संहिता, पृ० 13
6. अवस्थी, डॉ० प्रमिला; प्रयोजन मूलक हिन्दी, पृ० 230
7. सिंह, डॉ० योगेन्द्र प्रताप; मूलक हिन्दी, मीडिया लेखन, पृ० 37 (उदृत)
8. वही
9. पाण्डेय, डॉ० पी०एन०; मीडिया लेखन और हिन्दी, पृ० 140
10. वर्मा, डॉ० सुजाता; पत्रकारिता प्रशिषण एवं प्रेस विधि, पृ० 92-93
11. श्रीवास्तव, डॉ० एम०एन०; पत्रकारिता श्रव्य से लिपि तक पृ० 84-85
12. वही

प्राचार्य
डी.वी. (पी.जी.) कॉलेज, उरई (उ.प्र.)

खड़ी बोली हिन्दी की उत्पत्ति एवं विकास

—डॉ. रवि गुप्त मौर्य—

भाषाशास्त्र के अनुसार 'खड़ी बोली' शब्द दिल्ली और मेरठ के आस-पास के ग्रामीण समुदाय की बोली के लिए प्रयोग होता है । ग्रियर्सन[1] ने इसे 'वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी' तथा सुनीतिकुमार चटर्जी ने 'जनपदीय हिन्दुस्तानी' कहा है। खड़ी बोली की लिपि नागरी है। भाषाविज्ञान की दृष्टि में खड़ी बोली स्टैण्डर्ड हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी बोली का मूल आधार है। खड़ी बोली के नाम की व्याख्या के सन्दर्भ में विद्वानो के बीच मतैक्य नहीं है, जो इस प्रकार से है- 'खड़ी बोली' नाम ब्रजभाषा के सापेक्ष्य है, परन्तु यह ब्रजभाषा की तुलना में कर्कशता, कटुता, खरापन, खड़ापन से युक्त है। कतिपय विद्वानों के अनुसार यह उर्दू के सापेक्ष ग्रामीण ठेठबोली है। कुछ विद्वान 'खड़ी' शब्द का अर्थ सुस्थिर, सुप्रचलित, सुसंस्कृत, परिष्कृत्य, परिपक्व आदि करते हैं। कुछ भाषाविद् उत्तर भारत की ओकारांत ब्रज आदि बोलियों को 'पड़ी बोली' और उसके विरोध में इसे 'खड़ी बोली' कहा है। जबकि कुछ लोग रेख़्ता[2] शैली को 'पड़ी' और इसे 'खड़ी' मानते हैं।

संस्कृत, पालि और शौरसेनी प्राकृत विभिन्न युगों में मध्यदेश की भाषा थी। समय के साथ शौरसेनी प्राकृत के पश्चात् इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ । बोलचाल की शौरसेनी अपभ्रंश भाषा ही कालान्तर में खड़ी बोली के रूप में रूपान्तरित हुई है, यद्यपि इस अपभ्रंश का विकास साहित्यिक रूप में नहीं पाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में लाई गई और उसका मूलरूप उर्दू है। डॉ॰ ग्रियर्सन के मतानुसार खड़ी बोली अंग्रेजों की देन है। ग्रियर्सन लिखते हैं कि यह समय हिन्दी (खड़ी बोली) भाषा के जन्म का समय था, जिसका अविष्कार अंग्रेजों ने किया था और इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट[3] के निर्देश से लल्लू लाल जी ने अपने प्रेमसागर में किया।

---

1. जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941) अंग्रेजों के समय में "इंडियन सिविल सर्विस" के कर्मचारी, बहुभाषाविद् और आधुनिक भारत में भाषाओं का सर्वेक्षण करने वाले पहले भाषावैज्ञानिक थे।
2. रेख़्ता का अर्थ है "बिखरा हुआ" लेकिन "मिश्रित", इसमें फारसी और हिंदी शामिल हैं। रेख़्ता-शैली कविता का अर्थ है मिश्रित, उर्दू भाषा का उपयोग करके कविता करना।
3. जॉन बार्थविक गिलक्राइस्ट ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी एवं भारतविद थे । कलकत्ता के फोर्ट विलियम्स कॉलेज में इन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा की पुस्तकें तैयार कराने का कार्य किया है।

अठारहवीं सदी (1741) में रामप्रसाद निरंजनी का 'भाषा योगवासिष्ठ'[1] तत्कालीन खड़ी बोली में लिखा हुआ निरापद ग्रन्थ है। यह खड़ी बोली के व्यवहार एवं विकास की परम्परा की एक कड़ी है। खड़ी बोली में पुस्तकें लिखनेवाले अधिकतर ब्रज और अवध के हैं, कुछ पंजाब और राजस्थान के हैं। उस समय खड़ी बोली में लिखनेवालों में मुसलमान भी हैं और हिन्दू भी हैं। शुक्ल जी ने अपने इतिहास में उसे परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक कहा है और रामप्रसाद निरंजनी को हिन्दी का प्रथम गद्य-लेखक माना है। आचार्य शुक्ल के अनुसार 1826 ई. में पहला समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ।

यद्यपि खड़ी बोली का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से माना जाता है, परन्तु भारतेन्दु युग से पहले भी इसके समर्थ तत्त्व विद्यमान थे। भारतेन्दु युग से पूर्व का समय हिन्दी की स्वीकृति और प्रतिष्ठा को लेकर संघर्ष का समय था। अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में पंजाब के मुखदास ने 'गर्भगीता'[2] (1733), 'सारगीता'[3] (1755) और 'धर्मसंवाद'[4] (1833) की रचना की थी, परन्तु लिपिकाल को देखते हुए यह निश्चित है कि 'धर्मसंवाद' मुखदास की नहीं हो सकती है। लेकिन इससे यह सिद्ध होता है कि अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली से दूर प्रदेशों में धर्मचर्चा के लिए खड़ी बोली का व्यवहार किया जाता था। 'रसिक विनोद' (1766) और

---

1. यथा- "जब कौरव और पांडव महाभारत के जुद्ध को चलो ॥ तब राजा धृतराष्ट्र कह्या ॥ कि हौं भी युद्ध का कौतुक देषणों चलो हैं। तब ब्यास देव जी तिसकों कह्या ॥ कि हे राजा धृतराष्ट्र तेरे नेत्र नहीं ॥ नेत्रौं बिना क्या देषेगा ॥ तब राजा धृतराष्ट्र ने ब्यास देव जी को उत्तर दीया ॥ कि हे प्रभु जी देषौंगा नहीं तो श्रवर द्वार कर श्रवण तो करौंगा ॥ तब ब्यास देव जी धृतराष्ट्र कौ कह्यी ॥ कि हे राजा तेरा जो सारथी है संजय सो मेरा शिष्य है ॥ जो कुछ महाभारत के युद्ध का लीला चरित्र होयगा सों संजय तुमको ह्यां ही बैठे श्रवण करावे गा ॥" (पृ. 142)
2. यथा- ऊँ अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान पास पूंछता है श्रीकृष्णजी उत्तर देते है ॥ श्रीकृष्णजी की आज्ञा है कि जो कोई इस गर्भ गीता का मन लाय कर पाठ सुनै तिसके निकट जम किंकर आवै नहीं। (पृ. 444)
3. यथा- "अर्जुनोवाच- अर्जुन श्री भगवानजी से प्रश्न करे हैं कि हे परमेश्वर जो ऊँकार का महात्म और रूप और असथान तिनके सुनने की मेरी वांछा है" और "बारंबार भली भांति सदा सर्वदा गीता का पाठ कीजै अथवा श्रवण कीजै और शास्त्र का विस्तार श्री कृष्ण के निमित्त कीजै। कमल नाम जो है श्रीकृष्ण कृपानिधान श्री नारायणजी तिनकी मुख कमल ते निकसी है" (पृ. 445)
4. यथा- "ऊँ द्वारा पुर विषे कथा होत भई नगर जु है हस्तनापुर दीली के पास ति विषे गुरां कोल पूंछत भई। ऊँ राजा जनमेजय राजा परीक्षित का बेटा पाण्डव का पोता। हे वैशंपायन जी राजा धर्म अरु पुत्र युधिष्ठिर इनका मिलाप क्यों कर होइहै सो तुम कृपा करके कहो ॥" (पृ. 443)

'अनंतवृतकथा'[1] (1777) हरिवंश की रचना है, सम्भवतः इसकी भाषा लल्लूजी के लिए आदर्श थी। जगन्नाथदास की 'धर्मगीता' का काल 1815 ई. है, जिसकी शैली कथा-वाचकों की है।

कलकत्ता के सदासुख लाल 'नियाज' ने 'सुखसागर'[2] और इंशा अल्ला ख़ाँ ने 1803 ई. के आसपास 'रानी केतकी की कहानी'[3] की रचना की तथा इंशाअल्ला ख़ा ने अपनी भाषा में भाखापन (संस्कृतनिष्ठता) और मुअल्लापन करने का प्रयत्न किया है। फ़ोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता के दो भाषाविद् लल्लू लालजी ने 1803 ई. में 'प्रेम सागर'[4] और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान'[5] की रचना की। ये सभी रचनायें प्रारम्भिक खड़ी बोली की मानी जा सकती है। इस युग के दो अन्य प्रसिद्ध लेखक राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' ने हिन्दी का गँवारुपन दूर करने के लिए उर्दू का प्रयोग कर उसे उर्दू-ए-मुअल्ला बना

---

1. यथा- "सबेरे के समय गंगा आदि नदियों में स्नान कर और अपने नित्य कर्म को पूरा कर अनन्त भगवान का अपने मन में ध्यान एक चित्त होके बैठे।" और- "जो इस कथा को सुनते और पढ़ते है वे सब पापों से छूट कर विष्णु लोक को चले जाते हैं। श्रीकृष्ण भगवान बोले हे युधिष्ठिर जो पवित्र प्राणी संसार सागर की गुफा में सुख से विचरने की इच्छा करते हैं वे अनंतदेव का पूजन करके अपने दाहिने हाथ में अनंत का उत्तम डोरा बांधते है।" (पृ. 311)
2. यथा- "धन्य कहिये राजा दधीचि को कि नारायण की आग्या अपने सीस पर चढ़ाई। जो महाराज की आग्या और दधीच के हाड़ का वज्र न होता तो ग्यारह जनम ताई' वृगासुर से युद्ध में सरावट और प्रबल होता और न जय पावता।" (डॉ. श्याम श्रीवास्तव-भारतेन्दु की खड़ीबोली का भाषावैज्ञानिक अध्ययन, पृ. 10)
3. यथा- "एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दवी छूट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। ...अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े लिखे, धुराने धुराने डांग, बूढ़ेघाग यह खटराग लाये...और लगे कहने, यह बात होते दिखायी नहीं देती। हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न ही हो।" (रानी केतकी की कहानी; इंशा अल्ला खां, पृ. 2)
4. यथा- "जिस काल उषा बारह वर्ष की हुई तो उसके मुख चन्द्र की ज़्योति देख पूर्णमासी का चन्द्रमा छवि-हीन, बालों की श्यामता के आगे अमावस्या की अँधेरी फीकी लगने लगी। उसकी चोटी सटकाई लख नागिन अपनी केंचुली छोड़ सटक गया। भौंह की बंकाई निरख धनुष धकधकाने लगा, आँखों की बड़ाई चंचलाई पैख मृगमीन खंजन खिसाय रहे।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 400)
5. यथा- "धर्मराज के लोक में भाँति-भाँति के लोग और वृक्षों से भरी चार सौ कोस लम्बी चौड़ी चार द्वार की यमराज की पुरी है कि जिसमें सदा आय के अनेक गण, गन्धर्व, ऋषियों, योगियों के मध्य में धर्म का विचार किया करते हैं। तीस पुरी में जिस द्वार से प्राणी जाता है सो में तुम से कहता हूँ। (व्रजरत्नदास- खड़ी बोली हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 177)

दिया और 1845 में 'बनारस अखबार'[1] निकाला तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी के स्वरूप निर्धारण के लिए विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग किया। रघुवंश[2] (1878 ई.) के गद्यानुवाद के प्राक्कथन में राजा लक्ष्मण सिंह ने भाषा के सम्बन्ध में अपना मत रखा कि- *"हमारे मत में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी-न्यारी है। हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमानों और फारसी पढ़े हुए हिन्दुओं की बोलचाल है। हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी-फारसी के। परन्तु कुछ अवश्यक नहीं कि अरबी-फारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम उस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी-फारसी के शब्द भरे हों।"*[3]

सिवगोपाल ने 'औषधि यूनानी सार'[4] को 1823 में लिखा। दिल्ली के होने के कारण इनकी भाषा पर दिल्ली की छाप थी। फतेहपुर, आगरा के निवासी गोपाल ने 'भड़ई विलास'[5] पुस्तक की रचना 1845 ई. में की थी। लगभग इसी समय (1850 ई.) आगरे के रंगीलाल ने 'तोता मैना की कहानी'[6] लिखी। इन दो पुस्तकों में जिस भाषा का प्रयोग किया

---

1. यथा- "यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमान और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। देखकर लोग उस पाठशाला के किते के मकानों की खूबियां अकसर बयान करते हैं और उनके बनने के खर्च की तजवीज करते हैं कि जमा से जियादा लगा होगा और हर तरह से लायक तरीफ के है सो यह सब दानाई साहब ममदूह की है।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 410)
2. यथा- "जो यह माला प्राणघातिनी है तो छाती पर पड़ी हुई मुझे क्यों नहीं मारती। ईश्वर की इच्छा से कहीं अमृत भी विष होता है, कहीं विष अमृत॥"
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 419.
4. यथा- "गंधक का तेल- यह तेल खुजली के वास्ते मुफीद है॥ गंधक को दो दिन तक मदार के दूध में पीसे और छाया में सुखा दे फिर एक बर्तन में पानी भर के उसमें गंधक डाल दे॥ और चार पहर तक मद्दी मद्दी आंच दे जोश दे जब तेल पानी के ऊपर मालूम होवे तो कांसे की थाली में उतारता जावे॥" (पृ. 576)
5. यथा- "अकबर बादशाह ने बीरबल से कहा कि चार उल्लू जो पक्के उल्लू हों उन्हें मेरे सामने हाजिर करौ। बीरबल ने कहा चार उल्लू कहां से लाऊं॥ निरास हो उठकर ढूंढने चल दिया। जब जंगल में पहुँचे क्या देखते है, कि एक लकड़ी बेचने वाला ऊंचे पेड़ पर बैठ कर मोटे गुद्दे को जड़ से काट रहा है और उसी पर बैठा है। बीरबल बोले इससे अधिक उल्लू और कोई नहीं है।" (पृ. 279)
6. यथा- "ऐ तोते तू मेरे दरख्त पर क्यों आन बैठा है। यहाँ से उठ किसी और दरख्त पर चला जा।" और- "सो हे तोता मैं इसी सबब से मरद की जात से नफरत खाती हूँ तब तोता बोला कि ऐ मैना सब मरद और औरत एक से नहीं होते अगर तू सूने तो एक दास्तान और सुनाऊं मुझको याद आ गई है॥" (पृ. 580)

गया था, उससे आगरे और ब्रज की जनता परिचित थी। इन दोनों पुस्तकों में विशुद्ध ब्रज या उर्दू का प्रयोग नहीं था अपितु हिन्दी-उर्दू और ब्रज का मिला-जुला रूप था तथा ये खड़ी बोली के अधिक निकट थी। चिन्तखेड़ा, रायबरेली के वंशीधर ने 1850 के लगभग हिन्दी गद्य की कई पुस्तकें लिखीं। ये अपने प्रान्त के शिक्षा विभाग में "पाठ्य पुस्तकें" तैयार करने के कार्य के लिए नियुक्त थे। इस समय शुद्ध हिन्दी और शुद्ध उर्दू में लेखन प्रारम्भ हो गया था। वंशीधर की पुस्तकें शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित होती थीं।

भारतेन्दु युग (1850 ई.-1900 ई.) में खड़ी बोली का पर्याप्त परिचय मिलता है। इस युग में हिन्दी को एक नई दिशा मिली और हिन्दी के गद्य के बहुमुखी रूप का सूत्रपात हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने न केवल अपनी रचना खड़ी बोली में की बल्कि एक लेखक मंडल भी तैयार किया, जिसे 'भारतेन्दु मंडल'[1] कहा गया। भारतेन्दु युग में खड़ी बोली में गद्य रचना का प्रारम्भ हुआ। भारतेन्दु ने 1873 में मासिक पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैंगजीन' निकाली जिसका नाम बाद में 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' हो गया। इस पत्रिका में हिन्दी गद्य का परिष्कृत रूप मिलता है। भारतेन्दु ने 'कालचक्र' नामक अपनी पुस्तक में इस परिष्कृत हिन्दी (खड़ी) का समय माना है। उन्होंने लिखा भी है- *"हिन्दी नयी चाल में ढली, 1873 ई."*। इस प्रकार खड़ीबोली का प्रस्ताव समाप्त हुआ और भाषा का स्वरूप स्थिर हुआ। भारतेन्दु के 'चन्द्रावली' नाटिका की भाषा उक्त तथ्य को स्पष्ट करती है।[2]

श्रीलाल ने 1850 ई. के आस-पास "गणित प्रकाश" पुस्तक तीन भागों में लिखी। ये उत्तर प्रदेश (तब संयुक्त प्रान्त) के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर के कार्यालय में काम करते थे

---

1. भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख साहित्यकार- प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री, काशीनाथ खत्री, रामकृष्ण वर्मा, गोपीनाथ पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, कृष्ण देवशरण सिंह, श्रीधर पाठक, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी उपाध्याय 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहन सिंह, जगन्मोहन मण्डल आदि।
2. यथा- "झूठे-झूठे-झूठे! झूठे ही नहीं विश्वासघातक क्यों इतना छाती ठोंक और हाथ उठाकर लोगों को विश्वास दिया ? आप ही सब मरते, चाहे जहन्नुम में पड़ते। ...भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किसने इस उपद्रव और लाज करने को कहा था ? कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते, बस चैन था, केवल आनन्द था। फिर क्यों यह विषमय संसार किया ? बिखे दिये! और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परले सिरे की। नाम बिके, लोग झूठ कहें। अपने मारे फिरें, पर वाह रे शुद्ध बेहयाई- पूरी निर्लज्जता! लाज को जूतों मार के, पीट-पीट के निकाल दिया है। जिस मुहल्ले में आप रहते हैं लाज की हवा भी नहीं जाती। हाय एक बार भी मुँह दिखा दिया होता तो मतवाले मतवाले बने क्यों लड़ लड़कर सिर फोड़ते ? काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे ? हुक्मी बेहया हो।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 441-442)

और पाठ्य पुस्तकें भी लिखते थे। इनके 'गणित प्रकाश' से चौथी-पाँचवीं कक्षा के विद्यार्थी और भारत सरकार के भाषा-विशेषज्ञ सौ साल बाद जिन पारिभाषिक शब्दों से परिचित हुए वे हैं- *संख्या, अंक, धन चिह्न, रिण चिह्न, गुणनफल, भाज्य, भजक, अनुपात, राशि, वर्गमूल, घनमूल, पूर्णांक, लब्ध, आसन्नघनमूल, निस्सेष अपवर्तन संख्या, आवर्तनांक, अपवर्तनांक इत्यादि ।* 1854 ई. में मोहनलाल ने 'गणित निदान' की रचना की। इस प्रकार गणित, इतिहास, भूगोल आदि विषयों की शिक्षा के लिए अठारहवीं सदी के मध्य में हिन्दी गद्य की पुस्तकें लिखी जा रही थीं। 1873 में लखनऊ के मोतीलाल ने 'कहानियों का संग्रह'[1],आगरे के भेदीराम ने 'सालिंगासदावृक्ष'[2], कानपुर के केशवप्रसाद ने 'ज्योतिष सार'[3] और गिरधारी-लाल ने 'माप मार्ग'[4] की रचना की। इनकी भाषा को हरिश्चन्द्री हिन्दी बनाने के लिए विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं थी।

खड़ी बोली की प्रतिष्ठा का लाभ अंग्रेजों ने उठाया। पादरी विलियम केर के प्रयास से इंजील का अनुवाद हिन्दी में हुआ। 1866 में 'नए धर्म नियम' प्रकाशित हुई। बाद में 1875 में कई इसाई धर्म पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में हुआ। भारतेन्दु ने तो हिन्दी गद्य का परिष्कार किया ही है। उसके बाद अनेक निबन्ध लेखकों की कृतियां प्रकाश में आयी। धीरे-धीरे नाटकों का अनुवाद और फिर स्वराज नाट्य रचना भी सामने आई। उदाहरण के लिए बाबू राधाकृष्ण दास का 'महाराणा प्रताप', देवी प्रसाद जी पूर्ण का 'चन्द्रकला

---

1. यथा- "एक बूढ़ा बटोही गरमी की ऋतु में तपन की प्रचण्ड किरनों से निपट कष्ट पाकर लाठी टेकता चला जाता था। मारग में एक जवान घोड़ा पर चढ़ आ निकला। बूढ़े को देखकर उसे दया आई और बोला अजी मैं जवांन आदमी हूँ शीत घाम सब सह सकता हूँ तुम बुढ़ापा के कारण बहुत थके हो अब इस घोड़े पर चढ़ो।" (पृ. 445)
2. यथा- "बादशाह का लड़का बोला ऐसी बात क्या है जो अपने प्राण तजोगी उसने कहा कि ऐ शाहजादा जिसके साथ मैं आई हूँ उसने मेरा धर्म वीगाड़ दिया है अब तुम्हारे पास क्यों रहू इससे बेहतर है कि उसको मरवाय डालो तब में अपने प्राण रखूं और सिपाही से यह कहला भेजा कि तुमको शाहजादा मरवाना चाहता है इस प्रकार दोनों में अदावट डलवा दी कि पहिले राजा के कुंवर को उसी सिपाही ने मार डाला और सालिंगा ने खबर सुन कर उसी वक्त कैद में डाल दिया और फाँसी लगवा दिया।" (पृ. 153)
3. यथा- " शिशिर वसंत ग्रीष्म इन तीन ऋतु में सूर्य की गति उत्तर दिशा को होती है तिसको उतरायण कहते हैं यही देवताओं का दिवस है और वर्षा शरद हेमंत इन तीनों ऋतु में सूर्य की गति दक्षिण को होती है तिसको दक्षिणायन कहते हैं यही देवताओं की रात्रि है॥" (पृ. 392)
4. यथा- "समकोण-त्रिभुज में समकोण की बनाने वाली रेखाओं में आड़ी रेखा भुज वा भूमि और खड़ी रेखा कोटि व लंब कहलाती है। और तीसरी रेखा जो समकोण के सामने है उसे कर्ण कहते हैं और लंब के भूमि के दो भाग हो जाने से प्रत्येक भाग अबाधा कहलावेंगी।" (पृ. 277)

भानुकुमार' आदि। इस काल में उपन्यास और कहानी का भी विकास हुआ और हिन्दी गद्य ने आलोचना के क्षेत्र में भी अपना स्थान बना लिया। बाद में अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'प्रियप्रवास' महाकाव्य सामने आया जो 'खड़ी बोली' हिन्दी का पहला महाकाव्य है। लेकिन पद्य रचना में यह विवाद बना रहा कि इसे ब्रजभाषा या कि खड़ी बोली में किया जाये, इस विवाद का अन्त द्विवेदी युग में होता है।

द्विवेदी युग (1900 ई.-1920 ई.) का प्रारम्भ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से प्रारम्भ होता है। 1903 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती'[1] पत्रिका के सम्पादन का दायित्व लिया। अपने सम्पादन कार्य में द्विवेदी जी स्वयं वर्तनी अथवा त्रुटियों का संशोधन करते थे। हिन्दी के परिष्कार के लिए द्विवेदी जी ने अत्यधिक परिश्रम किया और उसे उसके लक्ष्य तक पहुँचाया। खड़ी बोली में गद्य का सफलतापूर्वक लेखन भारतेन्दु युग में प्रारम्भ हो गया था, द्विवेदी युग में 'खड़ी बोली' पद्य की भी भाषा बन गई। आगे चलकर खड़ी बोली पद्य की एकमात्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी। खड़ी बोली के प्रचलन से ब्रजभाषा अपने क्षेत्र में सीमित होकर क्षेत्रीय बोली बनकर रह गयी, इसके विपरीत खड़ी बोली मात्र दिल्ली के आसपास की मेरठ आदि जनपदीय बोली न होकर अपितु समस्त उत्तर-भारत के साहित्य का माध्यम बन गई और इसका सही नाम हिन्दी हो गया। द्विवेदी की भाषा पर खड़ीबोली बनाम ब्रजभाषा के संघर्ष का प्रभाव प्रमुखता से पड़ा। उनके काव्य में खड़ीबोली का प्रयोग इसी संघर्ष का प्रतिफल है। इसलिए ये खड़ीबोली में काव्य रचना का समर्थन करनेवालों के प्रतिनिधि कवि हैं।

इस युग में द्विवेदी जी के अलावा श्याम सुन्दर दास, पद्म सिंह शर्मा, माधव प्रसाद मिश्र, पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि का भी विशेष योगदान उल्लेखनीय है। सन् 1918 में इन्दौर में गांधी जी की अध्यक्षता में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' आयोजित हुआ और उसी सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित हुआ कि 'हिन्दी' राष्ट्रभाषा मानी जायेगी। इस प्रस्ताव के स्वीकृति के पश्चात दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये 'दक्षिण भारत

---

1. यथा- विचार ऐसे जब चित्त आते, विषाद पैदा करते सताते।
न क्या कभी देव दया करेंगे, न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे।
('सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित कविता 'आर्य भूमि' से)

यथा- कच्चा घर जो छोटा सा था, पक्के महलों से अच्छा था।
पेड़ नीम का दरवाजे पर, सायबान से बेहतर था।
('सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित कविता 'प्यारा वतन' से)

हिन्दी प्रचार सभा' की स्थापना की गई, जिसका मुख्यालय मद्रास में था। बाद में अयोध्या सिंह उपाध्याय का 'प्रियप्रवास' महाकाव्य सामने आया, जो खड़ीबोली हिन्दी का पहला महाकाव्य है।

छायावाद युग (1920 ई.-1936 ई.) में प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा और राम कुमार वर्मा आदि ने अपनी रचनाओं से खड़ी बोली के विकास में महती योगदान किया है। इनकी रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि खड़ी बोली सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में ब्रजभाषा से कम समर्थ नहीं है। अभिव्यंजना की विविधता, बिम्बों की लाक्षणिकता, रसात्मक लालित्य आदि छायावाद युग के हिन्दी भाषा की अन्यतम विशेषताएँ हैं। इस प्रकार हिन्दी में अनेक भाषायी गुणों का समावेश हुआ। छायावाद युग साहित्यिक खड़ी बोली के विकास का स्वर्ण युग था। कथा साहित्य में प्रेमचन्द, नाटक में जयशंकर प्रसाद, आलोचना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि ने जिस भाषा-शैली और मर्यादा की स्थापना की है, उसका अनुसरण आज भी किया जाता है। छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद युग (1936 ई.-1942 ई.), प्रयोगवाद युग (1942) आदि में खड़ी बोली का काव्य भाषा के रूप में उत्तरोत्तर विकास होता गया।

आधुनिक खड़ी बोली गद्य की परम्परा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' को प्राप्त है, जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्यशैली का प्रवर्तन किया। कालान्तर में लोगों ने भारतेन्दु की शैली अपनायी। भारतेन्दु ने प्राचीन और नवीन दोनों भाषा शौलियों का समन्वय किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में-

"अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो वे पद्माकर, द्विजदेव की परम्परा में दिखायी पड़ते थे, दूसरी ओर बंगदेश के माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में। एक ओर तो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते हुए नयी भक्तमाल गूँथते दिखायी देते थे, दूसरी ओर मन्दिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र की हँसी उड़ाते और स्त्री शिक्षा, समाज सुधार आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर सामंजस्य भारतेन्दु की कला का विशेष माधुर्य है।" [1]

द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र को, भाषा की सुव्यवस्था, स्थिरता, एकरूपता, एक निश्चित साहित्यिक भाषा का रूप प्रदान किया। कवि सुमित्रानन्दन पन्त के शब्दों में-

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 440-441

भारतेन्दु कर गये भारती की वीणा का निर्माण
किया अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविधि स्वर सन्धान
निश्चय, उसमें जगा आपने प्रथम स्वर्ण झंकार
अखिल देश की वाणी को दे दिया एक आकार।[1]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निधन पर अपनी श्रद्धांजलि देते हुए 'साप्ताहिक प्रताप पत्र' में कहा गया था- *"हमारे पास जो कुछ भी नवीन है, जो कुछ भी इस युग का है, उसमें आचार्य जी का योगदान है। शायद समय की गति 100 या 50 वर्ष बाद आचार्य की किसी पुस्तक को बहुत ऊँचा स्थान साहित्य में दे सके, लेकिन कोई भी साहित्य का इतिहासकार या विद्यार्थी शताब्दियों बाद भी यह विस्मृत नहीं कर सकता कि आजकल का हिन्दी साहित्य आचार्य की तपस्या का निगूढ़ रूप है।"*[2]

एक ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भटकती हुई खड़ीबोली को आश्रय दिया तो दूसरी ओर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने काव्य में खड़ी बोली का प्रयोग कर इस भाषा को जीवन्त और मांसल बनाया। वर्तमान में हिन्दी भाषा में जो भी कुछ नवीन है उनमें इन दोनों का महनीय योगदान है।

वस्तुत: आधुनिक हिन्दी साहित्य खड़ीबोली का ही साहित्य है जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यतः व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के शब्दों और प्रकृतियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में विद्यमान है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची–

1. भारतीय-आर्य भाषा और हिन्दी; चाटुर्ज्या, सुनीतिकुमार; चतुर्थ संस्करण; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1977.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास; 'मंगल' गुप्त, लालचन्द; निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, नई दिल्ली, 2016.
3. भारतेन्दु- युग और हिन्दी भाषा की विकास- परम्परा; शर्मा, रामविलास; प्रथम संस्करण; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975.

1. द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ- श्रद्धांजलि- श्री सुमित्रानन्दन पन्त, पृ. 521
2. साहित्य सन्देश, पृ. 359 (द्विवेदी अंक, अप्रैल, 1939)

4. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास; तिवारी, उदयनारायण; तृतीय संस्करण; भारती भंडार प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969.
5. हिन्दी भाषा का इतिहास; वर्मा, धीरेन्द्र; अष्टम संस्करण; हिन्दुस्तीनी एकेडेमी, प्रयाग, 1967.
6. हिन्दी भाषा और महावीरप्रसाद द्विवेदी; गौतम, मधु; प्रथम संस्करण; लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2020.
7. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास; सोलहवा संस्करण; नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1968.

शोध-सहायक
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8009123271

राष्ट्रलिपि : नागरी लिपि

—डॉ. हरिसिंह पाल—

अभौतिक संस्कृति के क्षेत्र में भाषा मानव की सबसे बड़ी शक्ति है। मानव की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक या राजनैतिक उपलब्धियों का प्रमुख कारण अविष्कार है और उस अविष्कार अथवा उपलब्धियों को प्रसारित करने का श्रेय मुनष्य की भाषा या वाणी की शक्ति को है। मनुष्य, भाषा के माध्यम से अपने मन के भावों को प्रकट करता है। सामाजिक आदान-प्रदान या अंतःक्रिया में भाग लेता है, संगीत, साहित्य का सृजन करता है। भाषा के माध्यम से ही मानव की मानवता महान है, अमर है। भाषा के कारण ही मनुष्य, पशु नहीं है।

लिपि

भाषा जिस माध्यम से लिखी जाती है उसे लिपि कहते हैं। लिपि की उत्पत्ति 'लिप्यते' शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ है- 'लिखावट' । प्रत्येक अक्षर को अंकित करने के लिए कुछ चिह्न निर्धारित हैं। इन्हीं व्यवस्थित चिह्नों की शृंखला को लिपि कहा जाता है। लिपि किसी भी भाषा की ध्वनि का ध्वन्यात्मक प्रतीक है। लिपि चाहे वर्णात्मक हो या चित्रात्मक। भाषा के संरक्षण और ज्ञान के प्रसार को स्थाई बनाने तथा उसे आगे बढ़ाने एवं भावी पीढियों के लिए सुरक्षित रखने हेतु लिपि का निर्माण किया गया। इसलिए लिपि को भाषा का आवरण या परिधान माना गया है। लिपि का प्रयोग 'दिक' और 'काल' की सीमा को दूर करने के लिए किया जाता है । अभिव्यक्त भाषा दिक और काल से बंधी होती है । प्रारंभ में उच्चारित ध्वनियों को श्रुति परम्परा के द्वारा एक लम्बे समय तक सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया। भावों और विचारों को दीर्घकाल तक जीवित बनाए रखने के लिए प्रतीकों तथा चिह्नों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाने लगा। इस प्रकार कहा जाता है कि लिपि का अविष्कार उच्चरित ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त संकेतों से हुआ है। लिपि ध्वन्यात्मक भाषा को, दृश्य सांकेतिक चिह्नों में परिवर्तित करने की विधि है। जिस प्रकार भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है, उसी प्रकार लिपि भाषा का वाहक- रथ है, जिस पर सवार होकर भाषा पाठक तक पहुंच पाती है। लिपि एक प्रकार से दृश्य भाषा ही हैं।

देवनागरी लिपि

ब्राह्मी की दो प्रमुख शैलियां मानी जाती है- उत्तर शैली और दक्षिण शैली। उत्तर शैली से गुप्त लिपि, कुटिल, शारदा और प्राचीन नागरी का विकास हुआ। प्राचीन नागरी से पूर्वी

नागरी (असमिया, बांग्ला, नेवारी, कैथी, मैथिली) और पश्चिमी नागरी (मराठी, गुजराती, महाजनी, राजस्थानी और देवनागरी) विकसित हुई। शारदा लिपि से कश्मीरी और गुरूमुखी विकसित हुई। दक्षिण शैली (पल्लव लिपि या नन्द नागरी) से तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम लिपियां उद्भूत हुई। एक अन्य मत के अनुसार ब्राह्मी से शारदा, गुप्त और पल्लव लिपियां विकसित हुई। गुप्त लिपि से देवनागरी, मराठी, ओड़िया, बांग्ला, असमिया, गुजराती लिपियां बनी। डॉ. परमानंद पांचाल ने ब्राह्मी की दक्षिणी शैली में ग्रंथ लिपि से कलिंग लिपि, मध्य लिपि और पश्चिमी लिपि को माना है और उत्तरी शैली की प्राचीन नागरी लिपि से पूर्वी और पश्चिमी नागरी का उद्भव बताया है। इतना निश्चित है कि ब्राह्मी के आरंभिक अक्षर बदलते-बदलते आज की देवनागरी के रूप में आ गए हैं। साथ ही देवनागरी ने अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप नए-नए वर्ण भी विकसित किए, जो ब्राह्मी में नहीं थे। उदाहरणार्थ- ब्राह्मी में शून्य (0) का अंक नहीं था, जबकि सैकड़ा और हजार के लिए अलग-अलग लिपि चिह्न थे। देवनागरी ने शून्य का विकास कर मानव सभ्यता को नई अंकीय विधि उपलब्ध कराई। 'ड़' और 'ढ़' भी देवनागरी में दी हैं। ब्राह्मी से ही सिंहली, तिब्बती, बर्मी, जावा, सुमात्रा, बोर्नियों, लाओस कंबोडिया, थाईलैंड और मंगोलिया की लिपि भाषाएं विकसित हुई हैं। इस प्रकार इन देशों की लिपियां भी देवनागरी की सहगोत्री हैं।

देवनागरी लिपि विश्व की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपियों में है। इसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए निश्चित संकेत-चिह्न होने के कारण, जो कुछ लिखा जाता है, वही बोला जाता है। इसमें अपनी ओर से कुछ भी जोड़ना नहीं पड़ता और न किसी ध्वन्यांश को छोड़ने की आवश्यकता ही होती है। इसके सभी वर्णों के उच्चारण का स्थान तथा उच्चारण में श्वांस गति और जिह्वा की स्थिति का बराबर ध्यान रखा गया है। लिप्यंतरण की दृष्टि से यह लिपि किसी भी भाषा को सही रूप में अंकित कर सकती हैं।

नागरी की विशेषताओं को इस प्रकार भी देखा जा सकता हैः-

- देवनागरी वर्णमाला वर्णों का क्रम अत्यंत व्यवस्थित है। पहले स्वर आते हैं, फिर व्यंजन ।
- देवनागरी के स्वरों में भी ह्रस्व एवं दीर्घ क्रम रहता है। स्वरों के पांच वर्ग हैं।
- नागरी में चिह्नों के नाम उसमें, उसके उच्चारण के निकटतम है। यह उच्चारण की अनुवर्तिनी है, वर्तनी की नहीं।
- नागरी लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न है।
- नागरी लिपि का प्रत्येक वर्ण उच्चरित होता है, इसमें कोई मूक वर्ण नहीं है।

- नागरी लिपि वर्णों की लिखावट कलात्मक, सुंदर और सुगठित है और इसमें अपेक्षाकृत कम जगह लगती है। पढ़ने में सुगम और सहज है।
- यह वर्णात्मक लिपि है। इसके सभी वर्ण उच्चारण के अनुरूप हैं। लचीलापन इसकी अन्यतम विशेषता है। लिपि की वैज्ञानिकता अक्षरों से प्रकट होती है।
- उच्चारण के जितने भी उतार-चढ़ाव हो सकते हैं, जितने भी मृदु, कठोर और कठोरतम बलाघात हो सकते हैं, सभी का समावेश नागरी लिपि में किया गया है।
- नागरी की वर्णमाला के किसी भी वर्ण को अलग-अलग करके लिख सकते हैं।
- मुख के पृथक-पृथक स्थानों से उच्चारित होने वाले व्यंजन भी अलग-अलग वर्गों में संग्रहीत हैं। कंठ से बोले जाने वाले 'क' वर्ग में, तालु से बोले जाने वाले 'च' वर्ग में, मूर्धन्य 'ट' वर्ग में, दंत्य 'त' वर्ग में, और ओष्ठ 'प' वर्ग में अक्षर आते हैं।
- सभी व्यंजनों के अंत में 'अ' समाहित है। इसमें वर्ण संयोग की पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिक है।
- वर्णों की आकृति में स्पष्टता है। इसकी वर्णमाला अधिक परिष्कृत और विकसित है।
- इस लिपि में संक्षिप्तता है, स्पेलिंग (वर्तनी) याद रखने की जरूरत नहीं होने, उच्चारण की सरल प्रणाली है।
- इसमें विश्व की सभी क्रमानुगत सभी भाषाओं की और नवागत ध्वनियों को उच्चारित एवं प्रतिनिधित्व करने वाले लिपि चिह्न विद्यमान हैं। इसमें ध्वन्यात्मक-मूल्य अधिक है, इस कारण नए ध्वनि चिह्न अपना कर, इसने अंतर्राष्ट्रीय लिपि (विश्व लिपि) की क्षमता प्राप्त की है।

इन्हीं गुणों के कारण भारत की अष्टम सूची की दस भाषाओं (मराठी, कोकंणी, बोडो, सिंधी, संथाली, मैथिली, डोगरी, संस्कृत, राजस्थानी और हिंदी) ने नागरी को अपनी अभिव्यक्ति लेखन का माध्यम चुना है। संस्कृत से लेकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश तक हिंदी भाषा और साहित्य की लिपि नागरी ही रही हैं। भारत में भले ही शासन व्यवस्था भारतीयों के हाथ रही हो या आक्रमणकारी विदेशियों के हाथ में, सभी ने अपनी शासन व्यवस्था में देवनागरी के महत्व को आदर और सम्मान के साथ स्वीकार किया। बाद में भले ही शासन की राजभाषा फारसी या अंग्रेजी रही हो, किंतु इस काल खंड में भी देवनागरी अपना अस्तित्व बचाए रखने में सफल रही। ईसा से 23 वर्ष पूर्व एक राजकीय दान के ताम्रपत्र में उत्कीर्ण नागरी में लिखा संस्कृत अभिलेख मिला है। ग्यारहवीं सदी में नागरी में लिखे अनेक शिलालेख, मूर्ति अभिलेख और ताम्रपत्र मिले। मध्यकाल के प्रारंभ से लेकर (1200

ई.) मुगल शासन (1556-1605 ई.) तक राजस्व विभाग में नागरी लिपि का निर्विवाद प्रचलन था। मुगल बादशाह अकबर से लेकर औरंगजेब तक के शासन काल में सिक्कों पर और शाही फरमानों में नागरी लिखने की परंपरा थी। दक्षिण भारत के विजयनगर साम्राज्य (1336-1564 ई.) के सिक्कों पर देवनागरी और सभी राजकीय कार्यों में नागरी लिपि का प्रयोग होता था। इसी प्रकार चोल राजाओं (ग्यारहवीं सदी) और केरल के शासकों के सिक्कों पर भी नागरी लिपि अंकित थी। सुदूर दक्षिण से प्राप्त वरगुण का 'पलियम ताम्रपत्र' नागरी लिपि में मिला है। इतना ही नहीं श्रीलंका के पराक्रमबाहु और विजयबाहु आदि शासकों के सिक्कों पर भी नागरी अक्षर मिले हैं। उत्तर भारत में मेवाड़ के गुहिल, अजमेर के चौहान, कन्नौज के गाहड़वाल, कठियावाड़ (गुजरात) के सौलंकी, आबू के परमार, बुंदेलखंड के चंदेल और त्रिपुरी के कलुचरी आदि शासकों के अभिलेख भी नागरी में ही थे। अलबरूनी ने अपने ग्रंथ (1030 ई.) में लिखा था कि मालवा में नागरी लिपि का प्रयोग होता है। इससे स्पष्ट है कि आठवीं से लेकर ग्यारहवीं सदी तक नागरी लिपि पूरे देश में प्रचलन में थी। उस समय यह सार्वदेशिक लिपि थी। हिंदी के सैकड़ों वर्षों का समृद्ध साहित्य नागरी की शक्ति का ही परिचायक है।

ईस्ट इंडिया कंपनी शासन काल के प्रारंभ में ही एशियाटिक सोसाइटी कलकता के संस्थापक अध्यक्ष सर विलियम जोंस ने अपने शोध पत्र (17 अप्रैल 1724 ई.) में नागरी लिपि को अन्य लिपियों की अपेक्षा सर्वाधिक श्रेष्ठ लिपि घोषित किया। इसे नागरी लिपि आंदोलन का शुभारंभ माना जा सकता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रथम संविधान (1 मई 1793 ई.) के प्रथम अनुच्छेद की तृतीय धारा में नागरी लिपि को सरकारी स्वीकृति मिली। फ्रेडरिक जॉन शौर ने अपने न्यायधीश की सेवा (1832-1834 ई.) के दौरान निर्णय दिया था कि देवनागरी भारत की लिपि है, फारसी नहीं। सन् 1837 में सरकार ने निश्चय किया कि न्याय और राजस्व विषयक सभी कार्य फारसी के विपरीत, यहाँ की देश भाषा में हों। बाद में 30 सितम्बर 1854 को सरकारी आदेश आया कि गांवों के पटवारियों के कागजात हिंदी भाषा और नागरी लिपि में लिखे जायं। डॉ. राजेन्द्रलाल मित्रा ने 1864 में 'जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी' यह विचार में व्यक्त किया कि देवनागरी लिपि, हिंदवी और उर्दू भाषाओं की लिपि के रूप में स्वीकार की जाए। सन् 1866 में एफ.एस. ग्राउस ने नागरी लिपि को शासकीय स्वीकृति दिलाने की दिशा में मजबूत कदम उठाए। सन् 1868 में राजा शिव प्रसाद "सितारेहिंद" ने जनसाधारण की शिक्षा के लिए नागरी लिपि को सशक्त समर्थन दिया और हिंदी और नागरी लिपि के कट्टर समर्थक के रूप में अपनी पहचान बना ली। वे पहले

भारतीय साहित्यकार थे, जिन्होंने नागरी लिपि के समर्थन में ब्रिटिश सरकार को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। सन् 1873 में पश्चिमोत्तर प्रदेशवासियों ने भी इसी प्रकार का ज्ञापन सरकार को दिया। 6 जून 1881 ई. को मध्यप्रदेश की कचहरियों में नागरी लिपि को सरकारी मान्यता मिल गई। जबकि उस समय विभिन्न देशी रजवाड़ों में शासन प्रशासन की लिपि फारसी थी। इंदौर के मल्हार राव होलकर (1693-1766) तत्पश्चात लोकमाता देवी अहिल्याबाई होलकर (1725-1795) नागरी को राजकाज की लिपि बनाया अयोध्या राज्य ने सन् 1903 में कोटा 1907, में अलवर ने 1909 में छत्तरपुर में 1910 में अपने राज्य में शासन की लिपि नागरी स्वीकार की। 1854 में भारत के अंतिम मुगल बादशाह जफर के भतीजे वेदार बख्त ने स्वाधीनता संग्राम की सूचनाओं को प्रसारित करने के लिए 'पयामे आजादी' अखबार निकाला जो फारसी और नागरी दोनों लिपि में था।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 1857 में संस्कृत के लिए सभी विश्वविद्यालयों में देवनागरी को स्वीकृत कराया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 1909 में अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में हिंदी की अनिवार्यता और इसे नागरी और फारसी में लिखने का आग्रह किया। वर्ष 1916 के कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गांधी जी के सभापतित्व में 'एक लिपि परिषद' के कार्यक्रम में नागरी लिपि और हिंदी भाषा को सार्वदेशिक रूप में प्रचार हेतु स्वीकार किया गया। वर्ष 1918 के इंदौर अधिवेशन (आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन) में अपने अध्यक्षीय भाषण में गांधी जी ने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा का स्थान दिया था। जुलाई 1927 में गांधी जी ने कहा था- 'भारत की सभी भाषाओं के लिए एक लिपि होना लाभदायक है और वह लिपि नागरी ही हो सकती है। भारत की सभी भाषाओं के लिए नागरी लिपि ही चलनी चाहिए।"

आधुनिक युग के हमारे अग्रणी नेताओं, प्रबुद्ध विचारकों और मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए नागरी लिपि के प्रयोग पर बल दिया था। राजाराम मोहन राय, बंकिमचन्द चटर्जी, महार्षि दयानंद, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, केशववामन पेठे, कृष्णस्वामी अय्यर, मुहम्मद करीम छागला आदि मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए 'नागरी लिपि' की महत्ता को स्वीकार किया था। न्यायमूर्ति शारदा चरण मित्र (1848-1916) ने 1905 में 'एक लिपि विस्तार परिषद' की स्थापना की और 1907 में 'देवनागर' नाम से पत्रिका भी निकाली, जिसमें कन्नड, तेलुगु, बांग्ला आदि भाषाओं की रचनाएं नागरी लिपि में प्रकाशित की जाती थी। लोकमान्य तिलक ने 1905 में नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में कहा था- 'देवनागरी को समस्त भारतीय भाषाओं के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए। 'दक्षिण भारतीय विद्वान

वी. कृष्णास्वामी अय्यर ने 1910 में इलाहाबाद में कहा था- 'देश की एकता के लिए देवनागरी लिपि को स्वीकार किया जाना चाहिए।"

'आचार्य विनोबा भावे ने नागरी के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा था- 'हिन्दुस्तान की एकता के लिए हिंदी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी देगी। इसीलिए मैं चाहता हूं कि सभी भाषाएं देवनागरी में ही लिखी जाएं। सभी लिपियां चलें, साथ-साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाए।' देवनागरी एक मजबूत कड़ी का काम करेगी और देश के एकीकरण में सहायक सिद्ध होगी।

संविधान में नागरी हिंदी

स्वाधीनता के बाद गठित संविधान समिति ने फरवरी 1948 को जो प्रारूप प्रस्तुत किया, उसमें राजभाषा का कोई उल्लेख नहीं था। परन्तु कन्हैया लाल माणिक लाल, मुंशी के अथक प्रयासों से सितंबर 1949 में संविधान सभा में राजभाषा पर चर्चा हुई। नागरी लिपि की महत्ता को सभी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया। इसीलिए भारत की संविधान सभा ने देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी को राष्ट्रभाषा नियत करने का प्रस्ताव तमिलभाषी गोपाल स्वामी आयंगर ने रखा, जिसे तेलुगुभाषी दुर्गाबाई, कन्नडभाषी कृष्णमूर्ति, गुजराती-भाषी कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, मराठीभाषी शंकरराव देव, उर्दूभाषी मौलाना अबुल कलाम आजाद ने समर्थन दिया।

फलस्वरूप 14 सितंबर 1949 को संविधान के भाग-17 के अनुच्छेद 343 (1) में राजभाषा के रूप में देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी को स्वीकार किया गया, जो 26 जनवरी, 1950 से लागू हुआ। हमारे विद्वान राजनेताओं को यह विश्वास था कि देवनागरी राष्ट्रीय एकता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। भारत की लगभग सभी प्राचीन और आधुनिक भाषाओं की लिपि नागरी है। नागरी हिंदी में अद्भुत ग्रहणशीलता है, यह जीवन्त भाषा है, इसने अपनी सुरक्षा के लिए व्याकरण का अभेद किला नहीं बनाया है। इसके दरवाजे सभी भाषाओं से आगत ध्वनियों और शब्दों के लिए खुले हुए हैं। इसकी संपन्नता, पूर्णता, व्यापकता, सरलता, सुंदरता आदि को ध्यान में रखकर देश के विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों ने नागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि बनाने की एकमत से इच्छा व्यक्त की। शुद्ध उच्चारण, शुद्ध लेखन एवं निश्चित बोधगम्यता एवं अभिव्यक्ति की प्रभावशीलता को सुनिश्चित करने के लिए हमारे मनीषियों ने सदियों पूर्व प्रत्येक वर्ण के उच्चारण को इतनी अच्छी तरह से बता दिया था कि यही तथ्य हमारी नागरी लिपि और हिंदीभाषा की एक गौरवपूर्ण धरोधर बन गई।

देवनागरी, रोमन लिपि की भांति विदेशी लिपि नहीं है, अपितु पूर्णतः भारतीय है। इसकी उत्पति और विकास भारत भूमि में हुआ है। इस प्रकार इसकी जड़ें देश के इतिहास और संस्कृति में है। भारत में जितनी लिपियां प्रचलित हैं, उनमें नागरी लिपि को जानने वालों की संख्या सर्वाधिक है। स्वतंत्रता से पहले नागरी से ही देश की प्रतिष्ठा की परिकल्पना अधिक व्यापक थी। इसे भारत के कार्यालयों की लिपि अर्थात मात्र राजकाज की लिपि बनाने की इच्छा नहीं थी, बल्कि संपूर्ण भारत की सम्पर्क लिपि, सम्पूर्ण भारतीयता एवं राष्ट्रीय चेतना की लिपि बनाने का संकल्प था। नागरी-हिंदी को राष्ट्र में संबद्ध परम्पराओं, रीति-रिवाजों तथा भावनाओं के साथ सम्पूर्ण राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम एवं प्रतीक माना गया। नागरी लिपि में लिखी हिंदी, सभी उपभाषाओं और बोलियों की सांझी संपत्ति है। संस्कृत तथा प्राकृतों की परंपरा को आत्मसात करने के कारण, यह कमोवेश सभी भारतीय भाषाओं की सम्मिलित धरोहर है। हिंदी के तत्सम शब्द संस्कृत परंपराओं के हैं, तद्भव शब्द जनभाषाओं (प्राकृतों) से गृहीत है, अंग्रेजी, फारसी, पुर्तगीज, फ्रेंच आदि भाषाओं से आगत शब्द संपूर्ण भारतीय भाषाओं की संपति है, देशज शब्द लोक की सर्जनात्मकता के परिणाम है। भाषा के राष्ट्रीय विस्तार में क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव से, हिंदी के विविध रूप विकसित हो रहे हैं।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित तीर्थों में पूजा-अर्चना के लिए संस्कृत भाषा और सामान्य बोलचाल के लिए हिंदी का व्यवहार दिखाई देता है। अमरनाथ से लेकर कन्याकुमारी और द्वारिका से लेकर जगन्नाथ पुरी, कामख्या, गोविंद देव (इंफाल) तक हिंदी-नागरी ही, विविध भाषा-भाषियों को एकसूत्र में पिरोती है। प्रारंभ में हिंदी का प्रयोग 'जबाने हिंदी' और 'अल हिंदय; (अलबरूनी, 1025 ई.) के रूप में भारत की समस्त भाषा बोलियों के लिए होता था। हिंदी-नागरी भारतीय आत्मा का स्वर है, हृदय की वाणी है। हिंदी अपने राष्ट्रीय स्वरूप में दखिनी हिंदी, हैदराबादी हिंदी, मुंबईया हिंदी, अरूणाचली हिंदी, पूर्वोत्तरी हिंदी आदि रूपों में विस्तारित हो गई हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में फैली हिंदी का यह जबानी फैलाब लिपि के स्तर पर भी देखा जा सकता है। संपूर्ण देश में विज्ञापनी भाषा में हिंदी का बढ़ता प्रयोग इसका उदाहरण है। हिंदी ने पूरे राष्ट्र को अलग-अलग भाषायी पहचान के बावजूद एक भाषायी पहचान दी है। भारत में कई भाषा परिवार हैं, किंतु सभी भाषाएं समरूपी हैं और सभी भाषाओं में सम संरचनात्मकता है। हिंदी की ताकत सन 1623-24 में इतनी थी कि 'डिल्ला बेल्ला' नाम के एक यूरोपीय यात्री ने अपनी पुस्तक 'इंडियन ट्रैवेल्स' में लिखा था- 'इस देश में हिंदुस्तानी ही संपर्क भाषा है और उसकी लिपि नागरी है।' 'राष्ट्रपिता

महात्मागांधी ने 1916 में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में भाषण देते हुए कहा था- "हिंदी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य के प्रश्न से कम महत्वपूर्ण नहीं है।' 'हिंदी ही ऐसी भाषा है जो 1600 बोलियों 300 क्षेत्रीय भाषाओं और 22 राष्ट्रीय भाषाओं को जोड़ने का प्रयास कर रही है। हिंदी एक ऐसी भाषा है जिसके वाक्यों में किसी भी भाषा के शब्दों को समयोजित करना आसान है।

हिंदी और नागरी के विकास एवं प्रचार-प्रसार तथा संरक्षण-संवर्द्धन में हिंदी मीडिया, फिल्मों, टी.वी. कार्यक्रमों, पत्र-पत्रिकाओं और साहित्य सबका सकारात्मक योगदान है। जो लोग हिंदी भाषा और नागरी लिपि को अपने साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों का माध्यम बना चुके हैं, उन सबकी मातृभाषा, हिंदी भाषा नहीं है। उन्होंने इस भाषा और नागरी को माध्यम बनाकर देश की एकता को दृढ़ किया हैं। भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 10वें विश्व हिंदी सम्मेलन का भोपाल में उद्घाटन करते हुए कहा था- "एक ऐसा रास्ता विनोबाजी के द्वारा प्रेरित विचारों से, लोगों ने से डाला था कि हमें धीरे-धीरे आदत डालनी चाहिए कि हिंदुस्तान की जितनी भाषाएं हैं उन भाषाओं को अपनी लिपि में लिखने की आदत बरकरार रखें, उसको समृद्ध बनाएं लेकिन नागरी लिपि में भी अपनी भाषा लिखने की आदत डालें। शायद विनोबाजी के ये विचार अगर प्रभावित हुआ होता तो लिपि भी भारत की विविध भाषाओं के लिए और भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए, एक बहुत बड़ी ताकत के रूप में उभर आई होती।"

सदस्य, हिंदी सलाहकार समिति
संस्कृति मंत्रालय, नई दिल्ली-110045
मो.नं.- 9810981398

राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 एवं भारतीय भाषाएँ

—डॉ. अनुराग त्रिपाठी—

भारत की समग्र शिक्षा का एक लंबा और शानदार इतिहास रहा है। प्राचीन भारत में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं था, बल्कि स्वयं का पूर्ण बोध और मुक्ति भी इसका उद्देश्य था। स्वामी विवेकानंद के अनुसार "शिक्षा सूचना या जानकारियों की वह मात्रा नहीं है जिसे आपके मस्तिष्क सें डाल कर वहाँ कोलाहल पैदा किया जाता है और जो आपके जीवन भर समझ नहीं आता। हमारे पास जीवन निर्माण, आदमी बनाने वाले विचारों को आत्मसात करने वाला चरित्र होना चाहिए। यदि आपने पाँच विचारों को आत्मसात किया है और उनको अपना जीवन और किरदार बनाया है तो आपके पास हर उस व्यक्ति के बनिस्बत अधिक शिक्षा है जिसने पूरे पुस्तकालय को कंठस्थ कर लिया है। यदि शिक्षा सूचनाओं/जानकारियों के समान होती तो पुस्तकालय दुनिया के सबसे बड़े ज्ञानी हैं और इनसाइक्लोपीडिया सबसे महान ऋषि हैं।"

राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 में भी यह कोशिश की गई है कि शैक्षिक परिदृश्य को परिवर्तित करके युवाओं को वर्तमान एवं भावी चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किया जाय। संस्कृति, परम्परा, राष्ट्रप्रेम, चरित्र-निर्माण, मानवीय मूल्यों के विकास के साथ यह कोशिश की गई है कि रटंत पद्धति से अलग हटकर अवधारणात्मक समझ पर जोर दिया जाय और युवाओं में सृजनात्मक, संज्ञानात्मक, चिन्तनपरक प्रतिभा के विकास और नवाचार पर ज्यादा ध्यान दिया जाय।

मातृभाषा/स्थानीय भाषा में शिक्षा; बहु-भाषिकता और भाषा की शक्ति

भाषा से जुड़े मुद्दे शिक्षा के लिए सबसे अधिक महत्व रखते हैं। भाषा संवाद का माध्यम होने के अतिरिक्त किसी व्यक्ति, समाज और इसके सामुदायिक संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखने और इसके सम्प्रेषण का माध्यम भी है। किसी भी तरह के ज्ञानार्जन या ज्ञान निर्माण और सभी संज्ञानात्मक और सामाजिक गतिविधियों में भाषा सीधे-सीधे मध्यस्थता करती है। बाल-विकास, बाल-मनोविज्ञान और भाषा-विज्ञान में हुए अध्ययन यह बताते हैं कि बच्चे अपनी मातृभाषा में सबसे बेहतर सीखते हैं। 2 से 8 वर्ष की उम्र के दौरान बच्चों में अनेक भाषाओं को सीखने की गज़ब की क्षमता होती है। यह

एक बेहद महत्वपूर्ण सामाजिक क्षमता है, जिसको पोषित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार बहु-भाषिकता के अनेक फायदे हैं, जिनका हमारे जीवन में खास महत्व है।

मातृभाषा/घर की भाषा शिक्षा के माध्यम रूप में : जहाँ तक भी संभव हो - कम से कम ग्रेड 5 तक, लेकिन वांछनीय तो यह है कि यह ग्रेड 8 तक हो- सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में होने वाले संवाद का माध्यम मातृभाषा/घर की भाषा/स्थानीय भाषा होगी। इसके बाद, घर की भाषा/मातृभाषा को लगातार एक भाषा के रूप में जहाँ तक संभव हो, सिखाना चाहिए। इसी प्रकार उच्च दर्जे की पाठ्य-पुस्तकें, जिसमें विज्ञान भी शामिल है, जरूरत के मुताबिक और जितना संभव है स्थानीय भाषा/मातृभाषा में शिक्षा मुहैया करवाई जाएगी ।

बहु-भाषिकतावाद और भाषा की शक्ति

बहु-भाषिकता भारत के लिए एक अनिवार्यता है और किसी भी व्यक्ति के सीखने के अवसरों को समृद्ध करने और उसकी समझ को व्यापक करने में यह एक वरदान है, ना कि कोई बोझ। यदि बच्चों को कम उम्र में ही अलग-अलग भाषाओं का माहौल मिले तो वे बहुत तेजी से इन्हें सीख लेते हैं। अनेक अध्ययनों में पाया गया हैं कि वे बच्चे जो बहुभाषी होते हैं, एकल-भाषी बच्चों की तुलना में तेज सीखते हैं और अपने-अपने जीवन में बेहतर करते हैं। यह बच्चों को बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनाती है और अपने जीवन में एक से अधिक तरीकों से सीखने और सोचने में सक्षम बनाती है, क्योंकि बहु-भाषिकता के चलते वे अनेक तरह के साहित्य और इनमे प्रयोग होने वाली उपमाएं, शब्द, अभिव्यक्ति के तौर-तरीके आदि अर्जित कर लेते हैं जो उन्हें बेहतर संवाद और चिंतन में मदद करते हैं। बहुभाषी भारत बेहतर शिक्षित और राष्ट्र के रूप में बेहतर संगठित होगा, और तो और, भारत की भाषाएँ दुनियाँ की सबसे समृद्ध और वैज्ञानिक भाषाओं में से एक हैं, इनका एक विशाल प्राचीन और आधुनिक साहित्य उपलब्ध है, जिसने भारत की राष्ट्रीय पहचान को गढ़ने में मदद की है।

यदि हम वास्तव में समाज, शिक्षा और रोजगार व्यवस्था में सच्चे अर्थों में समानता स्थापित करना चाहते हैं तो जल्द से जल्द अंग्रेजी की इस सत्ता को पूरे देश में रोकना होगा। इसके लिए प्रमुख रूप से पढ़े-लिखे और अभिजात वर्ग को ही कोशिश करनी होगी। उन्हें जहाँ भी संभव हो भारतीय भाषाओं का इस्तेमाल करना होगा, इन भाषाओं को महत्व और सम्मान देना होगा। ख़ास तौर पर लोगो को रोजगार के वक्त चयनित करने, किसी भी प्रकार के सामाजिक आयोजनों, सभी स्कूलों और शिक्षा संस्थानों और रोजमर्रा की बोल-चाल में

अपनी भाषा को वरीयता देनी होगी। पिछले कुछ समय में भारतीय भाषाओं ने जो अपना महत्व और गौरव खोया है, वह उन्हें वापस मिलना चाहिए । पूरे देश में स्कूलों और विश्वविद्यालयों में भाषा शिक्षण के पद सृजित किये जाने चाहिए ताकि देश भर के अलग-अलग स्थानों के अलग-अलग तबकों और समुदायों के लोग आपस में जुड़ सकें।

स्कूलों में त्रिभाषा फ़ॉर्मूला की निरंतरता : संवैधानिक प्रावधानों, भारतीय जन, प्रादेशिक क्षेत्रों और संघ की आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए हमें त्रिभाषा फ़ॉर्मूला को लगातार बनाए रखना होगा । यह फ़ॉर्मूला अभी भी इस्तेमाल किया जाता है । इसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 के बाद से अपनाया गया, बाद में 1986 और 1992 की शिक्षा नीतियों में भी इसे अपनाया गया और फिर पुन: NCF 2005 में भी इस पर जोर दिया गया ।

हालांकि, यह अब शोध में भी निकल कर आया है कि 2 वर्ष से लेकर 8 वर्ष तक की उम्र में बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता बहुत ही प्रखर होती है; साथ ही बहु-भाषिकता बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के लिए बेहद फायदेमंद है, इसलिए बच्चों को अब उनके आरम्भिक वर्षों में ही, बुनियादी अवस्था और उसके बाद, तीन भाषाओं को सिखाया जाएगा ।

त्रिभाषा फ़ॉर्मूला का अमल : हमारे बहुभाषी देश में बहुभाषिक क्षमताओं के विकास और इनके बढ़ावे के लिए त्रिभाषा फ़ॉर्मूला को शिद्दत के साथ अमल में लाया जाएगा । हालांकि इसका हिंदी भाषी क्षेत्रों में बेहतर अमल किया जाना चाहिए, यहाँ राष्ट्रीय समन्वयन के लिए स्कूलों में हिंदी के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं को भी सिखाना चाहिए । इससे भारतीय भाषाओं का, इन भाषाओं के शिक्षकों का, इनके साहित्य का ओहदा बढ़ेगा और हमारे विद्यार्थियों की समझ और दृष्टि को भी व्यापक बनाने में यह मदद करेगा ।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा पूरे देश की प्रांतीय भाषाओं और ख़ास तौर पर अनुसूची 8 की भाषाओं के शिक्षकों पर अच्छी खासी मात्रा में निवेश किया जाएगा । पूरे देश में भारतीय भाषाओं के अध्ययन और इनके बढ़ावे के लिए, सभी राज्यों में त्रिभाषा फ़ॉर्मूला को लागू करने के लिए सभी राज्य अन्य राज्यों के साथ अनुबंध कर सकते हैं, जिसके अंतर्गत एक-दूसरे राज्य से भारी मात्रा में भाषा के शिक्षकों की सेवाओं को लिया जा सकेगा ।

भाषा शिक्षण के लिए शिक्षकों की नियुक्ति ऐसे स्थानों पर जहाँ की भाषा बोलने वाले शिक्षकों की यदि वहां कमी है तो विशेष प्रयास किये जायेंगे और विशेष रूप से स्कीम

चलाई जाएगी जिसके तहत यहाँ ऐसे शिक्षकों (जिसमें रिटायर्ड शिक्षक भी शामिल हैं) को नियुक्त किया जाएगा जो यहाँ की स्थानीय भाषा बोल सकते हैं। पूरे भारत भर में एक देशव्यापी प्रयास किया जाएगा, जिसके तहत भारतीय भाषाओं के शिक्षकों को तैयार किया जाएगा।

सेकेंडरी स्कूल में विदेशी भाषाएँ : सेकेंडरी स्कूल के दौरान उन विद्यार्थियों के लिए जिनकी रुचि है, विदेशी भाषाओं (जैसे फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, चाइनीज़, जैपनीज़) को सीखने-सिखाने के अवसर उन्हें मुहैया करवाए जायेंगे। उन्हें इन भाषाओं के चुनाव के विकल्प दिए जायेंगे और इनके कोर्स उपलब्ध करवाए जायेंगे। विदेशी भाषा एक विकल्प होगी जिनका चुनाव विद्यार्थी कर सकते हैं लेकिन यह त्रिभाषा (जो वे त्रिभाषा फ़ॉर्मूला के तहत सीख रहे होंगे) के स्थान पर नहीं होंगी, क्योंकि हमें देश में कुछ बेहतरीन अनुवादक चाहिए, इसलिए विदेशी भाषाओं के शिक्षण में भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं के बीच अनुवाद के अभ्यास एक अभिन्न अंग के रूप में शामिल किये जायेंगे।

भारत की भाषाओं पर कोर्स : ग्रेड 6-8 के दौरान देश का हर विद्यार्थी भारत की भाषाओं में एक कोर्स करेगा। इस कोर्स के ज़रिये विद्यार्थी इन भाषाओं में समानता और इनके फर्क, इनकी शब्दावली, लिपि, व्याकरण की सरंचना, इनके उद्भव और इनके संस्कृत और अन्य शास्त्रीय भाषाओं से सम्बन्ध, इन पर एक-दूसरे के प्रभाव, आदि तमाम मुद्दों पर सीखेंगे। हमारे विद्यार्थी यह भी सीखेंगे कि भारत के किस भौगोलिक क्षेत्र में कौन सी भाषा बोली जाती है और वे जनजातीय भाषाओं की प्रकृति और संरचना को भी समझेंगे। वे सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में कुछ पंक्तियाँ जैसे अभिवादन करना और कुछ मज़ाक और कछ रोज़मर्रा में काम आने वाले वाक्यों का प्रयोग करना सीखेंगे। इसी तरह इन प्रमुख भाषाओं के साहित्य से भी उनका परिचय होगा (जैसे प्रमुख टेक्स्ट और लेखकों का परिचय और उनके चुनिन्दा टेक्स्ट का अध्ययन)। ऐसी कक्षा हमारे विद्यार्थियों के लिए बेहद कारगर साबित होगी, इससे उन्हें हमारी सांस्कृतिक धरोहर का पता चलेगा और भविष्य में वे बेहतर रूप से अलग-अलग क्षेत्रों के भारतीय लोगों से संवाद स्थापित कर पायेंगे। NCERT, SCERTs और पूरे देश के भाषाविदों के साथ मिलकर इस महत्वपूर्ण कोर्स को विकसित करेंगे।

संस्कृत का अध्ययन और इसके विशाल साहित्य का ज्ञान: संस्कृत विभिन्न विषयों के ज्ञान का विशाल भण्डार रही है। इसमें गणित, दर्शन, व्याकरण, संगीत,

राजनीति, चिकित्सा, वास्तु, धातुकर्म, नाटक, काव्य, कहानी, और भी बहुत कुछ लिखा गया और हर क्षेत्र में काम करने वाले लोगों ने लिखा। संस्कृत (और प्राकृत) ने भारत की ज्ञान की ख़ोज की परम्परा और ख़ास तौर पर 64 कलाओं या लिंबरल आर्ट्स का अध्ययन करने में एक महती भूमिका निभायी है।

संस्कृत के इस महत्वपूर्ण योगदान और भारत की अन्य भाषाओं के विकास और राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता को बनाने में इसकी महती भूमिका को देखते हुए संस्कृत का और इसकी वैज्ञानिक प्रकृति का अध्ययन करने की सुविधाओं को सृजित करना होगा। साथ ही साथ संस्कृत के विभिन्न लेखकों और विद्वानों के (जैसे कालिदास और भास के नाटक) के प्राचीन और मध्यकालीन लेखन के प्रासंगिक अंशों को स्कूलों और उच्च शिक्षा संस्थानों में व्यापक स्तर पर इस्तेमाल किया जाएगा।

जहाँ कही भी प्रासंगिक हो वहाँ स्कूल शिक्षाक्रम के हर विषय में संस्कृत के उस साहित्य को शामिल किया जायेगा, जिसने इतिहास को बदलने में मदद की-जैसे भास्कर की गणित पर कवितायें और पहेलियाँ जो विद्यार्थियों को गणित में रुचि लेने में मदद करेंगी और इसके अध्ययन को सहज बनायेंगी, इसी तरह पंचतंत्र की कहानियाँ नैतिक मुद्दों पर चर्चा में शामिल की जायेंगी।

अनुसूची 8 में शामिल सभी भाषाओँ के साथ संस्कृत को भी स्कूल और उच्च शिक्षा में एक ऐच्छिक भाषा के रूप में रखा जायेगा। फाउंडेशनल और मिडिल स्कूल स्तर पर संस्कृत की पाठ्य-पुस्तकें दुबारा से Simple Standard Sanskrit (SSS) में लिखी जाएँगी ताकि Sanskrit through Sanskrit (STS) सिखाई जा सके और इसे आनंददायी बनायी जा सके।

भारत की सभी शास्त्रीय भाषाओं में कोर्स उपलब्ध करवाना : संस्कृत के अलावा भारत की अन्य शास्त्रीय भाषाओं पाली, फ़ारसी, प्राकृत, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयाली और उड़िया आदि के समृद्ध साहित्य के शिक्षण को स्कूलों में व्यापक रूप से उपलब्ध करवाया जायेगा। ताकि हम इन्हें सहेज कर रख सकें। ख़ास तौर पर उन राज्यों में जहाँ इन्हें सबसे बेहतर तरीके से सिखाया और पोषित किया जा सकता है। अन्य शास्त्रीय भाषाओं के भारत भर में विभिन्न लेखकों के द्वारा रचे गए साहित्य को हमारे शिक्षाक्रम में समुचित स्थान दिया जायेगा और साहित्य व लेखन की कक्षाओं में विद्यार्थियों को प्रेरित किया जायेगा कि वे इनके विशाल और समृद्ध साहित्य का अध्ययन करें (जैसे शास्त्रीय

तमिल में संगम काव्य, पाली में जातक कथाएँ, उड़िया में सरला दास का कार्य, कन्नड़ में हरिश्चंद्र काव्य, फ़ारसी में अमीर खुसरों का काम, कबीर का काव्य आदि) ।

शास्त्रीय भाषा पर एक दो-वर्षीय प्रासंगिक कोर्स : हमारे बच्चों के समृद्ध विकास के लिए और इन भाषाओं के कलात्मक और गौरवमयी परंपरा को सहेज कर रखने के लिए सभी स्कूलों (सरकारी या प्राइवेट) के सभी बच्चे ग्रेड 6-8 में कम से कम एक भारतीय शास्त्रीय भाषा पर दो-वर्षीय कोर्स करेंगे, जिसमें उन्हें यह विकल्प दिया जायेगा कि वे इस भाषा का अध्ययन लगातार सेकेंडरी और यूनिवर्सिटी शिक्षा में भी करते रह सकते हैं। ऐसे सभी कोर्स को अधिक रुचिकर और आनंददायी बनाने के लिए समाज के अलग-अलग तबकों से आये लेखकों के साहित्य को यहाँ शामिल किया जायेगा और इनका अध्ययन किया जायेगा और इनके स्वर, इनके उद्भव और इनके आधुनिक भाषाओं पर प्रभावों को समझा जाएगा।

भारतीय कला और संस्कृति का प्रचार न केवल राष्ट्र के लिए बल्कि व्यक्ति के लिए भी महत्वपूर्ण है । सांस्कृतिक जागरूकता और अभिव्यक्ति बच्चों में विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण मानी जाने वाली भाषा प्रमुख दक्षताओं में से एक हैं । बच्चे एक सकारात्मक सांस्कृतिक पहचान और आत्म-सम्मान का निर्माण अपनी भाषा के माध्यम से कर सकते हैं । इस प्रकार सांस्कृतिक जागरूकता के साथ-साथ भाषायी जागरूकता भी राष्ट्र-निर्माण के लिए आवश्यक है।

सहायक आचार्य (हिन्दी)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9453244602

राजभाषा हिन्दी का आधुनिक स्वरूप

—एस. पी. सिंह—

भारतीय संविधान द्वारा 14 सितम्बर, 1949 को अन्तिम निर्णय लिया गया कि खड़ी बोली हिन्दी ही भारत की राजभाषा होगी । इस प्रकार भारत में पहली बार हिन्दी को राजभाषा होने का सम्मान प्राप्त हुआ । उसके बाद इसे महत्व देने तथा हिन्दी के उपयोग को प्रचलित करने के लिए 1953 के उपरान्त प्रति वर्ष 14 सितम्बर को 'हिन्दी दिवस' यादगार के रूप में मनाया जाता है, जिसके अन्तर्गत कार्यशालाएँ एवं प्रोत्साहन युक्त प्रतियोगिताएँ तथा कई प्रकार के अन्य कार्यक्रम भी सर्वत्र विभिन्न संस्थाओं में संचालित किये जाते हैं ।

हिन्दी हमारे देश की प्रथम तथा विश्व में तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है । यह भारत संघ की राजभाषा होने के साथ-साथ ग्यारह राज्यों एवं तीन संघ शासित क्षेत्रों की भी प्रमुख राजभाषा है । संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल अन्य इक्कीस भाषाओं के साथ हिन्दी का एक विशेष स्थान है ।

हमारे देश की सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा हिन्दी है, क्योंकि यह केवल भारतवर्ष में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व में अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी है । आज हिन्दी के माध्यम से देश-विदेश में विभिन्न प्रकार की सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं में शिक्षा से लेकर कार्यालयीन कामकाज तक बड़ी सहजता के साथ सम्पन्न किये जा रहे हैं । यह सम्पूर्ण विश्व में बोली जाने के कारण ही विश्वहिन्दी के नाम से विख्यात हुई है । इसीलिए हिन्दी ने सारे विश्व में अपरिमित और सराहनीय गौरव प्राप्त किया है ।

हिन्दी में कार्य करने हेतु और गति देने के लिए राजभाषा विभाग ने सरल हिन्दी शब्दावली भी तैयार की है, जिससे ज्ञान-विज्ञान तथा मौलिक पुस्तक लेखन-क्षेत्र में अधिक बढ़ावा मिल सके । सरल शब्दों के प्रयोग से सरल भाषा में ग्रन्थों की रचना होने से ग्रामीण जनों के साथ-साथ अन्य लोगों को भी पढ़ने और समझने में काफी आसानी हो ।

आज राजभाषा अधिकारी, मीडिया, फिल्म, जनसम्पर्क, बैंकिंग क्षेत्र, विज्ञापन, हिन्दी अध्ययन-अध्यापन, पत्रकारिता, हिन्दी अनुवाद, रेडियो एवं टेलीविजन द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करने के माध्यम, विज्ञान तकनीकी व अनुसंधान क्षेत्र, संगोष्ठी, पखवाड़ा, कार्यशाला, सम्मेलन आदि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के वक्तव्य एवं

व्याख्यानों के माध्यम, इण्टरनेट, दूरसंचार, मोबाइल तथा कम्प्यूटर आदि के माध्यम से समूचे विश्व में राजभाषा हिन्दी निरन्तर आलोकित हो रही है।

प्राचीनकाल से ही अनगिनत हिन्दी साहित्यकार, लेखक, कवियों एवं मनीषियों ने गद्य तथा पद्य रूप में नाना प्रकार की रचनाओं का हिन्दी भाषा में सृजन कर अपने अनमोल, ज्ञानवर्द्धक एवं अनूठे विचारों को जन-जन तक फैलाया है और आज भी यह कार्य सर्वत्र जारी है। साथ ही, गीत-संगीत के माध्यम से भी यह हिन्दी आज सभी लोगों के बीच फल-फूल और पनप रही है।

प्राचीन देवभाषा संस्कृत से जन्मी हिन्दी को हमारे देश में बड़ी बेटी के रूप में माना जाता है, इसीलिए इसमें समाहित शब्द संस्कृत के ही अनुरूप विद्यमान हैं। जैसा कि हम देखते हैं, हमारी नस्लें या सन्तानें जो होती हैं, उनमें प्रवाहित रक्त अपने माता-पिता का ही होता है। इसीलिए शारीरिक और मानसिक रूप से संरचना और गुणवत्ता भी उसी भाँति स्वतः सन्तानों को प्राप्त होती है। प्राकृतिक रूप से ऐसा होना स्वाभाविक है। ठीक इसी प्रकार संस्कृत रूपी माँ की सन्तान में भी वही संरचना एवं गुणवत्ता मूल रूप से विद्यमान है।

हमारे देश की राजभाषा हिन्दी की एक विशेषता यह भी है कि इसके शब्दों का उच्चारण उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार उसकी लिखावट होती है। इसीलिए इसे समझने, लिखने, पढ़ने और बोलने में कोई भ्रम तथा असुविधा नहीं होती। जबकि विश्व की कुछ भाषाएं ऐसी हैं, जिनकी लिखावट, बोली और उच्चारण में फर्क होने के कारण अन्य भाषा-भाषी लोगों को लिखने, बोलने और समझने में कहीं-कहीं दिक्कत का भी सामना करना पड़ता है।

हिन्दी एक ऐसी भाषा है, जिसे सीखने के लिए इतनी कठिनाई नहीं होती, क्योंकि इसका स्वरूप ही ऐसा है। लिपि देवनागरी होने के कारण इसकी जैसी आकृति है, वैसी ही प्रकृति भी है। ऐसा नहीं है कि लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है। जिस भाषा का ऐसा स्वरूप होता है, उसे सीखना प्रत्येक व्यक्ति के लिए बहुत सहज और रुचिकर होता है।

राजभाषा हिन्दी अपने अद्भुत प्राकृतिक स्वरूप के कारण हजारों भाषाओं की भीड़ में रहकर भी सभी जनों की अत्यन्त प्रिय बनी, जो देश और विदेश के लोगों के दिलों पर राज कर रही है। इसकी लोकप्रियता गाँव से लेकर शहर तक और देश से लेकर विदेश तक सर्वत्र व्याप्त है। इसीलिए यह जन-जन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

जहाँ एक तरफ हिन्दी भाषा ने वैश्विक स्तर पर काफी उन्नति कर ली है, वहीं दूसरी ओर चिन्ता का एक विषय यह भी है कि कतिपय स्थितियों, परिस्थितियों और विसंगतियों के कारणवश अभी भी समाज में हिन्दी के सर्वोत्तम विकास-क्षेत्र में समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। सर्वप्रथम यदि हम देखें तो अपने ही देश में हिन्दी भाषा के विकास में व्यवधान उत्पन्न होते नजर आ रहे हैं। कारण यही है कि हमारे देश को इस समय पाश्चात्य संस्कृति विशेष रूप से प्रभावित कर रही है। इसका प्रभाव ज्यादातर आज के युवा-समाज पर अधिक पड़ रहा है। इसीलिए हम अपनी प्राचीन संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में कहीं न कहीं आज की अपनायी गई पाश्चात्य संस्कृति ही जिम्मेदार है।

भाषा की दृष्टि से हिन्दी के विकास-क्षेत्र में सबसे बड़ी रुकावट अंग्रेजी है। विदेशी भाषा, विदेशी जीवनशैली (रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा आदि) अपना लेने के कारण तथा उस पर अधिक आश्रित हो जाने की वजह से अधिकतर नयी पीढ़ी अपनी भाषा और संस्कृति से कहीं न कहीं दूर होती नजर आ रही है। अक्सर देखा जाता है कि जब लोगों को कोई नई चीज मिल जाती है, तो वे अपनी पुरानी चीज को भूलने लगते हैं, उस पर ध्यान कम देते हैं। बहुत लोगों में यह भी देखने को मिलता है कि यदि वे अपने देश में रहते हैं, तो उतना गर्व महसूस नहीं करते जितना विदेश में रहने और वहाँ की शिक्षा ग्रहण करने पर करते हैं।

अंग्रेजी भाषा पर अधिक निर्भर होने के कारण हमारा देश इससे काफी प्रभावित हुआ है, जबकि एशिया के कई ऐसे अन्य देश भी हैं जैसे- चीन, जापान, हांगकांग आदि, जिन पर यह अपना उतना प्रभाव नहीं डाल सकी, क्योंकि ये देश विदेशी भाषा को इतना महत्व नहीं देते, जितना कि अपने देश की मूल भाषा को। इसीलिए ये अधिकांशतया कार्य अपने देश की ही भाषा में सम्पन्न करते हैं और गर्व भी महसूस करते हैं। देश के हर नागरिक को सबसे अधिक गर्व अपने देश और उसमें समाहित संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, रीति-रिवाज, भाषा और कार्यशैली पर होना चाहिये, क्योंकि ये हमारे समाज के अभिन्न अंग हैं और राष्ट्र का गौरव भी।

भाषा एक नहीं, आवश्यकता पड़ने पर अनेक सीखनी पड़ें तो सीखनी चाहिए और उनमें कार्य भी करने चाहिए, किन्तु हमें यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि हम अपनी भाषा और संस्कृति को कभी न भूलें। उसे सर्वोपरि स्थान दें, क्योंकि यही हमारी मूलभूत धरोहर है, हमारे देश की पहचान है और शान भी है। हम जितना गर्व स्वयं की चीज पर कर सकते हैं, उतना दूसरे की चीज को अपनाकर उस पर कभी नहीं कर सकते। हमें किसी भी भाषा

या संस्कृति का निरादर कभी नहीं करना चाहिए। विशेषकर जहाँ अपने स्वाभिमान की बात आती है, वहाँ पर तो कत्तई नहीं। जिस प्रकार हम अपने देश को भारतमाता के नाम से सम्बोधित करते हैं, उसके समक्ष नतमस्तक होते हैं, उसका सम्मान करते हैं और गर्व महसूस करते हैं, उसी प्रकार हमें अपने देश की भाषा, संस्कृति और सभ्यता पर भी गर्व करना चाहिए और उसका सदैव सम्मान करना चाहिए।

प्रकाशन सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8173885582

हिन्दी को संस्कृत से 'दायभाग' में प्राप्त विशाल शब्द-सम्पदा

—डॉ. ओम प्रकाश पाण्डेय—

सम्प्रति हिन्दी विश्व की एक प्रमुख भाषा है। यह भारत की राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर दूसरी आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। संस्कृत हिन्दी की जननी है। संस्कृत ने अपनी विशाल शब्दराशि हिन्दी को अन्तरित की है, जिसके कारण हिन्दी अत्यन्त शब्द-समृद्धि प्राप्त भाषा बन गयी। शब्द-सम्पदा की दृष्टि से हिन्दी विश्व की चुनिन्दा भाषाओं में परिगणित है। हिन्दी भाषा में संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग बहुलता से होता है। विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा चीन की मन्दारिन तथा अंग्रेजी के बाद हिन्दी का स्थान है। विशाल शब्दराशि हिन्दी को संस्कृत भाषा से 'दायभाग' में प्राप्त है। इसके मूल में संस्कृत भाषा में रचे गये शब्द-कोष हैं। कालक्रमानुसार संस्कृत में अनेक कोष-ग्रन्थों की रचना विद्वानों द्वारा की गयी। पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय ने कोष-ग्रन्थों को तीन कालों में विभाजित किया हैः-

1. अमर पूर्व-काल (2) अमर-काल एवम् (3) अमरोत्तर-काल

1. अमर पूर्व-काल – 'व्याडि' कृत 'उत्पलिनी' प्राचीन कोष है। हारावली कोष के अन्त में पुरुषोत्तम ने इसका उल्लेख किया है। व्याडि को पाणिनि का समकालीन मानते हैं। **कात्य** – इन्होंने 'नाममाला' नामक कोष ग्रन्थ की रचना की थी। इनके कोष में अर्थ का वर्णनात्मक परिचय प्राप्त होता है। **भागुरि** – त्रिकाण्ड कोष के रचनाकार भागुरि हैं। इनके द्वारा मात्र समानार्थक शब्दों का ही उल्लेख किया गया है। व्याकरण-ग्रन्थों में भागुरि के मत का बहुशः उल्लेख प्राप्त होता है। सायण आदि वेदभाष्य रचनाकारों ने इनके कोष से सहायता प्राप्त की है। **अमरदत्त** – ने 'अमरमाला' कोष-ग्रन्थ की रचना की है। हलायुध ने अपने कोष ग्रन्थ रचना में अमरमाला से प्रेरणा ली है। **वाचस्पति** – 'शब्दार्णव' के रचयिता थे। इनके द्वारा विरचित यह कोष अनुष्टुप छन्द में निबद्ध है। इस ग्रन्थ में एक शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख है। **धन्वन्तरि** – ये 'वैद्यक निघण्टु' के रचनाकार हैं। अमरकोष के वनौषधि-वर्ग की रचना में अमरसिंह ने इस कोष ग्रन्थ से प्रेरणा प्राप्त की है। **महाक्षपणक** – इनके द्वारा रचित दो कोष-ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है – 'अनेकार्थ-ध्वनिमञ्जरी' एवं 'अनिकार्थमञ्जरी'। कई विद्वान् दोनों ग्रन्थों को एक ही मानते हैं।

2. अमरकाल – अमरसिंह द्वारा रचित 'अमरकोष' को नाम 'नामलिङ्गानुशासन नाम' से भी अभिहित करते हैं। इनके नाम से यह ग्रन्थ लोक में प्रसिद्ध हो गया। इनके पूर्ववर्ती आचार्यों ने कोष ग्रन्थों की रचना में दो प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। कुछ आचार्यों ने नाम का निर्देश किया है तो कतिपय ने लिङ्गों की विवेचना को अपनाया है। अमरसिंह की यह विशेषता रही कि इन्होंने दोनों को समन्वित कर अपने कोष-ग्रन्थ को विशिष्टता प्रदान की। त्रिकाण्डों में विभाजित इस ग्रन्थ को 'त्रिकाण्ड' संज्ञा भी प्रदान की गयी। अनुष्टुप छन्द में निबद्ध अमरकोष में कुल 1933 श्लोक हैं। छठा भाग नानार्थ का वर्णन करता है, शेष में समानार्थ शब्द निरूपित हैं। समानार्थ भाग में एक विषयक वाचक शब्दों का संकलन है। अव्ययों का वर्णन एक पृथक् वर्ग में तथा अन्त में लिङ्गादि संग्रहवर्ग है। श्लोकों में निबद्ध होने के कारण कण्ठस्थ करने में यह ग्रन्थ अत्यन्त सरल सिद्ध हुआ। पूर्ववर्ती कोषकारों की समस्याओं से अवगत अमरसिंह ने विशेष शैली में रचना कर कोष को अद्वितीय बना दिया। अमरकोष प्रचलित कोष ग्रन्थों में सर्वाधिक लोकोपयोगी एवं लोकप्रिय हुआ। इस ग्रन्थ की उपयोगिता इतनी बढ़ी कि इसकी लगभग 40 टीकाएँ लिखी गयीं। अतः अमरसिंह उत्तरवर्ती कोष-कर्त्ताओं के प्रेरणा-स्रोत सिद्ध हुए।

3. अमरोत्तर काल– अमरसिंह के उत्तरवर्ती कोषकारों ने नानार्थ कोषों की रचना स्वतन्त्र रूप से की है। शब्दों की सूक्ष्म समीक्षा कर अपने अर्थ निर्णय की क्षमता को प्रदर्शित किया है। **शाश्वत** – अनेकार्थ समुच्चय इनके द्वारा रचित कोष-ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में शब्दों के चयन में अमरकोष से अधिक विस्तार एवं प्रौढ़ता है। अनेक विद्वानों यथा – महाबल एवं वराह से प्रेरित होकर की गयी यह रचना अपनी व्यापकता एवं सार्थकता सिद्ध करती है। **धनञ्जय** – 'नाममाला' कोष की रचना इनके द्वारा की गयी है। लोक में प्रचलित संस्कृत शब्दों का यह उपयोगी कोष है। इसमें मात्र 200 श्लोक हैं। धनञ्जय ने शब्द-रचना प्रतिपादन के उपाय बतलाये हैं। यथा – मनुष्य वाची शब्द में पति जोड़ने से राजा के नाम (नर+पति, नृ+पति आदि)। वृक्षवाची शब्दों में चर जोड़ने से बन्दर के समानार्थी शब्द बनते हैं (वृक्ष+चर, द्रुम+चर आदि)। अनेकार्थ नाममाला इसका पूरक ग्रन्थ है। **पुरुषोत्तम देव** – पुरुषोत्तम देव ने तीन कोष ग्रन्थों क्रमशः (1) त्रिकाण्ड-कोष (2) हारावली तथा (3) वर्णदेशना की, रचना की। त्रिकाण्ड कोष अमरकोष का पूरक ग्रन्थ है। इसमें लोक में प्रसिद्ध शब्दों के साथ अमरकोष में अप्राप्त शब्दों का संग्रह है। हारावली में अप्रचलित शब्दों का संकलन है। यह समानार्थक एवं नानार्थक दो भागों में विभक्त है। शब्दों की शुद्धता प्रतिपादित करना वर्णदेशना का मुख्य लक्ष्य है। **हलायुध** – अभिधान-

रत्नमाला इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसमें पाँच खाण्ड (1) स्वर् (2) भूमि (3) पाताल (4) सामान्य एवं (5) अनेकार्थ काण्ड हैं। इसमें समानार्थक शब्द चार खण्डों में तथा नानार्थ एवं अव्यय अन्तिम खण्ड में वर्णित है। **यादव प्रकाश** – समानार्थ एवं नानार्थ दो खण्डों में विभक्त वैजयन्ती कोष इनकी प्रसिद्ध रचना है। नानार्थ खण्ड के तीन भागों में शब्दों का चयन अक्षरक्रम से किया गया है। यह कोष 3500 श्लोकों में निबद्ध है। 'राजकोष' नाम से भी इसे जाना जाता है। **हर्षकीर्ति** – इन्होंने समानार्थक शब्दों के शारदीयाभिधानमाला नामक कोष की रचना है। प्रथम खण्ड (1) देववर्ग (2) व्योमवर्ग तथा (3) धरावर्ग में विभाजित है। द्वितीय खण्ड (1) अङ्गवर्ग (2) संयोगादिवर्ग (3) संगीतवर्ग तथा (4) पण्डितवर्ग में तथा तृतीय खण्ड ब्रह्म, राज वैश्य शूद्र एवं संकीर्ण वर्ग में विभाजित है। इसमें 435 श्लोक हैं। इन्होंने शब्दानेकार्थ नामक दूसरे कोष ग्रन्थ की भी रचना की थी।

आधुनिक काल के कोष – वैदेशिक शब्द-कोषों के आधार पर कतिपय विद्वानों ने विशिष्ट कोषों का संस्कृत में संकलन किया। इसका श्रेष्ठ उदाहरण 'शब्दकल्पद्रुम' है। स्यार राजा राधाकान्त देव ने तत्कालीन मनीषियों की सहायता से सात खण्डों में सन् 1822 से 1858 के मध्य प्रकाशित किया।

'शब्दकल्पद्रुम' आधुनिक युगीन एक महाशब्द-कोष है। 'शब्दकल्पद्रुम' में पाणिनि व्याकरणानुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति प्रतिपादित है। शब्द-प्रयोग के उदाहरण तथा शब्दार्थ सूचक कोश या इससे भिन्न प्रमाणों के समर्थन द्वारा अर्थ निर्देश किया गया है साथ ही पर्याय भी दिये गये हैं। धातुओं से व्युत्पन्न क्रियापदों के उदाहरण भी संकलित हैं। शब्दों की विस्तृत व्याख्या में पुराण, दर्शन, वैद्यक धर्मशास्त्र आदि के दीर्घ उदाहरण भी दिये गये हैं। तन्त्र, मन्त्र, शास्त्रादि के उदाहरण भी परिगणित हैं। ज्योतिष एवं भारतीय विद्याओं के पारिभाषिक शब्दों को भी उल्लिखित किया गया है। इसमें उन कोषों की सूची भी दी गयी है जिनसे शब्दों का संकलन किया गया है।

'शब्दकल्पद्रुम' की शैली में दो अन्य कोषों की रचना हुई। चार भागों में विभक्त (1) 'शब्दार्थ चिन्तामणि' जिसके संकलियता सुखानन्द नाथ थे तथा दूसरा – 'वाचस्पत्यम्'। 'वाचस्पत्यम्' के रचनाकार थे तारानाथ तर्क वाचस्पति। इस विशाल-कोष में वैदिक शब्दों को भी संकलित किया गया था। नवीन प्रचलित कोषों में सर्वाधिक प्रचलित वामनशिवराम आप्टे का संस्कृत-हिन्दी कोष है। यह कोष मनीषियों के साथ ही विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। इस प्रकार महामहोपाध्याय पं. रामावतार शर्मा ने वाङ्मयार्णव की रचना की।

विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर से बृहद् वैदिक कोष 16 खण्डों में प्रकाशित हुआ। पूना में केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त अनुदान से डॉ. एस.एम. कत्रे के निर्देशन में संस्कृत का विशाल कोश "एन. इनसाइक्लोपेडिक डिक्शनरी आफ संस्कृत आन हिस्टोरिक प्रिंसिपल्स" का कार्य प्रारम्भ हुआ जो अमृत माधव घाटगे के निर्देशन में अग्रसरित हुआ। एतदतिरिक लघु एवं दीर्घ कलेवर वाले शताधिक कोष-ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

अभिप्राय यह है कि संस्कृत शब्द-निधि को संरक्षित रखने का कार्य विद्वानों ने कोष ग्रन्थों की रचना करके की। संस्कृत भाषा ने अपनी विशाल शब्द-सम्पदा को हिन्दी भाषा को अन्तरित कर हिन्दी को समृद्ध किया।

संयुक्त विकास आयुक्त (से.नि.)
SA 17/278 D-2, अनुपम नगर, पञ्चक्रोशी रोड
(निकट लक्ष्मी मन्दिर),
पहड़िया, वाराणसी-221007
फोन नं.- 9415270191

भोटी भाषा

—स्तानजीन तोनयोद—

विषय सार - Abstract

मनुष्य जिस शक्ति से प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ है, उस शक्ति का नाम भाषा है। संसार के अन्य प्राणियों के पास भी अपनी भाषाएं हो सकती हैं, परंतु विचार प्रदान करने वाली भाषा केवल मनुष्य के पास है। भाषा विचार विनिमय का एक महत्वपूर्ण साधन है, इसके बिना मनुष्य पशु के समान हैं। भाषा शिक्षा एवं ज्ञान का प्रमुख आधार है, अतः मनुष्य संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी बन सका। भाषा का विस्तार एवं विकास मनुष्य का अपना ही विकास है। भाषा द्वारा मानव अपने पूर्वजों के भाव-विचार एवं अनुभव को सुरक्षित रखने में सफल हो सका। भाषा के द्वारा किसी भी समाज का ज्ञान सुरक्षित रहता है। भाषा सामाजिक एकता में भी सहायता पहुंचाती है और इसके द्वारा शारीरिक विकास, बौद्धिक विकास एवं व्यक्तित्व का विकास होता है। भाषा एक संवेदनशील और संवादात्मक माध्यम है, जिसका उपयोग मनुष्यों द्वारा विचारों, भावनाओं और ज्ञान संचारित करने हेतु किया जाता है। यह एक संरचित तरीके से शब्दों, वाक्यों और वाणिज्यिक प्रतीकों का उपयोग करके संकेतों एवं अर्थों को प्रस्तुत करती है। भाषा सामरिक रूप से समझे जाने वाली और संघटक होती है, जिसे व्यक्ति या समुदाय में संचार के लिए प्रयोग किया जाता है। भाषा विचार, अभिव्यक्ति, संवाद और सामाजिक व्यवहार का महत्वपूर्ण माध्यम भी है। किसी भी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका उस क्षेत्र के स्थानीय संगठनों, साहित्य, गीत, कथाएं तथा कला में झलकती है। भाषा द्वारा स्थानीय संस्कृति, धार्मिक अनुष्ठान और लोक कथाओं को संजीवनी मिलती है। इसके अतिरिक्त भाषा स्थानीय लोगों की एक महत्वपूर्ण पहचान भी हैं और इससे संग्रहीत करके नई पीढ़ियों को उनकी भूमिका और विरासत के प्रति संवेदनशील बनाए रखने में मदद करती है। जैसे भारत में विभिन्न भाषाएं बोली जाती है। इन भाषाओं का महत्व देश के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भौगोलिक पहलुओं को प्रतिष्ठित करते हैं।

सूचक शब्द (Keywords) : भोटी, धरोहर, हिमालय, दर्रा, लिपि, उपभाषा, संस्कृति।

भाषा का महत्व

भाषा हमारे सामाजिक जीवन की नींव है। भाषा हमारी शिक्षा एवं प्रगति की एक तस्वीर है। भाषा हमारी उन्नति और विकास का प्रतीक है। भाषा अपने विचारों को व्यक्त करने का एक प्रमुख साधन है। भाषा हमारी वाणी का प्रतिरूप है। भाषा मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों का वह समूह है, जिससे मन की बात बतलाई जाती है। भाषा की सहायता से किसी विशेष समाज व देश के लोग अपने मनोगत भाव अथवा विचार एक-दूसरे को प्रकट करते हैं। दुनिया में कई प्रकार की भाषाएं बोली जाती हैं। हर व्यक्ति अपनी मातृभाषा से परिचित होता है, पर अन्य भाषाओं का अभाव अवश्य महसूस करता है। मातृभाषा की जानकारी होने से अन्य भाषाएं सीखने में आसानी होती हैं, जिससे सामाजिक एवं व्यक्तिगत रूप से लोगों को भाषाएं सिखने की प्रेरणा मिलती है।

जब तक किसी भी देश व समुदाय के लोग शिक्षित नहीं होंगे, तब तक वह देश विकसित नहीं होगा। भाषा किसी भी ज्ञान का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। विश्व में आज हजारों विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। इन सबकी अलग-अलग पहचान और महत्व है, किन्तु आज अधिकतर अंग्रेजी, चीनी, स्पैनिश, हिन्दी, अरबी और फ्रेंच आदि बोली जाती हैं। भाषा मनुष्यों के संवाद का साधन है और मानवीय संचार का महत्वपूर्ण हिस्सा भी। यह संवेदनशील विचारों, भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने का माध्यम है जिसके माध्यम से हम अपने अनुभवों, विचारों और ज्ञान को दूसरों के साथ साझा कर सकते हैं। भाषा हमारे समाज में सामंजस्य, संघटना और संबंधों का आधार बनाती है।

भोटी भाषा की विषेशताएँ

7वीं शताब्दी के विश्वविख्यात तिब्बती आचार्य *थोन्मि सम्भोट* भोटी लिपि के अन्वेषक हैं। किन्तु भोटी इससे पूर्व कई [1]उपभाषाओं में बोली जाती थी। यह भाषा अधिकतर हिमालय क्षेत्र के लोगों द्वारा बोली जाती हैं। जिसमें लद्दाख, बाल्टिस्तान, तिब्बत, किन्नौर, लाहौल-स्पिति, सिक्किम और भूटान आदि प्रमुख हैं। विश्वभर में संस्कृत और भोटी दो ऐसी भाषाएं हैं, जिनमें जो लिखते हैं वही ज्यों का त्यों पढ़ते भी हैं। यही विशेषता भोटी को सबसे अलग बनाती हैं। जैसे भोटी में चवाल और चाकू को अब्रस=

1 तिब्बत में खाम, अमदो, उत्राञ, गिलगित बाल्टिस्तान में बाल्ति और पूरीक, लद्दाख में लद्दाखी, हिमाचल में किन्नौरी, लाहौली, सिक्किम में भूटिया, अरुणाचल में मोनपा, भूटान में ज़ोञ्खा आदि भोटी के उपभाषाएँ हैं।

'འབྲས' और ཀྲི= ग्री कहते हैं, जिसमें उपसर्ग और प्रत्यय आदि सभी वर्णों का उच्चारण स्पष्ट रूप से निकाल पाते हैं जो इस भाषा को और लोकप्रिय बनाते हैं । इसका शुद्ध उच्चारण अधिकतर गिलगित बाल्टिस्तान और लद्दाख के लोग करते हैं। इसके अतिरिक्त भोटी में समपूर्ण भोट वाङ्मय, धर्म-दर्शन, संस्कृति, कला, साहित्य आदि सम्पूर्ण धरोहर उपलब्ध है। इसमें केवल बौद्ध वाङ्मय और धर्म-दर्शन ही नहीं बल्कि कई अन्य साहित्य, कला, संस्कृति तथा विभिन्न धर्मों के महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी संग्रहीत हैं, जैसे- रामायाण, महाभारत, पवित्र बाइबिल आदि। इस के अतिरिक्त आज भारतीय संविधान को भोटी में अनुवाद करने का कार्य भी आरम्भ हो चुका है, जो हमें और भी गर्वित करता है। अतः भोटी को सुरक्षित रखना देश और दुनियाँ के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसी भाषा में बुद्ध की शान्ति और अहिंसा का समस्त संदेश अनुवादित हैं, जो सम्पूर्ण विश्व के लिए लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

भोटी भाषी क्षेत्र

11वीं शताब्दी के काश्मीरी इतिहासकार तथा विश्वविख्यात ग्रंथ राजतरंगिनी के लेखक कल्हण ने [1]ज़ोजिला दर्रा को 'भोट राष्ट्र गमन' तथा ज़ोजिला के बाद 'भोट देश' कहा है। यह उनके द्वारा रचित 'राजतरंगिणी' में वर्णित हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि कश्मीर के बाद गिलगित बाल्टिस्तान, लद्दाख आदि हिमालय के उत्तर-पूर्वी के सभी क्षेत्रों को भोट तथा उनकी बोली को सदियों से भोटी कहा जाता था। केवल भारत ही नहीं बल्कि नेपाल, तिब्बत, भूटान और गिलगित बाल्टिस्तान जैसे कई क्षेत्र इस भाषा के गढ़ हैं। आज भोटी का सबसे शुद्ध उच्चारण गिलगित बाल्टिस्तानियों का है, जहाँ लोग रोज़मर्रा की जिंदगी में बड़े गर्व से भोटी बोलते हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ के विद्यालयों में भी भोटी पढ़ायी जाती है। इसी प्रकार भारत में लद्दाख, लाहौल-स्पिति, किन्नौर, तावांग और सिक्किम जैसे कई क्षेत्रों में भोटी का प्रसार-प्रचार होता आया है। इन क्षेत्रों में केवल बोलचल ही नहीं बल्कि विद्यालयों में भी भोटी भाषा का अध्ययन-अध्यापन होता है। लद्दाख में बौद्ध के अतिरिक्त मुस्लिम और क्रिश्चियन धर्म को मानने वाले लोग भी इसी भाषा का प्रयोग करते हुए गर्व से मिल-जुलकर रहते हैं और इस क्षेत्र की सुन्दरता में चार चाँद लगाते हैं।

उपरोक्त भारतीय सीमा क्षेत्रों में लगभग दस लाख से अधिक लोग भोटी भाषी हैं, जिसमें लद्दाख से अरुणाचल प्रदेश तक सभी प्रदेश, पाकिस्तान, चीन, नेपाल और भूटान के

1 ज़ोजिला दर्रा, सोनामर्ग और द्रास के बीच का पर्वतीय दर्रा हैं जो कश्मीर और लद्दाख को जोड़ते हैं जिससे लोग लद्दाख का प्रवेश द्वार भी कहते हैं।

साथ सीमाएं साझा करती हैं। इन सभी क्षेत्रों के लोग भोटी में निपुण हैं और इनमें इसके प्रति लगाव और समर्पण का भाव भी विद्यमान है। इस पर केवल भोटी भाषियों को नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष को गर्व होना चाहिए, क्योंकि इस महान देश में अनेक महात्वपूर्ण भाषाएं उपलब्ध हैं। भारत सम्पूर्ण विश्व में 'अनेकता में एकता' को बढ़ावा देने वाले देश हैं। जहाँ हर धर्म-मजहब के लोग सदियों से प्रेम के साथ अलग-अलग खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषाओं में रहते हैं और आज सम्पूर्ण विश्व भारत को एक धर्मनिरपेक्ष देश के रूप में देखता है।

निष्कर्ष-Conclusion

अन्ततः भाषा ही विकास का एक अकेला सारथी है और मातृभाषा का संरक्षण एवं संवर्धन महत्वपूर्ण है। अन्य भाषाओं का ज्ञान होने पर ही आप एक समृद्ध एवं सशक्त विद्वान होते हैं। क्षेत्रीय भाषा के महत्व को देखते हुए भारत सरकार द्वारा सन् 2020 के नई शिक्षा नीति में कक्षा पाँच तक क्षेत्रीय भाषाओं के अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया है। भविष्य में इससे सकारात्मक एवं लाभदायक परिणाम मिलेगा और आने वाले नई पीढ़ियों के लिए एक सुनहरा अवसर भी है। इससे हमें यह प्रतीत होता है कि जल्द ही भोटी को भी भारतीय संविधान की 8वीं अनुसूची में स्थान मिलेगा, जिसकी भोटी भाषी लोग कई दशकों से मांग कर रहे हैं। भारत 'विविधता में एकता' को बढ़ावा देकर विश्व भर में प्रसिद्ध हैं, जिससे सभी भारतीय गर्वित हैं। अतः भोटी भाषी क्षेत्र के लोग भी अपनी मातृभाषा के संरक्षण एवं विस्तार हेतु प्रयासरत हैं, जिसको पूर्णरूपेण प्रगति की ओर बढ़ाने में हम सब प्रयासरत हैं।

जय जगत्।

ग्रंथ-सूची-

1. S. Kumar Kalayan, Earl Indo-cambodian contacts: literary and linguistic Shanti Niketan, Visva Bharati, 1968.
2. कल्हण, डॉ. रघुनाथ सिंह, राजतरंगिणी, हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणासी, प्रथम संस्करण 1976.
3. Dash. Narendra Kumar, Survey of Sanskrit grammar in Tibetan language, Agam Kala Prakashan, Delhi, 1993.

शान्तरक्षित ग्रंथालय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

दक्षिण भारतीयों की नजर में प्रेमचंद और उनका साहित्य

—डॉ. रामसुधार सिंह—

भारतीय साहित्यकोश में प्रेमचन्द का सर्वाधिक महत्व इस कारण है कि उन्होंने एक बड़े पाठक वर्ग को तिलस्मी, ऐयारी और काल्पनिक कथालोक से अलग हटाकर इस देश की मूलभूत समस्याओं तथा लोक के व्यापक सन्दर्भों तक सीधे जोड़ा। प्रेमचन्द ने पहली बार ग्रामीण जीवन में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों को उजागर करते हुए लोकमन की संवेदना को उभारा। प्रेमचन्द ने स्पष्ट माना है कि साहित्य जीवन की आलोचना है, इसलिए इनकी कहानियों में व्यक्त जीवन को समग्रता में देखने की जरूरत है। प्रेमचन्द के साहित्य के माध्यम से ही दूसरे देशों के लोगों ने भारत को जाना। प्रेमचन्द जितने उत्तर भारत में समादृत हैं, उतने ही दक्षिण भारत के प्रान्तों में। कारण यह है कि उन्होंने जिन समस्याओं को उठाया वे एक क्षेत्र विशेष की न होकर पूरे भारतीय समाज की थीं। प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की धड़कन का स्पर्श किया है। वे समाज में फैली बुराइयों को अच्छी तरह से पहचानते थे। ये बीमारियां केवल उत्तर भारत की न होकर समस्त भारतीय समाज की थीं। प्रेमचन्द के कथा साहित्य की सर्वप्रियता का मूलकारण यही है।

दक्षिण भारत के प्रतिष्ठित लेखक चन्द्रहासन प्रेमचन्द से मिलने लखनऊ आये थे। प्रेमचन्द के निधन होने पर 'हंस' के 'प्रेमचन्द स्मृति अंक' में उन्होंने लिखा था- "प्रेमचन्द जी का स्वर्गवास उत्तर के हिन्दी भाषियों को उतना न खटका होगा, जितना कि दक्षिण के हिन्दी प्रेमियों को।" 'हंस' के उसी अंक में मद्रास के हिन्दी प्रचारक ब्रजनन्दन शर्मा ने लिखा था- "मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि प्रेमचन्द जी का उपयोग दक्षिण में ज्यादा हुआ है, पर हिन्दी भाषी जनता में अभी तक प्रेमचन्द जी से पूरा लाभ नहीं उठाया है।" इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमियों के बीच प्रेमचन्द किस सीमा तक लोकप्रिय हैं।

प्रेमचन्द अपनी मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास में दीक्षान्त भाषण देने के लिए गये थे। अपने यात्रा- संस्मरण में प्रेमचन्द ने मद्रास, मैसूर तथा बंगलौर में हिन्दी एवं हिन्दी सेवियों के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। वे लिखते हैं कि- "हिन्दी या हिन्दुस्तानी दक्षिण भारत के लिए विदेशी भाषा के समान है। अध्यापक भी प्रायः दक्षिण के लोग है। छात्रों को पुस्तकें पढ़ने के सिवा हिन्दी को व्यवहार में लाने के शायद बहुत कम मौके मिलते होंगे। इसका परिणाम यह हो सकता है कि उनका भाषा-ज्ञान केवल किताबी ज्ञान होकर रह जाय।" मद्रास से प्रेमचन्द ने मैसूर की यात्रा की थी। मैसूर के ऐतिहासिक

भवनों, चिड़ियाघर आदि का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द ने वहाँ हिन्दी की स्थिति का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि मैसूर में हिन्दी प्रचार के कार्यकर्ताओं और संचालकों में मैंने शुद्ध एकात्मक भाव देखा। सभी में हिन्दी के प्रति मिशनरी उत्साह एवं अनुराग है। पं० हिरण्यमय जी चुपचाप काम करने वाले व्यक्ति हैं जो शायद स्वप्न में भी प्रचार में ढील नहीं करते हैं। श्री टी० कृष्णमूर्ति और श्री के० श्रीवासमूर्ति दोनों ही सज्जन प्रचार-सभा के मंत्री हैं और केवल पदाधिकारी मंत्री नहीं, बल्कि सभा में जीवन का मंत्र डालने वाले मंत्री।" बेंगलुरु में हिन्दी के प्रचार-प्रसार को लेकर प्रेमचन्द सन्तुष्ट दिखते हैं। वे देखते हैं कि बंगलोर में भी मैसूर की भाँति हिन्दी का अच्छा प्रचार हो रहा है। इन यात्राओं में प्रेमचन्द अपनी प्रसिद्धि से भी परिचित हुए थे। जहाँ-जहाँ प्रेमचन्द गये वहाँ लोगों ने प्रेमचन्द का स्वागत इस रूप में किया कि उनका प्रिय लेखक उनके बीच में है।

केरल और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द की 81वीं पुण्यतिथि पर केरल के कालीकट विश्वविद्यालय के पूर्व विभागाध्यक्ष, प्रसिद्ध अनुवादक एवं प्रेमचन्द साहित्य के गंभीर अध्येता प्रो० आर० सुरेन्द्रन (आरसू) केरल के नौ साहित्यकारों के साथ प्रेमचन्द की जन्मभूमि लमही में उन्हें नमन करने आये थे। आरसू जी से मिलने पर ज्ञात हुआ कि मलयालम भाषा में आज भी प्रेमचन्द के साहित्य पर महत्वपूर्ण कार्य हो रहा है। केरल में 1936 में हिन्दी प्रचार सभा की शाखा खोली गई थी। केरल में हिन्दी के प्रचारक और उनके साहित्य का मलयालम में अनुवाद करने वाले ई० के० दिवाकर पोट्टी ने लिखा है- "सभा के हिन्दी पाठ्यक्रम में द्विजेन्द्र लाल राय, प्रेमचन्द, कबीर, तुलसी, रहीम आदि की कृतियाँ शामिल थीं। हिन्दी और मलयालम अनुवाद भी इसका हिस्सा था। स्कूल फाइनल में पढ़ते समय प्रेमचन्द की कहानी 'परीक्षा' हमारे पाठ्यक्रम में थी। प्रेमचन्द साहित्य से मेरा पहला परिचय इसी कृति से हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन के अनेक प्रसंगों के वर्णन प्रेमचन्द की कहानियों में हुए हैं। ऐसी ही कुछ कहानियों का मलयालम अनुवाद मैंने भी किया। इस अनुवाद से मलयालमभाषियों को नई प्रेरणा मिली।" सबसे पहले प्रेमचन्द की कहानियों का एक संकलन मलयालम में श्री जी० एस० धारा सिंह ने किया। उनकी मातृभाषा मलयालम नहीं थी लेकिन मलयालम पर उनका जबरदस्त अधिकार था। प्रेमचन्द की 22 कहानियों का संकलन (मलयालम अनुवाद) नेशनल बुक ट्रस्ट ने प्रकाशित किया है। एम० श्रीधर मेनन इसके अनुवादक हैं। प्रेमचन्द की लगभग सभी प्रसिद्ध कहानियाँ इस संकलन में संग्रहीत है। श्री एन० वी० कृष्ण वारियर स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और मलयालम के मशहूर कवि थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में उन्होंने हिन्दी लिखी थी।

उन्होंने लिखा है कि- "मुझे कभी नहीं लगा है कि प्रेमचन्द एक पराई भाषा के साहित्यकार हैं। मलयालम साहित्य में जबसे मेरी रूचि पैदा हुई थी तभी से मैं प्रेमचन्द की कृतियाँ पढ़ने लगा था। वह 1930 दशक का प्रारम्भिक युग था। अंग्रेजी तब हमारे पाठ्यक्रम में शामिल नहीं थी। इसलिए हम छात्रों को केरल की सीमा के बाहर देखने का एकमात्र वातायन हिन्दी था। यों हमारे पाठ्यक्रम में बांग्ला के नाटककार द्विजेन्द्रलाल राय के नाटक तथा हिन्दी के उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की कहानियाँ तथा उपन्यास शामिल थे। द्विजेन्द्रलाल राय के टक्कर का काल्पनिक साहित्यकार भारत की अन्य भाषाओं में विरले ही होंगे। प्रेमचन्द की कृतियों के सामाजिक यथार्थ उस युग में भारतीय साहित्य की अनोखी बात थी।"

कर्नाटक और प्रेमचन्द

प्रेमचन्द के साहित्य की सर्वग्राह्यता एवं लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य के सभी स्कूलों, कालेजों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में प्रेमचन्द की रचनाएँ अनिवार्य रूप से शामिल की गई हैं। यद्यपि यहाँ हिन्दी पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है, फिर भी हिन्दी के लेखकों विशेषतः प्रेमचन्द के साहित्य के प्रति उनमें गहरी अभिरुचि है। बेंगलुरु के विशप कॉटन महिला महाविद्यालय के हिन्दी विभाग की प्राध्यापिका डॉ० सुप्रिया सिंह ने बातचीत में बताया कि, "मेरे विचार से प्रेमचन्द की रचनाओं के प्रति विद्यार्थियों की अभिरुचि का सबसे बड़ा कारण उनकी सरल और प्रभावशाली भाषा है, जो छात्रों के हृदय पर कथा दृश्यों की अमिट छाप छोड़ जाती है। चाहे बात 'बूढ़ी काकी' की हो या 'ईदगाह' की। निर्मला हो या होरी, प्रेमचन्द के पात्र सहज ही अपना भावनात्मक प्रवाह पाठकों पर छोड़ जाते हैं। मुझे आज अपनी वह कक्षा याद आती है जब 'माता का हृदय' और 'दो बैलों की कथा' पढ़ाते हुए सभी छात्र पूरी तरह भावुक हो उठे थे। वैसे यहाँ हिन्दी पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों का मुख्य विषय विज्ञान, वाणिज्य अथवा प्रबन्धन आदि होता है, फिर भी अपने मुख्य विषय के समान ही हिन्दी भाषा के प्रति उनकी रुचि देखी जा सकती है। विभाग द्वारा जब भी प्रेमचन्द की जयन्ती अथवा उनके साहित्य को लेकर कोई कार्यक्रम आयोजित किया जाता है तो सभी विद्यार्थी उसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं।" बेंगलुरु में प्रेमचन्द एवं उनके साहित्य के प्रति यहाँ के लोगों के लगाव को समझने के लिए एक घटना का स्मरण करना आवश्यक है। सन् 2005 में प्रेमचन्द के घर (लमही) के जीर्णोद्धार के विषय में बेंगलुरु के हिन्दी अध्यापक संघ एवं छात्रों ने एक विशाल हस्ताक्षर अभियान चलाया था, जिसका नेतृत्व विशप कॉटन महिला महाविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० विनय कुमार यादव ने किया

था। उस समय उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव को एक लाख छात्रों एवं अध्यापकों के हस्ताक्षर को 200 पृष्ठों में सौंपा गया था। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द की जन्मस्थली एवं कर्मस्थली के प्रति दक्षिण भारत के लोगों का यह प्रेम देखकर लोग अभिभूत हो उठे थे। इसी वर्ष मुख्यमंत्री मुलायम सिंह यादव ने प्रेमचन्द की जयन्ती के अवसर पर एक मीटिंग बुलाई और मीटिंग में प्रेमचन्द के भवन एवं स्मारक के लिए एक करोड़ रूपये तथा 2.5 एकड़ जमीन आवंटित की गई। मीटिंग में डॉ० विनय कुमार यादव को भी आमंत्रित किया गया था। उस समय बनारस के प्रायः सभी समाचारपत्रों में इसकी चर्चा की गई थी। उस समय प्रेमचन्द साहित्य के अनुरागी दक्षिण भारत के लोगों ने प्रेमचन्द स्मारक को दक्षिण भारत के साहित्य से समृद्ध करने की योजना भी बनाई थी। काशी के एक प्रमुख समाचारपत्र ने 'लमही की बदहाली पर सत्रह वर्ष पूर्व कर्नाटक में बरसे थे आँसू' शीर्षक से समाचार को प्रकाशित किया था। प्रेमचन्द की कहानियों तथा उपन्यासों का अनुवाद कन्नड़ भाषा में निरन्तर किया जा रहा है, जिससे उनकी रचनायें हिन्दी न जानने वालों को भी सरलता से उपलब्ध हो रही हैं। इनमें निर्मला (श्रीमती जैशिला बी सेल्लदवर), प्रेमाश्रम (मेवुंडी मल्लारी) एवं मानसरोवर (ए जानकी) आदि विशेषज्ञ रूप से प्रसिद्ध हैं। वर्तमान में उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा मैसूर विश्वविद्यालय में स्थापित एंडोवमेंट पिछले कई वर्षों से सक्रिय रूप से काम कर रहा है। इसकी धनराशि से प्राप्त ब्याज से आधुनिक हिन्दी और कन्नड़ भाषा की उल्लेखनीय कृतियों पर अनुवाद का कार्य सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

आन्ध्र प्रदेश और प्रेमचंद-

आन्ध्र प्रदेश की भाषा तेलुगू है। आन्ध्र प्रदेश में हिन्दी स्कूल स्तर पर विकल्प के रूप में है, किन्तु स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर विषय के रूप में इसका अध्ययन होता है। सभी स्तरों पर पाठ्यक्रमों में प्रेमचन्द की कहानियाँ तथा उपन्यासों को स्थान मिला है। प्रेमचन्द की बहुत सी कहानियाँ तथा उपन्यासों का तेलुगू में अनुवाद भी हो चुका है। तेलुगू छात्रों को लम्बे समय तक हिन्दी पढ़ने वाले डॉ० विश्वेश्वर वर्मा भूपति राजू से मैंने दूरभाष के माध्यम से जानना चाहा कि तेलुगू भाषा-भाषियों की नजर में प्रेमचन्द का क्या महत्व है? डॉ० विश्वेश्वर का मानना है कि प्रेमचन्द ने ऐयारी और तिलस्मी कथा से पाठकों को हटाकर वास्तविक जनजीवन तक पहुँचाया। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रेमचन्द का विख्यात होना तो संभव है किन्तु सुदूर दक्षिण तक उनका प्रभाव पड़ने का प्रमुख कारण उनके पात्र थे जो सीधे यहाँ के जनजीवन से जुड़े हुए थे। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि कोई साहित्य किसी समाज को तभी प्रभावित करता है जब वह उसकी समझ में आवे। इसके लिए वहाँ की भाषा में

अनुवाद की जरूरत है। इस सिलसिले में तेलुगू भाषा में प्रेमचन्द के साहित्य का अनुवाद प्रभूत मात्रा में हुआ है। मानसरोवर (भाग-1) की तीस कहानियों का अनुवाद सरल, सरस तेलुगू भाषा में किया गया है। इसे प्रचारित, प्रसारित करने में मीरम्मा विद्यालय ने बहुत योगदान दिया है, विशेषकर कफन को लोगों ने बहुत पसन्द किया। तेलुगू विद्यालयों में हिन्दी सीखने वाले तेलुगू छात्रों के प्रत्येक स्तर के पाठ्यक्रम में प्रेमचन्द की कोई न कोई कहानी अवश्य है। स्नातक स्तर पर उनके उपन्यास सेवासदन, गोदान, निर्मला, रंगभूमि आदि को रखा गया है। स्नातकोत्तर स्तर पर तो प्रेमचन्द विशेष लेखक के रूप में पढ़ाये जाते हैं। तेलुगू छात्रों को प्राथमिक स्तर से स्नातकोत्तर तक हिन्दी साहित्य से परिचित कराने में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आन्ध्र प्रदेश का योगदान सर्वाधिक है। डॉ० विश्वेश्वर का कहना है कि जिस प्रकार रामचरितमानस उत्तर भारत में घर-घर का पूज्य ग्रंथ है और मानस के पात्र समाज के आदर्श बने हुए है, उसी प्रकार प्रेमचन्द के कथा साहित्य के पात्र भी समाज को एक सीख देते हैं। 'बड़े घर की बेटी' की आनन्दी घर को संभालने की सीख देती हैं। 'समर यात्रा' कहानी हमें सिखाती है कि भय पराधीनता है तो निर्भय स्वराज्य है। 'इज्जत का खून' से यह संदेश मिलता है कि इज्जत स्वाभिमान की पराकाष्ठा है लेकिन मुहब्बत एक भूला हुआ गीत है। 'चमत्कार' कहानी से समाज को दो संदेश मिलता है। एक यह कि पत्नी ऐसी हो जो पति को रास्ते पर लाए और दूसरा यह कि लालच आदमी को क्या से क्या बना देती है।

वाराणसी में इस समय पुलिस महानिरीक्षक श्री के० सत्यनारायण, आई०पी०एस० तेलुगू भाषी हैं। इन्होंने हिन्दी के प्रसिद्ध कवि डॉ० केदारनाथ सिंह की शताधिक कविताओं का तेलुगू में अनुवाद किया है। प्रेमचन्द की लोकप्रियता के सम्बन्ध में पूछे जाने पर आपने बताया कि प्रेमचन्द सर्वकालिक और सर्वजनीन साहित्यकार हैं। अपनी कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचन्द जिन समस्याओं को उठा रहे थे, वे केवल उत्तर भारत की समस्यायें नहीं थी। किसानों और दलित वर्ग का शोषण चारो ओर एक तहर से हो रहा था। इन्होंने बताया कि स्नातक स्तर पर मैं प्रेमचन्द की बहुत सी कहानियाँ और गोदान उपन्यास पढ़ चुका था। गोदान का तेलुगू में अनुवाद भी हुआ है। प्रेमचन्द के पात्र हमारे अपने बीच के लगते हैं, उनके संघर्ष हम सभी के संघर्ष रहे। प्रेमचन्द ने भारतीय आत्मा की धड़कन को पहचाना था। इसी कारण प्रेमचन्द जितने प्रासंगिक उस समय थे, उतने ही आज भी हैं।

तमिलनाडु और प्रेमचन्द-

दक्षिण भारत के राज्यों में हिन्दी विरोध का सबसे प्रमुख स्वर तमिलनाडु से उठता रहा है। गांधी जी ने 1918 में सबसे पहले दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना यहीं की

थी। प्रेमचन्द जी की दक्षिण भारत यात्रा का जिक्र पहले किया जा चुका है। प्रदेश में हिन्दी के प्रचार-प्रसार का श्रेय हिन्दी प्रचार सभा को है। प्रेमचन्द इस प्रदेश में भी खासे लोकप्रिय हैं। कथा सम्राट के रूप में प्रेमचन्द की कहानियों तथा उपन्यासों के अनुवाद तमिल में हो चुके हैं। प्रेमचन्द ने 1918 में उर्दू में बाजार-ए-हुस्न लिखा, जो हिन्दी में सेवासदन के रूप में प्रकाशित हुआ। उस उपन्यास का अनुवाद तमिल में प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्री और श्रीमान श्रीनिवास लेंगर की बेटी अम्बुजाम्मल ने किया था। सेवासदन तमिल की पत्रिका विकरन में क्रमशः प्रकाशित हुआ। तमिल फिल्मों के प्रसिद्ध निर्देशक के० सुब्रमण्ह्यम इसकी कहानी से बहुत अधिक प्रभावित हुए और इस पर फिल्म बनाने का निश्चय किया। यह फिल्म बनी और खूब लोकप्रिय हुई। इस फिल्म की सबसे बड़ी खूबी यह है कि प्रसिद्ध शास्त्रीय गायिका एम० एस० सुब्बुलक्ष्मी फिल्म की नायिका थीं।

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उदय प्रताप स्वायत्तशासी महाविद्यालय, वाराणसी
मो.नं.- 9451890720

राष्ट्रीय एकता का आधार है हमारी भाषा

—भगवान पाण्डेय—

भाषा समन्वय सूत्र है। प्रत्येक भाषा स्वभाषियों को समन्वय सूत्र में बाँधती है। अतः वे भिन्न होते हुए भी एकत्व की अनुभूति कराते हैं। विश्वभाषा विश्व मानव को एकता के सूत्र में समन्वित कर विश्व-बंधुत्व की भावना जागृत करती है। ठीक उसी प्रकार राष्ट्रभाषा, राष्ट्र-मानव को एक सूत्र में समन्वित कर राष्ट्रीय एकता का भाव जगाती है। भाषा की इसी महती विशेषता के कारण ऋग्वेद में इसे राष्ट्री (राष्ट्र निर्मात्री) और संगमनी (संबद्ध या समन्वय कारिणी) कहा गया है।

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम"। (ऋग्वेद १०-१२५-३)

जन-जन के भू-भाग और जन की संस्कृति से राष्ट्र निर्मित होता है। एक विशिष्ट भौगोलिक भू-खण्ड में फैले इस राष्ट्र रूपी लोक जीवन की अपनी एक सामान्य संस्कृति होती है, अपना भावात्मक एकीकरण होता है। एक सामान्य इतिहास की पृष्ठभूमि में पनपता हुआ लोक-जीवन, समान आकांक्षा से दोलित और पवित्र राष्ट्रीय वृत्ति से बंधा रहता है, सुख-दुःख के फूल-काँटे चुनता रहता है। एक समान, वातावरण, स्वभावगत अनुभूति के कारण उनकी सोच सामान्य रूप से मिलती-जुलती रहती है। उनकी वेदना का सरगम सागर को जो एक सूत्रता प्रदान करती है, वह है इस भूखण्ड की राष्ट्रभाषा जो किसी भी राष्ट्र की एक अनिवार्य आवश्यकता है तथा जिसके सहारे संघर्ष की साधना आगे बढ़ती है एवं राष्ट्र की समृद्धि के सपनों को वास्तविकता में गूँथा जाता है।

इसी मूल भावना को बल देने के क्रम में हिंदी जागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने-

"निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ।"

यह राष्ट्र की वैचारिक जागृति का प्रबुद्ध माध्यम है। यह संस्कृति और सभ्यता की परिचायिका होती है। अजस्र प्रवाह का वेग इसमें रहता है। निरन्तर विकास के पथ पर सुसंस्कृति बनाती रहने वाली गति का इसे वरदान प्राप्त रहता है।

किसी भी राष्ट्र की परिभाषा तब तक नहीं बनती, जब तक उसके अस्तित्व की कल्पना के साथ-साथ अन्य आवश्यक तत्वों के अतिरिक्त भाषा का अस्तित्व भी संबद्ध न किया जाय। राष्ट्रभूमि के समान ही राष्ट्रभाषा का सवाल महज भावात्मक न होकर जीवन-मरण

का सवाल है। भाषा शायद अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि भाषा राष्ट्रीय एकता को बनाए रखती है तथा राष्ट्रीय व्यक्तित्व का पाथेय बनती है। इसमें राष्ट्र की आत्मा बोलती है। अतः जब भी कभी एक मुक्त राष्ट्र की कल्पना हुई, उसके साथ एक मुक्त राष्ट्रभाषा की कल्पना जुड़ी रही। भाषा की कल्पना पर ही कोई राष्ट्र परिकल्पित हुआ। उक्त संदर्भ में भाषा द्वारा संस्कृति को कैसे प्रभावित किया जाता है, मैकाले के पत्र के हिंदी रूपांतरण के भाव से इंगित करना चाहता हूँ-

'प्रिय पिताजी'

हमारे अंग्रेजी स्कूलों की बड़ी आश्चर्यजनक प्रगति हो रही है। जरूरत भर के लोगों को अंग्रेजी शिक्षा देने की हम बहुत कोशिश कर रहे हैं- कहीं-कहीं यह कार्य असंभव ही बताया जा सकता है। केवल हुगली नामक एक नगर में डेढ़ हजार लड़को को अंग्रेजी शिक्षा दी जाती है। हिन्दुओं पर इस शिक्षा का गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कोई भी हिन्दू अपने धर्म में विश्वास नहीं रखता। केवल इने-गिने लोग दिखावटी तौर पर विश्वास रखते हैं। यद्यपि बहुत से लोग अपने को आस्तिक मानते हैं, लेकिन कुछ इसाई धर्म में दीक्षित भी हैं। यदि हमारी शिक्षा योजना मजबूती के साथ प्रचलित रहेगी तो 30 साल के अन्दर बंगाल के प्रतिष्ठित परिवारों में कोई मूर्तिपूजक नहीं रह जाएगा, इसका मुझे अटल विश्वास है। हम धर्म परिवर्तन की योजना के बिना ही सब सिद्ध कर सकते हैं। ज्ञान एवं मनन से ही यह अनायास सिद्ध हो सकता है। धार्मिक स्वतंत्रता से इसका किसी तरह विरोध नहीं होगा। सुदूर भविष्य की इस संभावना से मैं हार्दिक आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ।

आपका प्रिय पुत्र
मैकाले

उक्त पत्र में निहित भावों से स्पष्ट है कि पश्चिमी देश हमें न केवल भौतिक रूप से गुलाम बनाकर संतुष्ट थे, अपितु मानसिक तौर पर भाषा के माध्यम से धार्मिक रूप से गुलाम बनाने की प्रक्रिया में कृत संकल्पित थे।

किसी भी राष्ट्र के लिए जो महत्व उसके राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय गान का होता है, वही महत्व उसकी राष्ट्रभाषा का होता है। राष्ट्रभाषा देश के भिन्न-भिन्न भागों को एकसूत्रता में पिरोने का कार्य करती है। इसके माध्यम से उस देश की जनता न केवल अपने देश की नीतियों और प्रशासन को भलीभाँति समझती है, अपितु उसमें स्वयं भाग लेती है। प्रजातंत्र की सफलता के लिए ऐसी व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। विश्व के सभी स्वतंत्र एवं नवोदित

राष्ट्रों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उत्थान उनकी अपनी भाषाओं में ही संभव है। रूस, जापान, जर्मनी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

गाँधी जी ने इसके राष्ट्रीय ताने-बाने को परखकर ही कहा था- "अगर हम भारत को राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है। अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, लेकिन वह हमारी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती"।

राष्ट्रभाषा के लिए जिस जनवाद के सिद्धान्त को मानकर युग आगे बढ़ता है, वह जनवाद न सामर्थ्य का सिद्धान्त मानता है और न ही कुशलता का, उसकी समस्त भूमिकाओं की आधारशिला होती है- जन-अभिरुचि। आज की जन-अभिरुचि हिंदी के समर्थन की रुचि है न कि अंग्रेजी के आधिपत्य को स्वीकार कर शीश नवाने की विवशता की रुचि।

उसमें संदेह नहीं कि डेढ़ सौ साल से अधिक समय से अंग्रेजी में प्रयोजनों को सिद्ध करने वाला शासन तंत्र हिंदी को तत्काल अपनाकर कठिनाई महसूस करता, अपितु अंग्रेजी वाला ढाँचा हिंदी के लिए उपादेय ही था। यह खेद है कि अंग्रेजी के मोह से ग्रस्त होने के कारण हम अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को प्रतिष्ठित तो नहीं कर सके, अपितु हिंदी अपने आप जन-भावना के अनुरूप अपना स्थान बनाती जा रही है। यदि हम हिंदी भाषा का सचमुच विकास करना चाहते हैं तो हमें भाषा की प्रकृति को गहराई से समझना होगा। इसके लिए जनभाषाएँ विशेष रूप से सहायक होंगी, क्योंकि भाषा का वास्तविक मर्म जनभाषा में ही छुपा रहता है।

राजभाषा परामर्शी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 6387521396

भाषा और संस्कृति

—एम. एल. सिंह—

भाषा और संस्कृति में अन्तर्क्रिया होती है। जैसी संस्कृति वैसी भाषा और जैसी भाषा वैसी संस्कृति। उदाहरण के लिए, हिन्दी भाषी क्षेत्र में स्त्री-पुरुष के बीच दूरी और भेद प्रबल है, तो हिन्दी भाषा में क्रियापद में भी भेद है जैसे- लड़का आता है, लड़की आती है इत्यादि। अब क्रियापद में लड़के-लड़की में क्या भेद ? किन्तु जीवन में है, इसलिए भाषा में है और भाषा में है, इसलिए जीवन में है। अंग्रेजी में यह भेद नहीं है।

इसी तरह, हिन्दी में प्रयोग है 'वह आ गया'। तो यह क्या हुआ ? वह आया ? या गया ? 'वह उठ बैठा' 'वह चल पड़ा'। इत्यादि यह जैसा जातीय स्वभाव है, वैसी ही भाषा है। जैसे यहाँ न तो चलता है, न पड़ा रहता है, वैसे ही भाषा में चल पड़ता है। वास्तव में दोनों व्याकरण की दृष्टि से सही नहीं, व्यवहार में दोनों हैं।

हर कौम का अपना मिजाज होता है जो उसकी भाषा में व्यक्त-अव्यक्त होता रहता है। परायी भाषा में वह मजा नहीं होता। काम चलाने भर के लिए अंग्रेजी बोल-बतिया लें, लेकिन जब गहरे उतरना होता है तो हमारे लिए अंग्रेजी काम नहीं आती, न दूसरे तक वह पहुँचती है। हाँ, अंग्रेज के लिए वही काम अंग्रेजी करती है, जो हमारे लिए हिन्दी, बंगला, तमिल वगैरह। अब यह व्यवहार की कठिनाई है कि हम हिन्दी में ही बोलें, जिसमें हम ठीक बोल सकते हैं और उसी तरह तमिल, तमिल में, जिसमें वह ठीक तरह बोल सकते हैं तो बात-चीत कैसे हो। हर समय, किसी को दुभाषिया कहाँ मिलता है ? इसलिए संवाद में भी अंग्रेजी भाषा से काम चलाना पड़ता है। तमिलनाडु में हिन्दी विरोध है। निकट भविष्य में इसके कम होने की आशा नहीं है। इसलिए अंग्रेजी न आने से कठिनाई होती है। विदेश यात्रा में भी अंग्रेजी से काम चल जाता है। लेकिन अंग्रेजी में वह बात नहीं आती जो अपनी भाषा में आती है।

मुझे अपना व्यक्तिगत अनुभव कहने की इजाजत दें। मेरे समय में उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी था। उसमें ही पढ़ाई-लिखाई हुई। स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय में क्रिकेट खेलता था। वहाँ भी आपस में अंग्रेजी आहार-विहार का चलन था। अंग्रेजी में बोलने में वह बात नहीं आती। कुछ तो शायद 'अंग्रेजी हटाओ' की अटक मन में है। अंग्रेजी का सार्वजनिक इस्तेमाल नहीं करने का व्रत लिया है। कहाँ पर इस्तेमाल व्यक्तिगत है और

कहाँ सार्वजनिक ? कहाँ रेखा खींची जाए ? यह कहना कठिन है। इसलिए अटक और अभ्यास से अंग्रेजी वह मजा नहीं देती जो अपनी हिन्दी देती है।

यह भी हो सकता है कि अंग्रेजी बोलते हुए उसकी तुलना अपनी हिन्दी से करता जाता हूँ। हिन्दी में जो सुविधा है, वह अंग्रेजी में नहीं। इसलिए पछतावा भी होता है। यह कुछ 'डायबिटीज' के मरीज की तरह है, जो आलू खाता भी जाता है और पछताता भी जाता है, डरता भी रहता है। अन्यथा भाषा तो अपनी बात दूसरे तक पहुँचाने के लिए है, सम्प्रेषणीयता के लिए है। जब वह पहुँच गयी तो भाषा का काम हो गया। इसमें सबसे ज्यादा आश्चर्य जापानी को अंग्रेजी बोलते हुए देख-सुन कर होती है। फिर भी जापानी का काम सारी दुनिया में अपनी ही अंग्रेजी में चलता है।

फिर, जिनसे बात करना है उनका भी सवाल है। जैसे अपनी माँ से मैं हिन्दी में भी नहीं अपनी बनारसी में ही बोल सकता था। अपने विद्यार्थियों और सहयोगी अध्यापकों से हिन्दी में और हिंदीत्तर तथा अंग्रेज मित्रों से अंग्रेजी में। लेकिन अपने हिन्दी भाषी मित्रों एवं बुजुर्गों से अंग्रेजी में बोलने में अटपटा लगता है। तो क्या भाषा का सम्बन्ध संस्कार और पारस्परिक सम्बन्ध से है ?

भाषा तो प्रवाह है। एक बार जब जहाँ से वह निकलती है वहाँ अटक आ गयी तो फिर वह प्रवाह रुक-रुक कर चलता है और कभी तो बड़े कष्ट से। कभी ग्लानि होती है, कभी पूरी बात नहीं निकल पाती। अब वह जो रूप है और जो आँख है उससे चक्षुर्विज्ञान होता है। उसमें से यह सुन्दर है, असुन्दर है यह कैसे निर्णय होता है ? और उस पर से भी सुन्दर-असुन्दर के लिए शब्द कहाँ बनता है और कहाँ से आता है ? कहाँ जाता है ? उसमें अटक कहाँ है ? क्या यह सिर्फ कण्ठ से बोलना होता है ? या मस्तिष्क से ? या हृदय से ? या नाभि से ? या मूलाधार चक्र से ? यह कहाँ से ध्वनि और शब्द और अर्थ निकलता है ? अपनी भाषा में और परायी भाषा में यह कैसे भिन्न-भिन्न होता है ? संसार की इतनी भाषाओं में एक ही गुलाब के खिलने के लिए इतने प्रकार का शब्द और अर्थ कैसे होता है ? या जो अपनी खास ध्वनि वगैरह का संकुल है वही अपनी भाषा और संस्कृति और पहचान बनाता है। और अन्य से वही काटता है। पता नहीं।

मेरा मानना है कि जो भी हो, भाषा संस्कृति सापेक्ष्य है, हर संस्कृति की अपनी भाषा होती है और यह भाषा उसकी दृष्टि व्यक्त करती है, उस कौम की अपनी पहचान बनाती है।

अन्य बातों की तरह भाषा, दृष्टि और संस्कृति की पहचान की भी सीमा है। इस सीमा के अन्दर, व्यवहार के लिए अपनी भाषा, दृष्टि पहचान की जरूरत है। लेकिन इसके बाद इसका इतना अतिरेक कि वह भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, पहचान का उन्माद पैदा करे, हठ, आग्रह करे तो यह उसकी मर्यादा का अतिक्रमण है।

साहित्याचार्य
वरिष्ठ सहायक (प्रशासन-प्रथम)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9198241794

अंग्रेजी के दौर में हिन्दी भाषा की स्थिति

—अंकिता सिंह—

आज हमारे समाज में अंग्रेजी लोगों का अहम हिस्सा बन गयी है। अधिकांश लोग हिन्दी कम और अंग्रेजी ज्यादा सीखने, बोलने और पढ़ने की कोशिश करते हैं। यदि हिन्दी बोलते भी हैं, तो उसमें भी अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग अधिक करते रहते हैं। हिन्दी भाषा एवं उसके बहुत सारे शब्दों का प्रयोग कम होने के कारण इसका प्रचलन भी कम होता जा रहा है। अंग्रेजी भाषा का बुखार ऐसा है जो हर किसी की जुबान पर चढ़ा है और यह बुखार हो भी क्यों न? इसका महत्व जो इतना बढ़ गया है। समाज में अंग्रेजी की माँग इतनी बढ़ गयी है कि हर स्कूल, कॉलेज, व्यवसाय व नौकरी आदि सभी स्थानों में इसका प्रयोग होता नजर आ रहा है। इसीलिए बहुत सारे कार्य हिन्दी में नहीं हो पा रहे हैं।

यह एक धारणा बन गई है कि जो अंग्रेजी बोलेगा उसकी समाज में अधिक इज्जत होगी। लोग इज्जत पाने और कैरियर बनाने के लिए अंग्रेजी की पढ़ाई करने का हरसंभव प्रयास करते रहते हैं। प्रत्येक बच्चे को उसके बचपन से ही 'A for Apple' सिखाया जाता है। उसे यह बताया जाता है कि भइया अंग्रेजी सीख लो, अंग्रेजी का जमाना है, तुम्हें हर जगह इसकी जरूरत पड़ने वाली है। इसी धारणावश उनके माँ-बाप उन्हें इंग्लिश मीडियम स्कूल में पढ़ने के लिए भेजते हैं।

जब आजकल के बच्चों से पूछा जाता है कि बेटा 'A,B,C,D' सुनाओ तो वे फटाफट सुना देते हैं परन्तु यदि उनसे 'क,ख,ग,घ' पूछा जाता है, तो उन्हें पता ही नहीं होता या आधा-अधूरा याद होता है अथवा वे भूल जाते हैं। ऐसा क्यों? इसका कारण यह है कि उन्हें 'स्वर' व 'व्यंजन' को बार-बार दोहराया नहीं जाता अथवा 'हिन्दी' का अधिक प्रयोग करने के लिए प्रेरित नहीं किया जाता, जिससे वे स्वर व व्यंजन भूल जाते हैं। इस प्रकार हिन्दी भाषा की नींव कमजोर हो जाती है। भाषा वही अधिक मजबूत होती है, जिसको अधिकांशतया लोग सीखने के साथ-साथ हर तरह से अभ्यास एवं प्रयोग में लाते हैं।

समाज में कहीं-कहीं माहौल ऐसा भी हो गया है कि जिनको अंग्रेजी नहीं आती, उन्हें कुछ लोग अपमानित करते हैं और उनका मजाक उड़ाते हैं। इसलिए सदैव ध्यान रखें- ऐसी हीन भावना हमारे अन्दर नहीं होनी चाहिए। यह अच्छी बात है कि समय की माँग को देखते हुए हमें अंग्रेजी बोलना व सीखना चाहिए, क्योंकि आज के जमाने में लोगों के साथ कन्धे से

कन्धा मिलाकर चलना आवश्यक है, परन्तु अंग्रेजी न आने के कारण किसी का मजाक उड़ाना, उन्हें अपमानित करना, यह बिल्कुल गलत है।

केवल अंग्रेजी ही नहीं, भाषा कोई भी हो, उसे आवश्यकतानुसार सीखना अच्छी बात है, किन्तु स्वयं के अन्दर अहंभाव तथा दूसरों को नीचा दिखाने की भावना नहीं होनी चाहिए। हमारे अन्दर मात्र धारणा यही होनी चाहिये कि समाज में रहकर जिस भाषा की जरूरत पड़ रही हो, उसे उस दृष्टि से हमें सीखने में कोई हर्ज नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर जितनी भाषायें चाहिए, उतनी सीखनी ही पड़ती हैं।

आज के बदलते परिवेश में बच्चों की परवरिश ही ऐसी हो गयी है कि अंग्रेजी भाषा हर किसी की बोलचाल की भाषा हो गयी है। यदि बच्चा हिन्दी में बात कर रहा है तो उनके माँ-बाप को भी शर्म महसूस होती है। लोग अपने बच्चों को अंग्रेजी के साथ-साथ फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मनी आदि भाषाएँ सिखाते हैं, लेकिन जब बात हिन्दी की आती है, तो उन्हें शर्म क्यूँ महसूस होती है? क्या अंग्रेजी उन्हें माडर्न दिखती है? दूसरे देश का कोई भी व्यक्ति चाहे वह अंग्रेज हो, चीनी या जापानी हो, जब वह किसी अन्य देश में जाता है, तो वह अपनी मातृभाषा में सीना तानकर बोलता है और गर्व महसूस करता है। यह देखकर जहाँ हम सबको अच्छा लगता है, वहाँ आश्चर्य भी होता है, किन्तु जब बात हमारी आती है, तो हम हिन्दी बोलने में शर्माते हैं। दूसरे देश तो छोड़िए, अपने देश में ही हम अपनी भाषा में बात करने में शर्म महसूस करते हैं, जबकि हमें तो गर्व के साथ सीना चौड़ाकर अपने देश ही नहीं, बल्कि दूसरे देशों में भी 'हिन्दी' भाषा बोलनी चाहिए। इसका श्रेष्ठ उदाहरण हमारे प्रधानमंत्री श्री 'नरेन्द्र मोदी' जी हैं। वे जब भी किसी देश में जाते हैं, अक्सर अपना भाषण बड़े गर्व के साथ अपनी भाषा 'हिन्दी' में ही देते हैं। यह हमारे लिए बड़े गर्व की बात है।

आज यदि हम देखें, तो विश्व के अनेक ऐसे देश हैं जहाँ हिन्दीभाषी लोग रहते हैं और इसका भरपूर उपयोग भी करते हैं। इसीलिए इसे समझने में लोगों को कोई कठिनाई नहीं होती। यदि कहीं किसी भाषा को समझने में कठिनाई होती भी है, तो उसके लिए कई तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एवं हमारे देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू आदि कई नेताओं ने विदेशों में रहकर पढ़ाई की, उनका रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, भाषा आदि पाश्चात्य संस्कृति जैसी ही थी, परन्तु अपने देश भारत आकर उन्होंने स्वदेशी अपनाया और देश की आजादी के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़े और जीते भी। कहने का तात्पर्य यह है कि हम सभी भले ही अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करें, चाहे पाश्चात्य

शैली अपनायें, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम सभी भारतीय हैं, हमें अपनी भाषा व संस्कृति को कभी नहीं भूलना चाहिए।

हिन्दी साहित्य के कवियों एवं लेखकों ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। लोग उनके लेख व रचनाओं को खूब पसन्द भी करते हैं, जिससे हिन्दी साहित्य एवं संस्कृति को बढ़ावा मिला है। इसके अलावा बहुत से ऐसे विदेशी हैं, जो अपने देश, संस्कृति, सभ्यता, भाषा एवं पाश्चात्य शैली को छोड़कर, सबकुछ त्यागकर हमारे देश हिन्दुस्तान में आकर बस गये। उन्होंने यहाँ की संस्कृति, सभ्यता, भाषा, भारतीय परिधान व शैली को अपनाया। सनातन धर्म को अपनाकर ईश्वर की भक्ति में लीन हो गये। साथ ही, इसे अपने तक सीमित न रखकर दूसरों तक भी प्रचार-प्रसार के माध्यम से पहुँचाने का प्रयास किया है। भारतीय समाज के लिए यह बड़े गौरव की बात है।

भारत देश में अलग-अलग राज्य हैं और अलग-अलग राज्यों में अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, परन्तु पूरे भारत देश में एक भाषा 'हिन्दी' का बड़ा ही महत्व है। इसके अलावा सरकार भी कई ऐसे अथक प्रयास कर रही है, जिससे 'हिन्दी' भाषा को प्रोत्साहन मिले। आज देश की विभिन्न संस्थाओं में हिन्दी में कार्यालयी कामकाज से लेकर राजभाषा से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की कार्यशालाएँ तथा अन्य हिन्दीभाषी योजनाएँ भी संचालित की जा रही हैं। इसलिए हमें भी हिन्दी के प्रति रुचि पैदा करनी चाहिए, अधिक से अधिक इसका प्रयोग करना चाहिए तथा सीखने का हरसंभव प्रयास करना चाहिए। साथ ही, दूसरों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जिससे हिन्दी भाषा और भी प्रखर एवं समृद्धशाली बने। इसके लिए शुरुआत सर्वप्रथम हमें अपने घर से ही करनी चाहिए। आवश्यकता को देखते हुए हमें अपने बच्चों को अंग्रेजी के 'A' अक्षर के साथ-साथ हिन्दी का 'अ' अक्षर सिखाने पर भी विशेष बल देना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में जो लोग हिन्दी से कोसों दूर हो गये हैं, उन्हें भी अपनी प्रिय भाषा, जनभाषा, राजभाषा हिन्दी को अपने जीवन में अनिवार्य रूप से शामिल करना चाहिए, जिससे हमारे देश की 'हिन्दी भाषा' रूपी धरोहर सदैव सुरक्षित एवं संरक्षित रहे।

स्टाफ क्वार्टर 2/3
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 6392120510

बौद्धधर्म की विश्वव्यापी समरसता

—प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी—

विश्व समाज में अभिव्याप्त समस्त धर्म एवं सम्प्रदाय यद्यपि प्राणिमात्र के श्रेय, प्रेय, सौहार्द एवं शान्ति के लिये ही कटिबद्ध देखे जाते हैं, फिर भी उन धर्मों के अन्दर कुछ ऐसी रूढियाँ, कट्टर नियम एवं कुछ परम्परागत कर्मकाण्ड हैं, जिनसे उन धर्मों के विश्व कल्याणकारी सन्देश धूमिल हो जाते हैं। जैसे मुस्लिम धर्म में बकरीद जैसे पर्व पर बकरे की हिंसा-बलि दी जाती है। इसी तरह हिन्दू धर्म में आज भी कुछ क्षेत्रीय हिंसक प्रथायें हैं जहाँ देव-देवियों को गाँवों में पशु बलि दी जाती है, कहीं कहीं तो कन्याओं की भी बलि दे दी जाती है। इन सब कुप्रथाओं से बौद्ध धर्म एकदम परे है। वहाँ किसी भी तरह की हिंसक प्रवृत्ति स्वीकृत ही नहीं है। यदि बुद्ध एवं बौद्धधर्म ने यज्ञों में पशुबलि का विरोध नहीं किया होता तो अद्यतन तक याज्ञिक पशु-बलि बन्द नहीं होती। भारतीय सनातन हिन्दू धर्म की आचार संहिता भी बड़ी बेजोड़ है, जहाँ विश्वकल्याण की कामना की गई है। फिर भी कालान्तर में कर्मकाण्डीय विभिन्न पद्धतियों के जुड़ जाने से उनके अन्दर भी पर्याप्त भेद एवं दूरियाँ देखी गयीं।

वर्तमान समाज को एक ऐसे धर्म एवं उसकी आचार पद्धति की आवश्यकता है, जिससे कि उत्तर-दक्षिण संस्कृति की दूरियाँ समाप्त की जा सकें, पूर्वी एवं पश्चिमी समाज के बीच जो दूरियाँ एवं पारस्परिक भेदभाव आ गये हैं, उन्हें दूर किया जा सके। इस दृष्टि से भगवान् बुद्ध एवं उनका लोकहितकारी धर्म ही आज समाज में प्रासङ्गिक प्रतीत होता है। बौद्धधर्म एक सुपरीक्षित जमीनी कसौटी पर कसा हुआ, विषम प्रवृत्तियों को उखाड़ने वाला, पत्थर को फूल बनाने वाला, अनुपजाऊ भूमि में भी समरसता के बीज बोने वाला, विश्व समाज को एकतासूत्र में बाँधने वाला, अत्यन्त उपादेय एवं कन्धे से कन्धा मिला देने वाला धर्म है।

इस धर्म ने अस्पृश्यता, जातिवाद, कट्टरता, संकीर्णता, प्राणी-हिंसा एवं निर्ममता पर कड़ा प्रहार किया है, जिसके परिणामस्वरूप यह धर्म भारत से उत्पन्न होकर अनेक देशों में आज पुष्पित पल्लवित हो रहा है। इसी ने जातिवाद की कमर तोड़कर रख दी। अन्तर्जातीय विवाह को इसी ने नई दिशा दी, जिससे जातिगत दूरियाँ समाप्त होती दिखाई दे रही हैं। कुछ रूढ़ियाँ एवं कट्टरतायें सामाजिक दूरियों को जहाँ भी बढ़ाती हैं, वहीं बौद्ध धर्म पहुँचकर उन दूरियों को समाप्त करने पर कटिबद्ध देखा जाता है। फिर भी इस दृष्टि से आज भी इस विषय में अभी बहुत सी नयी-नयी चुनौतियाँ मुँह बाये खड़ी हैं, जैसे कि भारत में कदाचार, नारी मान मर्दन, भ्रष्टाचार, राजनीतिक विषमतायें, तृष्णा, स्वार्थपरता अतिमहत्त्वाकांक्षा एवं एकल

पारिवारिक विकास कहीं चरम पर है तो कहीं कुछ अल्प मात्रा में परिलक्षित होता है। इन समस्याओं का समाधान बुद्धवाणी में साक्षात् देखा जाता है। बुद्ध कभी किसी एक समुदाय या एक इकाई तक सीमित नहीं थे, न ही वे किसी अन्य धर्म के विरोधी थे। वे तो सामुदायिक विकास के पक्षधर थे। उन्होंने जन्म-मृत्यु बन्धन जैसी नैसर्गिक प्रवृत्ति पर भी कड़ा प्रहार इसलिये किया कि इसी की वज़ह से नाना दुःखों का सामना मानव समाज को करना पड़ रहा है। कुछ अज्ञानी तो इस बन्धन का आह्वान करते हैं एवं इसे मोहवश सत्य समझते हैं। जब तक सांसारिक जाल से मनुष्य समाज दूरी नहीं बनायेगा, उसके प्रति सन्तुलित स्वस्थ दृष्टि नहीं अपनायेगा तब कर वह यहाँ धनार्जन, भूमि-विस्तार एवं स्व-केन्द्रित अन्धविकास से छुटकारा नहीं पा सकता। बुद्ध ने अपने पिता शुद्धोदन का राजपाट, गृहभूमि सुख तक छोड़ दिया और वे सत्य सिद्धान्त की खोज़ में निकल पड़े। इस तरह मानव समाज में व्याप्त दुःख को दूर करने की भावना किसी महापुरुष में ही उत्पन्न हो सकती है या अनेक जन्म जन्मान्तरों के अर्जित पुण्य विशेष वाले किसी तपस्वी में।

जयदेव कृत गीतगोविन्द में बुद्ध को यज्ञविधि तथा वेदों का विरोधी बताया गया है– जैसे कि–

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्।
केशव धृतबुद्धशरीर, जय जगदीश हरे ॥[1]

बुद्ध अत्यन्त दयालु थे, तभी उन्होंने पशुहिंसा का विरोध किया। इसमें केशव ने बुद्ध का शरीर धारण किया ऐसा प्रतिपादित है जो कि बौद्धधर्म को स्वीकार नहीं हो सकता। बुद्ध लम्बकर्ण, गौराङ्ग, शान्तात्मा पद्मपत्र के ऊपर विराजमान थे तथा अभय वरदान देने वाले थे, ऐसा अग्निपुराण का मत है-

शान्तात्मा लम्बकर्णश्च गौराङ्गाश्चम्बरावृतः।
ऊर्ध्वपद्मस्थितो बुद्धो वरदाभयदायकः ॥[2]

महाकवि क्षेमेन्द्र अपने दशावतारचरित महाकाव्य में विष्णु के नवम अवतार के रूप में शुद्धोदन पुत्र सिद्धार्थ गौतम बुद्ध को स्वीकारते हैं–

शुद्धोदनाख्यस्य नराधिपेन्द्रो-
र्धन्यस्य गर्भेऽवततार पत्न्याः ॥

---

1 गीतगोविन्दम् 1.9

2 अग्निपुराणम् 49.8

मायाभिधाना नरनाथपत्नी
गर्भे हरिं विश्वगुरुं वहन्ती।[1]

यह 11वीं सदी के कवि क्षेमेन्द्र का मत कथमपि स्वीकार नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ इस श्लोक में मायादेवी अपने गर्भ में शुद्धोदन पुत्र हरि को धारण कर रही है। बुद्ध का हरि नाम कैसे स्वीकार हो सकता है, हरि तो विष्णु हैं। इस तरह गौतम बुद्ध हरि के नवम अवतारी बौद्ध मत के अनुसार नहीं माने जा सकते।

बुद्ध तो महाकरुणा के सागर हैं। करुणा ही उनका ऐसा शस्त्र है, जिसके सामने एक पल भी आधुनिक परमाणु शस्त्र या मिसाइलें नहीं टिक सकतीं। इस धर्म में शरीर को सता कर व्रत करना तथा किसी का दमन कथमपि स्वीकार नहीं। प्रत्यपकार की भावना का लेशतः स्थान नहीं है। यहाँ दण्डनीति की जगह करुणा एवं क्षान्ति का प्रयोग होता है। क्षमा या सहिष्णुता का बौद्धधर्म में प्रथम स्थान है।

बौद्ध महायान धर्म का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'ललितविस्तर' सुप्रसिद्ध है। इसमें बुद्ध की ललित जीवन क्रीड़ाओं का वर्णन है। इसमें हीनयानीय सर्वास्तिवादीय शाखा का वर्णन भी उपलब्ध होता है। यह ग्रन्थ 27 भागों या परिवर्तों में विभक्त है। इसमें देवता भगवान् बुद्ध से पृथिवी पर अवतीर्ण होने का निवेदन करते हैं। इस ग्रन्थ का समय ई.पू. प्रथम सदी माना जाता है। एक बार भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में अनाथपिण्डद के क्षेत्र जेतवन में 12 हजार भिक्षुओं के साथ विहार कर रहे थे, ऐसा उल्लेख मिलता है। तुषितदेवों के स्वर्गस्थ दिव्य विमान में थे तभी बुद्ध 84000 दुन्दुभि के निनाद के साथ पृथिवी में अवतरित होते हैं। ऐसा भी उल्लेख है कि बुद्ध की माता मायादेवी में दस हजार हाथियों की शक्ति थी। वही बुद्ध के प्रजनन में समर्थ थी। उनके जन्म के समय भूख प्यास शीत, उष्ण, वात, ताप तथा रोग समाप्त हो गये थे। धर्मराज बुद्ध कैसा होता है इसे ललितविस्तर में देखा जा सकता है –

त्रातासि दीपोऽसि परायणोऽसि
नाथोऽसि लोके कृपमैत्रचित्तः।
वैद्योत्तमस्त्वं खलु शल्यहर्ता
चिकित्सकस्त्वं परमं हितंकरः॥[2]

धर्मराज बुद्ध कृपारूपी मित्रता के चित्त वाला होता है, वही रोगहर्ता होकर उत्तम हितकारी चिकित्सक भी कहा जाता है। धर्मराज बुद्ध चिरकाल से अज्ञान में सुप्त संसार को

1 दशावतारचरित्रम् 9.2-3

2 ललितविस्तर, संस्तवपरिवर्त 23.13

प्रज्ञा-प्रदीप से जगाता है। वही बुद्ध चिरकालिक सांसारिक रोगियों की वज़ह से व्याकुल जब हो जाता है, तब वह सभी प्रकार की व्याधियों का प्रमोचक बनकर वैद्यराज हो जाता है।

कनिष्क तथा अशोक के योगदान को भी बौद्धधर्म भुला नहीं सकता। अशोक को प्रियदर्शी कहा जाता है। अशोक के अवशिष्ट कार्य को कुषाण ने पूर्ण किया। अशोक की पुत्री संघमित्रा तथा पुत्र महेन्द्र ने श्रीलंका में हीनयानीय पालि ग्रन्थों को लिपिबद्ध कराया। कनिष्क ने बौद्ध दार्शनिक एवं साहित्यिक अश्वघोष को अपना दरबारी विद्वान् बनाया। प्रथम सदी के कवि विद्वान् अश्वघोष ने 'बुद्धचरितम्' तथा 'सौन्दरनन्द महाकाव्य' की रचना की जिसका अनुवाद चीनी, तिब्बती एवं अंग्रेजी आदि भाषाओं में किया गया। जिसका अनुसरण कर फ्रेन्च, जर्मन, ब्रिटिश, जापानी, अमेरिकीय, डच, वेलिजियम, इटालियन, रसियन विद्वानों में कार्लहार्न, विन्टरनिट्ज, जैकोबी, टामस कीथ, गर्नर, व्योडो आदि ने उल्लेखनीय कार्य किया। वहीं प्राचीन विद्वानों में जासलेकर, लोकुर, जगन्नाथ प्रसाद, सौवेनी, भण्डारी, सुकरात, हरप्रसाद शास्त्री, पी. एल. वैद्य, बलदेव उपाध्याय, भरतसिंह उपाध्याय, नरेन्द्रदेव, हरदत्त शास्त्री के बौद्ध धर्म-दर्शन विषयक योगदान को कौन विस्मृत कर सकता है। चीनी यात्री इत्सिंग सातवीं सदी में भारत आया तथा उसने कहा था कि भारत में अश्वघोष बौद्ध कवि के गीत गाये जा रहे हैं। अश्वघोष ने पेशावर में पार्श्व नामक बौद्ध भिक्षु के साथ शास्त्रार्थ किया था। इसमें विजयी पार्श्व से अश्वघोष ने दीक्षा ले ली। अश्वघोष पाटलिपुत्र में कनिष्क राज्य में दस वर्षों तक रहा। अश्वघोष, कनिष्क का आध्यात्मिक गुरु तथा उसका वैद्य चरक बना, ऐसी चीनी मान्यता भी मिलती है। लामा तारानाथ ने बौद्धधर्म के इतिहास में तीन अश्वघोषों का उल्लेख किया है।

अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' महाकाव्य में सूचित किया है कि वाल्मीकि ने ही सर्वप्रथम संस्कृत में श्लोक की रचना की–

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं
जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः।[1]

अश्वघोष के बुद्धचरित में असितमुनि ने शुद्धोदन पुत्र के विषय में भविष्यवाणी की थी- हे राजन्! तुम्हारा पुत्र सांसारिक मोहमाया का त्याग कर कठोर तप के बल पर ज्ञानमय दीपक प्रज्वलित कर मोहान्धकार को नष्ट करेगा। वहीं पुनः कहा–

लोकस्य नेता तव पुत्रभूतः
दुःखार्दितानां भुवि एष त्राता॥[2]

---

1 बुद्धचरितम्, 1.43

2 बुद्धचरितम्, 1.33

तुम्हारा पुत्र संसार का नायक बनेगा जो दुःखी पीड़ित लोगों की रक्षा करेगा। अपने पिता शुद्धोदन के तपोवन-गमन से रोकने पर सिद्धार्थ गौतम ने एक शर्त रखी थी कि यदि मेरा जीवन मरण के लिये न हो, न ही मुझे कोई बीमारी हो, न ही बुढ़ापा यौवन का दमन करे तथा न ही कोई विपत्ति मेरी सम्पत्ति का हरण करे तब मैं तपोवन नहीं जाऊँगा। इसका उत्तर शुद्धोदन के पास न होने से सिद्धार्थ ने सांसारिक विपत्तियों से समाज को उन्मुक्त करने हेतु अपनी पत्नी, पुत्र तथा गृह-सम्पत्ति का त्याग किया। बुद्ध ने ऐसा भयवश या सांसारिक भारवश नहीं किया। उन्होंने वर्तमान मानव समाज में स्वार्थ, लोलुपता, स्वविस्तार से ऊपर उठकर विश्वकल्याण की भावना का विस्तार किया। बुद्ध जरा, मृत्यु तथा रोग की स्थिति को देख कर संसार से व्यग्र हो गये, इस तथ्य को कोई व्यक्ति गहराई से समझे तो मानव मात्र में पर-कल्याण की भावना आ सकती है। यह कहाँ की बुद्धिमत्ता है कि हम यहां बार-बार जन्म मृत्यु के बन्धन में फंसे रहें, अविद्या, राग, द्वेष, वैर, क्लेश आदि के शिकार बनते रहें, रोते विलखते रहें, मिथ्या नाना मायाजाल में बन्दी बने रहें, अनित्यता से चिपके रहें? इसी विचार से प्रेरित होकर बुद्ध ने पुत्र राहुल तथा सुन्दर पत्नी यशोधरा का त्याग कर पर कल्याण की कामना से अभिनिष्क्रमण किया। वे एक गुरुकुल से दूसरे में पुनः अनेक मठों में पहुंचे, कहीं थोड़ी सन्तोषप्रद तो कहीं अधिक उपयोगी शिक्षा प्राप्त की। गुरु अराडकलाम से भी धर्म शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने बोधगया में तपस्या का फल प्राप्त किया अर्थात् बोधि प्राप्त की। पुनः सारनाथ वाराणसी में चार आर्य सत्य चतुष्टय—दुःखसत्य, दुःखसमुदयसत्य, दुःखनिरोधसत्य तथा दुःखनिरोधक मार्गसत्य अष्टाङ्गमार्ग का उपदेश दिया। यह जन्म तथा मृत्यु सत्य हैं तथा दुःखदायी हैं। इस दुःख का कारण अविद्या तृष्णा आदि है, इसका निरोध भी सत्य है, निरोध के उपायभूत सम्यक्संकल्प आदि आठ मार्ग हैं। त्रिशरणगमन के तहत बुद्ध धर्म तथा संघ की शरण में बौद्ध साधक जाता है। वह प्रज्ञा, शील, समाधि की शिक्षा में परिपक्व होता है। बोधिचित्त के उत्पाद में तत्पर होकर बोधिचर्या का सुदृढ अभ्यास करता है। बोधिचित्त के उत्पाद से वह बोधिसत्त्व की पदवी पाता है। बोधिसत्त्व का हृदय नवनीत की तरह शुभ्र तथा सुकोमल होता है। वह करुणावश किसी के भी दुःख के निवारण हेतु सदा समर्पित रहता है। प्रतिदिन सत्त्वकल्याण में व्यस्त रहता है, पर-कल्याण का अवसर न मिलने पर वह स्वयं से असन्तुष्ट रहता है। यहां तक कि वन में साधना के समय वन्य पशु-पक्षियों की क्षुधा तथा पिपासा को शान्त करने हेतु अपने रक्त तथा मांस का भी दान कर देता है। बोधिचर्या का अभ्यास तथा भावना करने से कोई भी मानव असीमित पुण्यार्जन कर सकता है। जन्म जन्मान्तर के पुण्य बल पर ही बुद्धत्व प्राप्त होता है। बोधिचित्त के उत्पाद से साधक का सम्मान

देव और मनुष्य लोक में होता है, उसे सुगतपुत्र कहा जाता है। वह कामना करता है है कि— 'बुद्धो भवेयं जगतां हिताय' अर्थात् मैं जगत्कल्याण के लिये बुद्ध बनूँ। महायानी साधक जगत्कल्याण के चलते निर्वाण-पथ की कामना नहीं करता है, जब तक समस्त प्राणी दुःखमुक्त नहीं हो जाते तब तक विश्रान्त नहीं होना चाहता है। हीनयानी भले ही अकेले अपने निर्वाण-पथ पर अग्रसर हो जाय। बौद्ध धर्म में वैर का थोड़ा भी स्थान नही है। वैरी व्यक्ति को यहां वैर छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि वैर करने से वैर शान्त नहीं होता, ऐसा धम्मपद में कहा गया है—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥[1]

अवैर अर्थात् मित्रता से ही वैर समाप्त होता है। इसलिये मैत्रीचित्त का उत्पाद आज आवश्यक है तभी एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की हानि में प्रवृत्त नहीं होगा। वह अपना जीवन परहित में समर्पित करेगा और उसका जीवन सार्थक होगा, यदि इस जीवन में परहित नहीं किया तो पुनरपि जीवन मिलना असंभव है जैसे कि शान्तिदेव ने कहा है कि—

यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरन्येषः समागमः कुतः ॥[2]

बुद्ध की कृपा से ही मानव पुण्यार्जन करता है, कभी रात में बिजली के चमकने के जैसा ऐसा भी इसी कवि ने कहा है। बोधिचर्यावतार में दान शील प्रज्ञा वीर्य ध्यान क्षान्ति इन ६ पारमिताओं पर प्रकाश डाला गया, जिन पर साधक अधिकार प्राप्त करता है। वह काय, वाक् तथा चित्त से विशुद्ध हो जाता है। पंच शिक्षापदों में प्राणिहिंसा से विरति, चोरी से विरति, काममिथ्याचार, मृषावचन से विरति तथा सुरामैरेय के सेवन से विरति अपेक्षित है।

चित्तशुद्धि पर बौद्ध मत में बड़ा जोर दिया गया है, उसके उपायों पर भी विमर्श किया गया है, फिर भी है बड़ा कठिन कार्य है यह। चित्त सन्तति की विशुद्धि के बिना कर्म प्रक्रिया भी कारगर साबित नहीं होती। चित्त तो मतवाले हाथी की तरह होता है, अरे वह तो उससे भी बड़ा उत्पात मचाता है। शान्तिदेव ने कहा है कि चित्त जब अनियन्त्रित होता है तब वह मतवाला हाथी हो जाता है, फिर टूट पड़ता है शान्त समाज को बर्बाद करने के लिये। इसीलिये इस पर नियन्त्रण अपेक्षित है अन्यथा अवीची आदि नरकों में पहुंचाकर बहुत पीड़ा देता है जैसे कि—

अदान्ताश्चित्तमातङ्गा न कुर्वन्तीह तां व्यथाम्।
करोति यामवीच्यादौ मुक्तश्चित्तमतङ्गजः ॥[3]

---

1 धम्मपद, 1.5

2 बोधिचर्यावतार, 1.4

3 बोधिचर्यावतार, 5.2

अब इस खुले मतवाले चित्त रूपी हाथी पर नियन्त्रण कैसे हो? इस पर बौद्ध कवि शान्तिदेव का कथन है कि स्मृति रूपी रज्जु से इसे बांधो अर्थात् शास्त्र ज्ञान की स्मृति से इसका बन्धन करो। यह स्मृति कैसे हासिल होगी ? इसके उत्तर में वहीं कहा गया है कि उपाध्याय गुरुजनों के अनुशासन से आदर देने वालों के भय से, गुरुजनों के साथ निवास सान्निध्य से यह स्मृति पुष्ट होती है। ऐसा करने से संपूर्ण व्याप्त भय समाप्त हो जायगा तथा कल्याण की वर्षा होगी, इसे शान्तिदेव के शब्दों में—

बद्धश्चेच्चित्तमातङ्गः स्मृतिरज्ज्वा समन्ततः।
भयमस्तङ्गतं सर्वं कृत्स्नं कल्याणमागतम्॥[1]

चित्त की विकृति के दुष्परिणाम आज स्पष्ट तौर पर देखे जा सकते हैं। आतंकवाद मुंह बाये खडा है, एक देश दूसरे निर्बल देश पर हावी होना चाहता है, अपना विस्तार मिसाइल परमाणु शस्त्रों के बल पर करने पर आमादा हो गया है, निरपराध लोगों की हिंसा की जा रही है, वर्तमान शिक्षा प्रणाली भी चित्त नियन्त्रण पर काम नहीं कर पा रही है, मनुष्य इतना बर्बर हो गया है कि वह श्रेष्ठ मर्यादाओं के द्वार को तोड़कर व मदमत्त होकर न जाने कितने अनुचित कार्य कर डालता है। वहीं वह अब अपने अनैतिक कार्यों को इस युग की नयी माँग कहकर पास कर देता है। इसीलिये भगवान् बुद्ध ने चित्त संशोधन पर अधिक प्रकाश डाला। शान्तिदेव कहते हैं कि—

न शिक्षा रक्षितुं शक्या चलं चित्तमरक्षता[2]

अर्थात् चंचल चित्त पर नियन्त्रण न करने से शिक्षा की रक्षा असम्भव है। मनुष्य के प्राप्तव्य लाभ, आदर, कायिक जीवन, अन्य पुण्य कीर्तियाँ भले ही नष्ट हो जांय किन्तु चित्त दूषित नहीं होना चाहिये ऐसा बोधिचर्यावतार नामक ग्रन्थ में कहा गया है इस तरह—

लाभा नश्यन्तु मे कामं सत्कारः कायजीवितम्।
नश्यत्वन्यच्च कुशलं मा तु चित्तं कदाचन॥[3]

इसी तरह क्रोधचित्त के भयंकर परिणाम सामने आ रहे हैं, एक ही व्यक्ति अनेक लोगों की हिंसा करता नजर आ रहा है, नारी की अस्मिता चोटिल हो रही है, अपराध चरम पर है। इसीलिये क्रोध एवं अशान्ति को काबू करना पड़ेगा। यहां कोई किसी का वैरी नहीं है,

---

1 बोधिचर्यावतार, 5.3
2 बोधिचर्यावतार, 5.1
3 बोधिचर्यावतार, 5.22

वैरी तो अन्दर बैठा क्रोध है, कितने दुश्मनों को मारोगे दुश्मन तो आकाश तक व्याप्त हैं, इसीलिये क्रोधचित्त को मार दो तभी अपने आप सभी वैरी समाप्त हो जायेंगे। इसे भी वहीं इस तरह से कहा गया है —

कियतो मारयिष्यामि दुर्जनान् गगनोपमान् ।
मारिते क्रोधचित्ते तु मारिताः सर्वशत्रवः ॥[1]

इस तरह चित्त का नियन्त्रण कर मानव को अपनी सहिष्णुता का विकास करना चाहिये। विना सहनशीलता के कदाचार पर नियन्त्रण सम्भव नहीं है।

बुद्धधर्म मानवतावादी तथा यथार्थ दृष्टिवादी धर्म है, इसमें कहीं भी अन्धविश्वास, भूत-प्रेत, बलिदान, किसी ईश्वर या आत्मा की कल्पना का थोड़ा भी अवसर नहीं है। बुद्ध स्वयं कहते हैं कि मेरा वचन केवल बुद्धप्रोक्त होने से मत स्वीकारो, बल्कि उसे परीक्षण की कसौटी पर कसो, जैसे सुनार लोहे को या सोने को तपाता है, काटता है, पुनः उसकी असलियत को जान कर ही उसे स्वीकारता है, ठीक वैसे ही पण्डित जन मेरे वचनों की भी परीक्षा करें, यदि कसौटी पर खरे उतरें तो स्वीकारें अन्यथा छोड़ दें। केवल मेरे नाम, यश, गौरव के आधार पर आंख बन्द कर न ग्रहण करें। शान्तरक्षित कृत तत्त्वसंग्रह नामक बौद्धशास्त्र पर कमलशीलकृत पञ्जिका नामक टीका में उक्त अभिप्राय का निम्न पद्य देखा जा सकता है।

तापाच्छेदाच्च निकषात्सुवर्णमिव पण्डितैः ।
परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं मद्वचो न तु गौरवात् ॥

इस तरह बुद्धधर्म को ईश्वराज्ञा न समझा जाय, किसी की प्रतिज्ञा भी न समझा जाय, बिना परीक्षण के इसे ईश्वर का वचन मत समझो। यह तो परीक्षित धर्म है, रूढ़िवादी नहीं।

बुद्ध के धर्ममार्ग पर चलने से ही आज पारस्परिक संघर्ष तथा आन्तरिक समस्याओं का निदान सम्भव है। परमाणु युद्ध से एक पल में संसार को नष्ट करने की दुष्प्रवृत्ति को बौद्धधर्म के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है। 'सौन्दरनन्द' काव्य में सांसारिक वासना तथा बौद्धधर्म की भिक्षुसंघीय दीक्षा के साथ द्वन्द्व-युद्ध चलता है। एक ओर बुद्ध के सौतेले भाई नन्द तथा उसकी प्रेयसी सुन्दरी का परस्पर गाढ़ प्रेम तथा दूसरी ओर बुद्ध के द्वारा उसे बुद्ध धर्म संघ की शरण में ले जाने के बीच संघर्ष चलता है। अन्ततः दोनों प्रेमी बौद्ध संघ की शरण में आ जाते हैं, सांसारिक मोह को त्याग कर। बौद्धधर्म मानव को क्षणिक स्वार्थ एवं मोह से ऊपर उठाकर उसे कारुणिक एवं अहिंसक बनाने पर जोर देता है, जिससे कि विश्वबन्धुत्व, विश्वशान्ति, बहुजनहित तथा बहुजनसुख का विस्तार हो।

---

1 बोधिचर्यावतार, 5.12

संस्कृत कवि आर्यशूर की जातकमाला तो परोपकार, सदाचार, विनय, शील, अहिंसा, जनप्रेम, सौहार्द, करुणा, त्याग एवं सन्तोष की पग-पग पर शिक्षा देता है। बुद्ध के पूर्वजन्मों के वृत्तान्त का कोशग्रन्थ है जातकमाला। जो भी व्यक्ति बौद्ध धर्म से भावित होकर इन कथाओं को पढ़ेगा, वह एक सर्वश्रेष्ठ मानव आज भी बन सकता है, आज भी वह बुद्धोपम यश का प्रतिनिधि बन सकता है। संस्कृत नीतिग्रन्थ, पंचतन्त्र, हितोपदेश कथा में हंस, काक, बक, वानर, महिष, मृग, शश इत्यादि पशु पक्षियों को पात्र-संवादक बनाया गया है। जातकमाला में 34 बौद्ध जातक कथायें निहित हैं। दसवीं सदी में इसका अनुवाद चीनी भाषा में हो गया था। आर्यशूर बौद्धकवि का ऐतिहासिक काल– 3-4 शताब्दी के बीच है। इसमें व्याघ्री, शिबि, श्रेष्ठि, हंस, यज्ञ, शरभ, हस्ति, शतपत्र, मैत्रीबल इत्यादि जातक निबद्ध हैं। बुद्ध अपना सत्कार अपनी पूजा से नहीं चाहते बल्कि दूसरे की हितकामना मात्र से उनका सम्मान हो जाता है ऐसा शान्तिदेव आचार्य ने अपने ग्रन्थ बोधिचर्यावतार में कहा है–

हिताशंसनमात्रेण बुद्धपूजा विशिष्यते।[1]

बौद्धधर्म ने अनेक भाषाओं की पारस्परिक मित्रता करा दी। विश्व की कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें बुद्ध का सन्देश न हो। संस्कृतभाषा से लेकर चीनी, तिब्बती, कोरियन, फ्रेन्च, नेपाली, भूटानी, बर्मी, मंगोलियन, जर्मन, जापानी, मागधी, शौरसेनी, अंग्रजी इत्यादि तथा भारतीय सीमान्त भाषाओं में किन्नौरी, लद्दाखी, अरुणांचली, मणिपुरी, सिक्किमी इत्यादि भाषाभाषी समाज बौद्धधर्म के बल पर ही आज भारतीय एकता को मजबूती प्रदान करता है। इस तरह बौद्धधर्म ने ई.पू. पाँच सौ वर्षों से आज तक जिस मानव धर्म एवं नैतिकता का शुभ सन्देश देकर विश्वव्यापी समाज को विश्वशान्ति, मैत्री एवं करुणा का पाठ पढ़ाया, उसी के बल पर सांसारिक अशान्ति, विद्वेष, राग, क्लेश एवं संकीर्ण प्रवृत्तियों को दूर किया जा सकता है तथा आत्यन्तिक सुख की वर्षा की जा सकती है क्योंकि इसी धर्म ने विश्वसमाज से नाता जोड़ा, विश्वभाषाओं में अपनी पहुँच बनाई तथा विशाल वाङ्मय का प्रतिनिधित्व किया।

अध्यक्ष संस्कृत विभाग एवं
शब्दविद्या संकाय-प्रमुख
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 8853162480

1 बोधिचर्यावतारः, 1.27

तिब्बत देश में प्रख्यात भारतीय महान् आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति का योगदान

—डॉ. गेशे लोब्संग दोर्जे रबलिङ्—

दसवीं शताब्दी में आर्यावर्त भारतवर्ष से महापण्डित आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति नामक एक प्रख्यात भारतीय विद्वान् का भोट देश में आगमन हुआ। उन्होंने अभिज्ञा बल से अपनी स्वर्गीय माता का पुनर्जन्म तिब्बत के एक कुलीन परिवार के भट्टी (चूल्हे) के भीतर एक जीव के रूप में देखा। उन्होंने मृत माता के पुनर्जन्म रूपी उस जीव को तुषित लोक में उत्पन्न कराने हेतु तिब्बत की ओर प्रस्थान किया।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य सम्भवतः भारत से तिब्बत की सोद्देश्य यात्रा पर निकलते समय अपने साथ बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त साँचा और सञ्चक निर्माण विधि की सामग्रियों को भी साथ ले गए थे। वे किसी नेपाली लोचावा (अनुवादक) के सहयोग से यात्रा करते हुए तिब्बत के सीमान्त पर पहुँचे। परन्तु दुर्भाग्यवश वहां पर नेपाली लोचावा (अनुवादक) की अकस्मात मृत्यु हो गई। तत्पश्चात वहां से बिना मार्गदर्शक के जटिल मार्गों को पार करते हुए तिब्बत पहुँचे। वहां अज्ञानी तिब्बती लोग उन्हें पहचान न पाये और भोटी भाषा का ज्ञान न होने के कारण वे अपना परिचय देने में असमर्थ रहे। उनका नियमित रूप से केश मूंड़न करने वाला प्राप्त न होने के कारण बाल अत्यन्त लम्बे हो गये थे। चीवर इत्यादि वस्त्रों के फट जाने पर नए वस्त्रों के अभाव में सफेद लुंगी को धारण करके इधर-उधर भ्रमण करते रहे।

अन्त में चङ् प्रान्त के तानक-छङ् नामक एक बहुत बड़े प्रसिद्ध कुलीन परिवार में अनेक वर्षों तक चरवाहा के रूप में पशुओं की देखभाल करते रहे।

जब आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति ने अपने सेवाकार्य की पारिश्रमिक राशि के बदले उनके रसोई घर की भट्टी के स्थान को मांगा। तब गृहपति ने उन पर कृपा कर वह जमीन उन्हें दे दी। उस भट्टी में उनकी मृत माता के पुनर्जन्म के रूप में उत्पन्न जीव का शव पड़ा था। उस भट्टी से प्राप्त शव को मिट्टी के साथ मिलाकर उन्होंने सञ्चक का विधिपूर्वक निर्माण किया तथा उस (पुण्य) से अपनी माता को तुषित लोक में जन्म ग्रहण कराया। तब से भोट देश में सञ्चक के निर्माण का कार्य सविधि प्रारम्भ हुआ।

भोट शिष्य महानुवादक 'चेल सोनम ग्यलछन' का मिलन

कालान्तर में एक दिन आचार्य का एक भोट शिष्य महानुवादक 'चेल सोनम ग्यलछन' भ्रमण करते हुए उसी गाँव में पहुँचा, जहाँ आचार्य (स्मृतिज्ञान) सेवक के रूप में कार्य कर रहे थे। अनुवादक की दृष्टि आचार्य के आवास पर पड़ी, जहाँ आचार्य ने संस्कृत भाषा में एक पद्य लिखकर टांगा हुआ था। अनुवादक शिष्य ने आचार्य की लिखावट देखकर उन्हें पहचान लिया। पद्य की उस पंक्ति में लिखा था-

"अनेक तारों से परिवृत्त चन्द्रमा को रात्रि में आकाश में विचरण करता हुआ न देखकर, निर्मल सरोवर में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को ही, प्रामाणिक चन्द्रमा मानने वाले अत्यन्त भ्रमित हैं।"

अर्थात् भारत जैसा विशाल देश जो आकाशरूपी है, जिसमें अनेक तारारूपी विद्वान् हैं। उनमें आचार्य स्मृतिज्ञान चन्द्रमा के समान हैं। उन तारारूपी विद्वानों को प्रवचन देना छोड़कर मैं यहाँ (तिब्बत में) आ गया हूँ। यहाँ (तिब्बत में) निर्मल जल रूपी श्रद्धालु जन प्रतिबिम्बित चन्द्रमा रूपी वरिष्ठ लोचावा एवं विद्वानों को साक्षात् प्रामाणिक विद्वान् समझने वाले तिब्बतवासी निश्चित ही बालबुद्धि की तरह हैं, क्योंकि आर्यावर्त भारतवर्ष से मेरे जैसे साक्षात् चन्द्रमारूपी पारम्परिक प्रामाणिक विद्वान् को तिब्बतवासी पहचान नहीं रहे हैं। ऐसा पूर्वोक्त काव्य के श्लोक अंश का भावार्थ है।

आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति की दुर्दशा

आचार्य के इस श्लोक के अर्थ को समझकर उनके तिब्बती शिष्य चेल सोनम ग्यलछन ने तत्काल आचार्य को खोजने के लिए उस कुलीन गृहस्वामी से पूछा कि यह लेखन किसका है तथा इस समय वे कहाँ हैं? इस प्रकार पूछने पर गृहस्वामी ने कहा कि मेरे यहाँ तिब्बती भाषा न जानने वाले एक श्वेत वस्त्रधारी आचार्य सेवाकार्य करते हैं। इस समय वह पशुओं के साथ चरागाह की ओर गये हैं। तब लोचावा ने तत्काल उस सेवक आचार्य को बुलाने हेतु आदमी भेजने का आग्रह किया। गृहस्वामी ने आदमी भेजकर आचार्य को बुला लिया। लोचावा दुर्दशापन्न आचार्य को दूर से देखकर तत्काल पहचान नहीं सके। क्योंकि आचार्य के बाल लम्बे हो गये थे, कपड़े फटे हुए थे तथा पौष्टिक आहार न मिलने से शरीर का वर्ण भी विकृत हो गया था। जब आचार्य नजदीक पहुँचे तब गौर से देखने पर लोचावा ने आचार्य को पहचान लिया और अपने रेशमी वस्त्रों के साथ जमीन पर साष्टांग प्रणाम करते हुए लेट गये। लोचावा की आँखे आसुओं से भर गईं और आचार्य से बारम्बार क्षमा-प्रार्थना की। तत्पश्चात् लोचावा ने तत्काल सब लोगों के समक्ष घोषणा की कि ये कोई

साधारण आचार्य नहीं हैं, अपितु भारतवर्ष के अत्यन्त प्रसिद्ध महाविद्वान् एवं साधक आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति हैं। जब मैं विद्या-अध्ययन हेतु भारत गया था तो मैंने इनके चरणों में बैठकर विद्या-अध्ययन किया था। ये मेरे गुरु हैं। अत: सभी तिब्बती लोग क्षमा-याचना के साथ पश्चात्ताप करते हुए आचार्य को प्रणाम करें। तत्पश्चात् सभी तिब्बती लोग क्षमा-याचना करते हुए आचार्य को प्रणाम करने लगे। विशेष रूप से उस कुलीन गृहस्वामी ने आचार्य से क्षमा माँगी। लोचावा ने तुरन्त आचार्य को गर्म पानी से स्नान कराकर, चन्दनचूर्ण का लेप करके उत्तम रेशमी वस्त्र पहनाया।

आचार्य ने उस गाँव के लोगों को एवं गृहस्वामी के परिवार को उपदेश दिया, जिसका लोचावा ने भोट भाषा में अनुवाद किया। गृहस्वामी से आग्रह कर लोचावा आचार्य को अपने साथ पश्चिमी तिब्बत के खम् प्रान्त में ले गये। वहाँ पर आचार्य ने अनेक सूत्रों एवं शास्त्रों का प्रवचन दिया। विशेष रूप से आचार्य ने आचार्य वसुबन्धु के अभिधर्मकोश का प्रवचन देकर तिब्बत में अभिधर्म की अध्ययन-परम्परा पहली बार स्थापित की। इसके अतिरिक्त अनेक तन्त्र-ग्रन्थों का प्रवचन दिया एवं लोचावा के साथ अनेक सूत्रों एवं शास्त्रों का अनुवाद किया।

कालान्तर में आचार्य ने भोट भाषा का अच्छी तरह से ज्ञान कर लिया और अनेक ग्रन्थों का स्वयं अनुवाद किया, जो आजकल भी कंग्युर-तंग्युर सूची में प्राप्त होते हैं। परन्तु भोटदेशीय विद्वान् ऐसा मानते हैं कि उनका स्व-अनुवाद उतना अच्छा नहीं है, जितना अच्छा भोट विद्वानों द्वारा किया हुआ अनुवाद है। देगे-तंग्युर संग्रह में आचार्य स्वयं द्वारा विरचित एवं अनूदित लगभग सोलह ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। आचार्य ने एक भोट-व्याकरण विषयक ग्रन्थ तिब्बती भाषा में लिखा है, जिसको आज भी अनेक भोटदेशीय वैयाकरण विद्वान् प्रामाणिक मानते हैं।

तिब्बत देश में आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति के तीन प्रकार के रुदन एवं तीन प्रकार के हास्यास्पद भाव की अनुभूति

आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति को उस कुलीन घर में सेवा देते समय तीन प्रकार के रुदन एवं तीन प्रकार के हास्यास्पद भाव की अनुभूति हुई जो इस प्रकार हैं–

तीन प्रकार के रुदन भाव–

1. एक दिन उस (कुलीन) के कीचड़ ग्रस्त घर में स्त्री (गृहिणी) द्वारा दूध दुहते समय आचार्य स्मृति का आसन के रूप में प्रयोग किया गया, तब उनके मन में 'मैं एक

भारतीय विभूषित विद्वान इस समय एक स्त्री का आसन होना पड़ रहा है', ऐसा सोचते हुए अत्यन्त दुःखी होकर उन्हें रोना आया।

2. दिन में वह उस घर के भेड़पालक के रूप में भेड़-बकरियों को चराने तथा रात्रि में दाने (भुने हुए जौ) को पीसने का कार्य करते थे। आचार्य के थोड़े समय के लिए निद्रा में चले जाने के कारण सिर जाँता (आटा पीसने वाला पत्थर) में टकरा जाने से, उस स्त्री द्वारा "दाने (भुने हुए जौ) को गिराइये मत" ऐसा कहने पर आचार्य स्मृति के विचार में 'मेरे सिर और उनके दाने इन दोनों में से दाने को अत्यन्त महत्व दिया जा रहा है', ऐसा सोचते हुए अत्यन्त दुःखी होकर उन्हें रोना आया।
3. एक दिन एक क्रौंच पक्षी को गिद्ध द्वारा मारे जाने पर (उस) पक्षी का शव आचार्य स्मृति के गोद में गिरने पर उन्होंने कहा- तुम भी सीमान्त पक्षी और मैं भी सीमान्त मनुष्य, ऐसा सोचते हुए अत्यन्त दुःखी होकर उन्हें रोना आया।

तीन प्रकार के हास्यास्पद भाव–

1. एक दिन वे अलाव (आग का ढ़ेर) को घेरा कर अवस्थित होने पर एक खरगोश उनके समक्ष बिना संकोच किए आग सेंकते हुए बैठ गया। क्षणमात्र के लिए खरगोश के निद्रा में चले जाने से सिर के आग में स्पर्श करने के कारण मुख के बाल जल गये और चारों ओर दौड़ने से उन्हें अत्यन्त हंसी आयी।
2. एक बार स्मृति सरोवर के तट पर विश्राम करते समय नाग ने उनके ज्ञान और गुण को जानकर एक स्त्री का रूप धारण किया। तत्पश्चात् ञन (=तिब्बती जंगली भेड़ की प्रजाति) के एक सींग में डाले गये दूध को भूमि पर रखकर आचार्य जी के वन्दना करते समय, सींग पलटने से दूध गिर गया और नाग के लज्जित होकर अपने निर्मित (रूप) का संहार किये बिना बाहर सरोवर में पतित होने से उन्हें अत्यन्त हंसी आयी।
3. एक दिन भारत में अध्ययन किये ज्ञान को भूला है या नहीं इस प्रकार स्वयं को परीक्षण किया गया तो समस्त ज्ञान बिना भुलाए स्पष्ट रूप से चित्त में उदित होने से उन्हें अत्यन्त हंसी आयी।

कालान्तर में 12वीं शताब्दी में साक्य पण्डित कुंगा ग्यल-छेन ने भारतवर्ष से चार वरिष्ठ एवं छह अनुज पण्डितों को तिब्बत में आमंत्रित किया। उन अनुज पण्डितों में दानशील नामक एक पण्डित थे, जो न्याय के विशेषज्ञ थे। एक समय जब वह रोग से ग्रस्त होने लगे तो उनके मन में ऐसा विकल्प उत्पन्न होने लगा कि वह शीघ्र ही मरने वाले हैं। यदि ऐसी

परिस्थिति आये तो मैं तिब्बत में नहीं मरूंगा क्योंकि उनके मन में यह धारणा बनी हुई है कि तिब्बत एक प्रत्यन्त जनपद भूमि है, जिसके कारण वह तिब्बत में मरना नहीं चाहते। इसलिए उन्होंने इन परस्थितियों से अत्यन्त दुःखी होकर भारत में मरने की इच्छा जतायी, तब साक्य पण्डित ने कहा कि बहुत से भारतीय पण्डितों का निधन तिब्बत में हुआ है, जिनमें आचार्य शान्तरक्षित जो शीलवान भिक्षु एवं बोधिसत्व हैं, अन्य फा-दमपा सङ्गे एक वरिष्ठ योगी जिन्होंने अनेक अववादों की देशना की तथा कमलशील आदि ऐसे बहुत से भारतीय विद्वान सम्मिलित हैं। अन्त में जब साक्य पण्डित ने आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति का निधन भी तिब्बत में होने के बारे में अवगत कराया तो उन्होंने तत्काल अञ्जलिबद्ध होकर उनके गुण एवं ज्ञान का एक अंश भी मेरे अन्दर नहीं है, इस प्रकार उन्हें स्मरण करते हुए अब मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊं तो भी मुझे कोई पश्चाताप नहीं होगा।

अतः इससे यह प्रतीत होता है कि आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति के प्रति भारतीय पण्डितों का कितना आदर सम्मान हैं।

आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति का चातुर्महाभौतिक सञ्चक-निर्माण में योगदान

आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति एवं आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान ने सञ्चक निर्माण का प्रयोग विशेष रूप से आवरण विशुद्धि एवं पुण्यसंचय के लिए किया है।

सञ्चक का निर्माण न केवल मिट्टी पर ही आधारित है, अपितु अन्य चार महाभूतों के आधार पर भी निर्मित होता है। विशेष रूप से जब उपस्थान (पूजा साधना) किया जाता है, उस समय मिट्टी के अतिरिक्त अग्नि, जल एवं वायु के आधार पर भी सञ्चक का निर्माण किया जाता है।

आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति द्वारा बनाये सञ्चक के आकार को पहचानने के लिए ऐसा कहा जाता है कि जब आचार्य तिब्बत में सेवक के रूप में कार्य कर रहे थे, उस समय वे कभी-कभी सञ्चक का निर्माण किया करते थे। उनके द्वारा निर्मित छोटे-छोटे सञ्चकों से कभी-कभी उनका छोटा-सा (सेवक के लिए बने) आवास एवं भट्टी (चूल्हा) भर जाता था। तब वे उनमें से कुछ सञ्चकों को बाहर ले जाकर पेड़-पौधों की शाखाओं पर लटका देते थे। आचार्य के द्वारा निर्मित सञ्चकों के तल में छेद होता था। कालान्तर में जब आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति के सञ्चकों की बहुत प्रसिद्धि हो गई, तो उनकी पहचान के लिए साँचे द्वारा निर्मित चैत्य (स्तूप) के तल में एक छेद बनाया जाता है, जिसका प्रचलन आज तक भोट संस्कृति में जीवित है।

तिब्बतियों में भी अधिकांश लोगों में अपने माता-पिता एवं भाई-बन्धुओं के निधन हो जाने पर उनकी अस्थि अथवा अन्य अवशेषों को मिट्टी के साथ मिश्रण करके तथागत अक्षोभ्य के प्रतिबिम्ब वाले साँचे से मूर्ति-निर्माण का प्रचलन है, जिससे वे स्वर्गस्थ जीव के कल्पों से संचित पापों एवं आवरणों का विशोधन, दुर्गति में पतन से रक्षा और अन्य अनेक प्रकार की अनुशंसा मानते हैं।

कई भोट विद्वान् किसी एक स्तूप का निर्माण करके उसके भीतर तथागतों के काय, वाक् एवं चित्त के प्रतिनिधि के रूप में मूर्ति, पुस्तक एवं छोटे-छोटे मृत्तिका निर्मित चैत्य रखते हैं। इसके पीछे उनका दृढ़ विश्वास है कि एक चैत्य के निर्माण से अनेक पुण्यों का संचय एवं अधिक अनुशंसा प्राप्त की जा सकती है।

का-ग्युर एवं तन-ग्युर में आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति द्वारा विरचित एवं अनूदित ग्रन्थों की सूची का विवरण

विरचित ग्रन्थों की सूची-

1. Toh. 1621 **षट्तत्त्वव्यवस्थानम्,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'य', पृ. 167 क1-170 क5
2. Toh. 1829 **बोधिचित्त विवरणटीका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'चि', पृ. 117 क2-142 ख4
3. Toh. 1900 **षड्गयोग-नाम-टीका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'फि', पृ. 186 ख1-287 क6
4. Toh. 1914 **श्रीगुह्यसमाजतन्त्रराजवृत्तिः,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'फि', पृ. 155 क1-217 ख2
5. Toh. 1915 **चतुर्देवतापरिपृच्छाव्याख्यानोपदेशपौष्टिकनाम्,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'फि', पृ. 217 ख3-249 ख7
6. Toh. 2538 **मञ्जुश्रीनामसंगीतिलक्षभाष्य,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'गु', पृ. 67 ख4-118 ख7
7. Toh. 2584 **आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिगुह्यवद्विधिवृत्तिज्ञानदीपनाम्,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'डु', पृ. 107 ख1-150 ख1
8. Toh. 2585 **गुह्यापन्नोपथिकासूत्र विधि**, देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'डु', पृ. 150 क1-151 क1
9. Toh. 2586 **प्रतिष्ठाविधि,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'डु', पृ. 151 क2-151 ख3
10. Toh. 2594, **गुह्यपन्नपत्रिका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'चु', पृ. 32 ख1-35 क1
11. Toh. 2684 **वज्रविदारणा-नाम-धारणीवृत्तिः,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'थु', पृ. 226 क3-233 ख2

12. Toh. 2685 **वज्रविदारणा-नाम-धारण्युपदेशः,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'थु', पृ. 233 ख3-236 क5
13. Toh. 2931 **वज्रविदारणा-नाम-धारण्युपदेशः,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'नु', पृ. 336 क4-339 क1
14. Toh. 3789 **शतसाहस्रिकापञ्चविंशतिसाहस्रिकाष्टादशसाहस्रिका त्रयसमानार्थाष्टाभि-समयशासना,** देगे तन-ग्युर संस्करण, पारमिता वर्ग, पुट् 'शेर-छिन पारमिता', पृ. 182 ख1-243 क7
15. Toh. 4295 **वचनमुखायुधोपम-नाम ।** देगे तन-ग्युर संस्करण, डादो वर्ग, पुट् 'से', पृ. 277 ख1-281 ख7
16. Toh. 4296 **वचनमुखायुधोपम-नाम-वृत्तिः,** देगे तन-ग्युर संस्करण, डादो वर्ग, पुट् 'से', पृ. 282 क1-303 क7

अनूदित ग्रन्थों की सूची-

1. Toh. 367, **सर्वकल्पसमुच्चय-नाम-सर्वबुद्धसमायोगडाकिनीजालसंबर-उत्तरोत्तरतन्त्र,** देगे काग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'क', पृ. 193 क6-212 क7
2. Toh. 430, **श्रीचतुःपीठविख्याततन्त्रराज-नाम,** देगे काग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ङ', पृ. 260 क3-304 ख7
3. Toh. 446, **चतुर्देवीपरिपृच्छा,** देगे काग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'च', पृ. 277 ख3-281 ख7
4. Toh. 1608, **आर्यचतुः पीठटीका ।** (प्रथमभाग-कल्याणवर्मा, द्वितीयभाग स्मृतिज्ञानकीर्ति), देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'य', पृ. 1 ख1-72 क7
5. Toh. 1617, **ज्ञानेश्वरीसाधन-नाम ।** (समयश्रीज्ञान), देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'य', पृ. 148 ख6-150 क1
6. Toh. 1650, **वज्रामृततन्त्रटीका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'र', पृ. 15 ख6-53 ख2
7. Toh. 1662, **सर्वकल्पसमयोगडाकिनीमायासंवरोत्तरतन्त्रटीका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ल', पृ. 19 ख3-58 ख5
8. Toh. 1787, **सर्वगुह्यप्रदीपटीका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ह', पृ. 203 ख5-234 ख7
9. Toh. 1856, **चतुरङ्गसाधनसमन्तभद्री-नाम,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'दि', पृ. 36 क5-42 ख5
10. Toh. 1900, **षडङ्गयोग-नाम-टीका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'फि', पृ. 286 ख1-287 क6
11. Toh. 2533, **आर्यनामसंगीतिटीका नाममन्त्रार्थावलोकिनीनाम,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'खु', पृ. 27 ख1-115 ख3
12. Toh. 2579, **आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिसाधन,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ङु', पृ. 59 क4 ख5-70 ख2

13. Toh. 2580, **नामसंगीत्यध्ययनान्तर्भावना-**फक्पा छोक, देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ङु', पृ. 70 ख2-76 ख4
14. Toh. 2581, **आर्यामञ्जुश्रीनामसंगीति-नाम-होमक्रम,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ङु', पृ. 76 ख4-83 क1
15. Toh. 2582, **आर्यमञ्जुश्रीमण्डलविधिगुणासम्भव-नाम,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ङु', पृ. 83 क1-106 क3
16. Toh. 2586, **प्रतिष्ठाविधि,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ङु', पृ. 151 क2-151 ख3
17. Toh. 2588, **आर्यमञ्जुश्रीरत्नविधिः,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'ङु', पृ. 154 क3-156 क5
18. Toh. 2594, **गुह्यपन्न पत्रिका,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'चु', पृ. 32 क1-35 क1
19. Toh. 2595, **आर्यमञ्जुश्रीनामसंगीतिमण्डलविधि,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'चु', पृ. 35 क1-46 ख3
20. Toh. 2630, **सर्वदुर्गतिपरिशोधनमहामण्डलसाधन,** देगे तन-ग्युर संस्करण, तन्त्र वर्ग, पुट् 'जु', पृ. 112 ख1-124 ख5

आधार ग्रन्थ-सूची:

1. चैत्य-सञ्चकयोर्निर्माणविधिसंग्रहः, के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी, सन् 2006.
2. भोट विद्वान मङ्थोस ल्हु-डुप-ग्याछो विरचित, शासन-गणित-समुच्चय, तिब्बत से प्रकाशित, 1988.
3. आचार्य स्मृतिज्ञानकीर्ति की जीवनी, वचनमुखायुधोपम-अल्प-शब्द-भाष्य,बेरि जिग्मे वङ्गयल द्वारा विरचित, के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी, प्रकाशन, 2016.
4. देगे कग्युर एवं तनग्युर ग्रन्थ-सूची, तोहुकु इम्पेरल विश्वविद्यालय, सन्दय, जापन, सन् 1934.

सह प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.न.- 9415695519

त्रिपिटक : संक्षिप्त परिचय

—डॉ. विजयराज वज्राचार्य—

तथागत भगवान् सम्यक्संबुद्ध के द्वारा बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के लिए बुद्धत्व प्राप्ति से महापरिनिर्वाण तक लगभग 45 वर्षों तक दिये गये उपदेश का संग्रह पालि त्रिपिटक में विद्यमान है। सद्धर्म को चिरस्थायी बनाने के लिए बुद्धकाल से लेकर वर्तमान तक के आचार्यों ने धर्मवाणी को व्यवस्थित रूप से स्वाभाविक, मौलिक अर्थयुक्त अविच्छिन्न रूप से सुरक्षित रखा। बुद्धवचनों का संग्रह ही त्रिपिटक है। बुद्धवचन सुत्तपिटक, विनयपिटक और अभिधम्मपिटक तीन भागों में विभाजित किया गया है, इसीलिए इसे 'त्रिपिटक' कहा गया है। पिटक का अर्थ टोकरी या धर्मसाहित्यों की पिटारी, संग्रह, भण्डार है। बुद्धशासन में परियति, पटिपत्ति और पटिवेध, इन तीनों में से त्रिपिटक परियत्ति शासन में आता है। परियत्ति का अर्थ बुद्धवचनों के त्रिपिटक के अध्ययन, अध्यापन तथा सैद्धान्तिक पक्ष हैं, तो पटिपत्ति का अर्थ आचरण एवं व्यावहारिक पक्ष है। तत्पश्चात् पटिवेध का अर्थ बुद्धधर्म के अभ्यास से प्राप्त होने वाला मार्ग, फल और निर्वाण होता है। परियत्ति शासन के रहने से पटिपत्ति शासन नहीं रहता है। इसी प्रकार से पटिपत्ति शासन के रहने से पटिवेध शासन नहीं रहता है। इसीलिए बुद्धशासन की महत्त्वपूर्ण आधारशिला परियत्ति अर्थात् बुद्धवचनों को शुद्ध रूप में सुरक्षित बनाने में है। वर्तमान समय तक छः बार संगायन सम्पन्न हो चुका है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

प्रथम संगायन

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण होने के तीन माह के पश्चात् 544 ईस्वी पूर्व मगध के राजा अजातशत्रु के संरक्षण में भिक्षु महाकाश्यप महास्थविर के नेतृत्व में 500 अर्हत् भिक्षुओं के समागम में राजगृह की सप्तपर्णी गुफा में 7 माह लगाकर सम्पूर्ण बुद्धवचन धर्म और विनय के रूप में संग्रह कर प्रथम संगायन आयोजित किया गया था। दीघनिकाय अट्ठकथा के निदानकथा के अनुसार 'धम्म' शब्द का प्रयोग सुत्त और अभिधम्म के लिए किया गया।

द्वितीय संगायन

प्रथम संगायन के सौ वर्ष बाद वैशाली में राजा कालाशोक के संरक्षण में रेवत महास्थविर के नेतृत्व में 700 अर्हत् भिक्षुओं के समागम से विनय विपरीत उत्पन्न विवाद का समाधान करके आठ महीनों में दूसरा संगायन सम्पन्न किया गया।

तृतीय संगायन

सम्राट अशोक के काल में अर्थात् भगवान् बुद्ध के निर्वाण प्राप्त हुए 236 वर्ष बाद ईसा पूर्व 247-248 में मौगल्लिपुत्ततिस्स महास्थविर के नेतृत्व में एक हजार भिक्षुओं के समागम में नौ महीने व्यतीत करके तीसरा संगायन संपन्न किया गया। इस संगायन में मिथ्यामत का खण्डन करते हुए बुद्धधर्म के स्वरूप के संग्राहक कथावत्थु को अभिधम्मपिटक के अन्तर्गत रखा गया।

चतुर्थ संगायन

भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण को प्राप्त हुए 454 वर्ष पश्चात्, अर्थात् 29 ईसा पूर्व लंकाद्वीप नरेश वट्टगामिनी के शासनकाल में पाँच सौ अर्हत् भिक्षुओं के समागम में चतुर्थ संगायन आयोजित हुआ। सर्वप्रथम त्रिपिटक को ताड़पत्र में लिपिबद्ध किया गया। इससे पहले गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार त्रिपिटक कण्ठस्थ करके रक्षा करने की परम्परा विद्यमान थी। श्रीलंका में दुर्भिक्ष होने के कारण भिक्षा माँगने में समस्या आने पर आचार्यों ने थैली में बालू भरकर पेट में रखकर भूखे शिष्यों को आवृति कराकर त्रिपिटक की रक्षा की थी। यह देखकर दीर्घकाल तक संरक्षण करने का सोच-विचार कर त्रिपिटक को लिपिबद्ध किया गया। इस संगायन का नाम *'पुस्तिकारोपन संगीति'* से प्रसिद्ध हुआ।

पञ्चम संगायन

उसके बाद बु. सं. 2415, अर्थात् ईस्वी सन् 1871 में बर्मा के माण्डले शहर में राजा मिंडोमि के संरक्षण में 2400 स्थविर भिक्षु इकट्ठे होकर भदन्त जागर महास्थविर की अध्यक्षता में पाँचवाँ संगायन सम्पन्न हुआ। उसी समय त्रिपिटक को शिलापत्र में खुदाया गया। इसीलिए उक्त संगायन का *'शिलाक्षरारोपन संगीति'* नामकरण किया गया है।

षष्ठ संगायन

सन् 1956 में म्यानमार (बर्मा) के रंगून स्थित कम्भाएको महापाषाण गुफा में रेवत महास्थविर की अध्यक्ष्यता में दो हजार पाँच सौ (2500) भिक्षुओं के समागम में षष्ठ संगायन सम्पन्न हुआ। वह संगायन सन् 1954 के प्रारम्भ में शुरू होकर दो साल लगातार सन् 1956, अर्थात् बुद्ध संवत् 2500 में सम्पन्न हुआ था। उसी संगायन में नेत्तिप्पकरण, पेतकोपदेस एवं मिलिन्द-प्रश्न का त्रिपिटक में समावेश किया गया। इसी संगायन को आधार मानकर नालन्दा विश्वविद्यालय से देवनागरी लिपि में सम्पूर्ण त्रिपिटक ग्रन्थ का सम्पादन एवं प्रकाशन किया

गया। इससे पहले तक बुद्धधर्म का अध्ययन करने श्रीलंका, वर्मा, थाईलैण्ड आदि देशों में जाकर वहाँ की भाषा और लिपि को सीखना पड़ता था।

पालि त्रिपिटक को सुरक्षित रखने के लिए थाईलैण्ड के बुद्धमण्डप-विहार में सम्पूर्ण त्रिपिटक को सफेद मार्बल में खुदवाकर 1999, जनवरी 18 में संघराजा तथा थाई युवराज की उपस्थिति में दिव्य एवं भव्य समारोह के मध्य इसे प्रतिष्ठापित किया गया। इस प्रकार शुद्ध और स्वच्छ रूप में वर्तमान समय तक त्रिपिटक का संरक्षण, संवर्द्धन होता आ रहा है। विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी से म्यानमार में सम्पन्न हुए षष्ठ संगायन के आधार पर पालि त्रिपिटक के 45 ग्रन्थों के साथ अट्ठकथा, टीका, अनुटीका को देवनागरी लिपि में सम्पादित कर लगभग 140 ग्रन्थ प्रकाशित किये गये और विभिन्न संघ-संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयो में वितरित भी किये गये हैं।

इसी प्रकार वर्तमान में नेपाल के एक स्थानीय पालि बौद्ध विद्वान् एवं *'वीर-पूर्ण पुस्तक संग्राहालय'* के अध्यक्ष श्री दुण्डबहादुर वज्राचार्यजी[1] के व्यक्तिगत प्रयास तथा स्वयं आर्थिक व्यय उठाकर बुद्धवचन त्रिपिटक के लगभग 45 भागों में सम्पूर्ण पालि त्रिपिटक को नेवारी एवं नेपाली भाषा में प्रकाशित कर दिया है। इस महान् ऐतिहासिक अनुवाद कार्य में श्रद्धेय भिक्षु धर्मगुप्त महास्थविर के साथ अन्य विद्वानों ने सहयोग प्रदान किया। इसी प्रकार आनन्दकुटी विहार, स्वयम्भु के विहाराधिपति स्व. भिक्षु डॉ. अमृतानन्द महास्थविर ने भी नेपाली भाषा में अनुवाद कर प्रकाशित किया है।

त्रिपिटक विभाजन

त्रिपिटक तीन प्रकार से विभाजित है, यथा– विनयपिटक, सुत्तपिटक एवं अभिधम्म-पिटक। यह निम्न प्रकार से है–

तिपिटक (त्रिपिटक)

विनयपिटक	**सुत्तपिटक**	**अभिधम्मपिटक**
1. पाराजिकापालि	1. दीघनिकाय	1. धम्मसङ्गणिपालि

1. श्री वज्राचार्य ने सूचित किया है कि– त्रिपिटक ग्रन्थ के एक प्राचीन ताड़पत्र नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू में भी विद्यमान है, जो कि उक्त अभिलेखालय में संगृहीत डुङ्गुर से विनयपिटक 4 पत्र मिला है, जो कि अभी तक प्राप्त पाण्डुलिपियों में सबसे प्राचीन माना गया। इस बात की पुष्टि विदेशी विद्वान् श्री ओस्कर भि. हेनुवर की 'The Oldest Pali Manuscript (four folios of the Vinaya Pitaka from the National Archives, Kathmandu) नामक पुस्तक में सन् 1991 में पश्चिमी देश से प्रकाशित होने के पश्चात् ही ज्ञात हुआ।

	सुत्तविभंग	2. मज्झिमनिकाय	2. विभङ्गपालि
2. पाचित्तियपालि		3. संयुत्तनिकाय	3. धातुकथापालि
3. महावग्गपालि			4. पुग्गलपञ्ञत्ति
	खन्धक	4. अङ्गुत्तरनिकाय	5. कथावत्थुपालि
4. चुल्लवग्गपालि		5. खुद्दकनिकाय	6. यमकपालि
5. परिवारपालि		1. खुद्दकपाठ	7. पट्ठानपालि
		2. धम्मपद	
		3. उदान	
		4. इतिवृत्तक	
		5. सुत्तनिपात	
		6. विमानवत्थु	
		7. पेतवत्थु	
		8. थेरगाथा	
		9. थेरीगाथा	
		10. जातक	
		11. निद्देस	
		क. महानिद्देस	
		ख. चुलनिद्देस	
		12. पटिसम्भिदामग्ग	
		13. अपदान	
		14. बुद्धवंश	
		15. चरियापिटक	
		16. नेत्ति (नेतिप्पकरण)[1]	
		17. पेटकोपदेस[2]	
		18. मिलिन्दपञ्ह[3]	

1. क्रम संख्या- 16. नेत्ति (नेतिप्पकरण), 17. पेटकोपदेस, 18. मिलिन्दपञ्ह को म्यानमार (बर्मा) में सम्पन्न छठवें ऐतिहासिक संगायन में इन तीनों ग्रन्थों को खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है।

विनयपिटक

विनयपिटक भिक्षु, भिक्षुणी संघ के निर्दिष्ट नियमों का संग्रह है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसमें संघ के क्रमिक विकास सम्बन्धी ऐतिहासिक वृत्तान्तों की आख्यायें हैं। इसमें संघ की व्यवस्था, संघ के विधान, उपसम्पदा-विधि, देशना-विषय, वर्षावास, भोजन, वस्त्र, औषधि सम्बन्धी नियम, संघ के सञ्चालन की प्रक्रिया आदि के विवरणों का आख्यान किया है। विनय को बुद्धशासन का आयु कहा गया है।

विनयपिटक तीन भागों में विभाजित है– 1. सुत्तविभंग, 2. खन्धक 3. परिवार।

सुत्तविभंग में पाराजिका एवं पाचित्तिय दो भाग हैं, तो खन्धक में भी महावग्ग एवं चुल्लवग्ग दो भाग हैं। इस प्रकार विनयपिटक के पाँच अंग हैं–

1. पाराजिका
2. पाचितिय
3. महावग्ग
4. चुल्लवग्ग
5. परिवार।

1. पाराजिका- इस में भिक्षुओं के नहीं कर सकने योग्य 4 प्रकार की पाराजिका, 13 *सङ्घादिसेस*, 2 अनियत, 30 निस्सग्गिय नियमों के विषय में उल्लेख किया गया है।

2. पाचितिय- इस में भिक्षुओं के 227 नियमों में से पाराजिका में उल्लिखित के अलावा शेष नियम, अर्थात् पाचित्तिय आपत्ति वाले 92 शिक्षापद, 4 पटिदेसनी शिक्षापद, 75 सेखिय, 7 अधिकरणसमथ और भिक्षुणियों के द्वारा पालन करने योग्य 311 नियमों का उल्लेख किया गया है। भिक्षुणियों द्वारा पालन किये जाने वाले नियमों में से 8 पाराजिका, 17 संघादिसेस, 30 निस्साग्गिय पाचित्तिय, 116 पाचित्तिय, 8 पटिदेसनीय शिक्षापद, 75 सेखिय तथा 7 अधिकरणसमर्थ हैं।

मुख्यतः पाराजिका एवं पाचितिय में भिक्षु विभंग और भिक्षुणी विभंग विद्यमान हैं।

3. महावग्ग- इसमें भगवान् बुद्ध की जीवनी, विनयविधि; यथा- प्रव्रज्या, उपोसथ, वर्षावास, पवारणा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण शिक्षा का आख्यान है। महावग्ग में दश खण्ड हैं।

4. चुलवग्ग- इसमें संघकर्म, विनय शिक्षापद का क्रमिक विकास, संघ का विधान, छोटे-छोटे नियम-उपनियम, देवदत्त द्वारा किये गये संघभेद, प्रथम और दूसरे संगायन का ऐतिहासिक वर्णन आदि है। इसमें 12 खण्ड हैं।

5. परिवार- परिवार में सुत्त विभङ्ग एवं खन्धक में वर्णित शिक्षापद सम्बन्धी प्रश्नोत्तर विस्तृत रूप में विद्यमान हैं। इसमें 21 परिच्छेद है।

सुत्तपिटक

त्रिपिटक में संगृहीत बुद्धवचन बुद्धकाल के धर्म एवं विनय कहे जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने जो सुत्त और अभिधम्म का उपदेश दिया है, उसे धम्म और विनय सम्बन्धी उपदेशों को विनय कहा जाता है।

1. दीघनिकाय

सुत्तपिटक के प्रथम निकाय दीघनिकाय में चौंतीस बड़े-बड़े वर्गों में सूत्र संगृहीत हैं। ये सूत्र तीन वर्ग में विभाजित हैं– (1) शीलस्कन्धवर्ग- 13 सूत्र, (2) महावर्ग- 10 सूत्र एवं (3) पाथिकवर्ग- 11 सूत्र।

उदाहरण के लिए शीलस्कन्ध-वर्ग का पहला सूत्र ब्रह्मजालसुत्त में बुद्धकालीन 62 प्रकार के विभिन्न दृष्टिजाल एवं धर्मजाल विस्तृत विवरण है । महासीहनादसुत्त और उदम्बरिकसुत्त में मिथ्या तपस्या को दर्शाया है। कूटदन्तसुत्त में पशुबलि देने की निरर्थकता को यज्ञ में दिखाता है, तो केवट्टसुत्त में चमत्कार प्रदर्शन की निःसारता दिखायी गयी है। इसी प्रकार जालियसुत्त और पोट्ठपादसुत्त में आत्मवाद की समीक्षा करने के साथ ही निर्वाणमार्ग के लिए निस्सार की गयी बातों का उल्लेख है। मनुष्य की श्रेष्ठता आचरण में निर्भर रहना, तथ्य एवं जन्मजात जातिवाद की आलोचना को अम्बट्ठसुत्त, सोणदण्डसुत्त में स्पष्ट किया गया है।

महावर्ग का महापदानसुत्त में शाक्यमुनि बुद्ध से भी आगे के पाँच बुद्धों का वर्णन है, महानिदानसुत्त में प्रतीत्यसमुत्पाद का विश्लेषण किया गया है। उसी प्रकार, दूसरे सूत्र महापरि-निब्बाणसुत्त में बुद्ध की अन्तिम यात्रा के ऊपर सजीव, सरस एवं करुण गाथा है। इसी प्रकार सतिपट्ठानसुत्त में चार प्रकार के सतिपट्ठानध्यान सम्बन्धी उपदेश विद्यमान हैं । पायासि-राजञ्ञसुत्त में परलोकदिग्दर्शन सम्बन्धी आख्यान विद्यमान हैं।

पाथिक-वर्ग के लक्खणसुत्त में महापुरुष के बत्तीस प्रकार के लक्षण से सम्बन्धित वर्णन मिलता है। सिंगालसुत्त में गृहीविनय सम्बन्धी उपदेश संगृहीत हैं।

दीघनिकाय बुद्धकालीन भूगोल एवं इतिहास, समाज और संस्कार, धर्म और दर्शन का संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन, शील, समाधि प्रज्ञा का अवबोध व निर्वाण के साक्षात्कार का अमूल्य ग्रन्थ रत्न है।

2. मज्झिमनिकाय

मज्झिमनिकाय, दीघनिकाय से लघु और खुद्दकनिकाय से बृहद्, अर्थात् मध्य, 152 सूत्रों का संग्रह है। यह सूत्र मूलपण्णासक, मज्झिमपण्णासक एवं उपरिपण्णासक के साथ तीन खण्ड एवं 15 वर्ग में विभाजित है।

मज्झिमनिकाय भगवान् बुद्ध के जन्म, महाभिनिष्क्रमण तपस्या, बुद्धत्व प्राप्ति, धर्मचक्रप्रवर्तन का मूल प्रामाणिक स्रोत है। इसमें अनात्मवाद और अनासक्तिवाद, चित्तमल नष्ट करने वाले संवर के उपदेश, चार स्मृतिप्रस्थान के प्रत्यवक्षण का महत्त्व, भूत और भविष्य से महत्त्वपूर्ण स्थिति वर्तमान है आदि का उपदेश हैं। साथ में, इसमें आर्यसत्य, अष्टाङ्गमार्ग, ध्यान एवं निर्वाण विषयक स्पष्ट व्याख्या मिलती है।

विद्वानों का मत है कि संपूर्ण त्रिपिटक एवं बौद्ध साहित्य यदि नष्ट हो जाये तो भी मज्झिमनिकाय एक मात्र ऐसा ग्रंथ है, जिसकी सहायता से बुद्ध के व्यक्तित्व, उनके दर्शन और अन्य शिक्षा के तत्त्व एवं सिद्धान्त को समझ सकते हैं।

3. संयुत्तनिकाय

संयुत्तनिकाय त्रिपिटक का तीसरा महत्त्वपूर्ण निकाय है। इसमें बृहद्, मध्यम एवं लघु सभी प्रकार के सूत्र संगृहीत होने के कारण इसे 'संयुत्तनिकाय' कहा गया है। परम्परा के अनुसार इसमें 7762 सूत्र हैं, जिसे 56 संयुत्त रूप में संगृहीत किया गया है। संयुत्तनिकाय पाँच भागों में विभाजित किया गया है। यह सगाथावर्ग, निदानवर्ग, खन्धवर्ग, सलायतनवर्ग और महावग्ग के साथ पाँच खण्डों में विभाजित है। सगाथावर्ग के सूत्र गाथा के रूप में है। निदान वर्ग में प्रतीत्यसमुत्पाद का वर्णन, खन्धवर्ग में पञ्चस्कन्ध की व्याख्या, सलायतनवर्ग में आयतन की विवेचना और महावग्ग में धर्म सम्बन्धी विभिन्न तत्त्व एवं ध्यानभावना सम्बन्धी सूत्र है।

संयुत्तनिकाय में बुद्ध की महामानवीय विशेषता एवं तथागत की प्रज्ञा और महाकरुणा की विशिष्टता का वर्णन हैं। सारिपुत्र महास्थविर के परिनिर्वाण की अवस्था में भगवान् बुद्ध के संवेजन-शब्द और अत्तदीप, अत्तसरण उपदेश जैसे प्रसंग उल्लेखनीय हैं। बुद्ध ने कहा था कि आर्य-अष्टांगिकमार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद एवं विपश्यनादि उपदेश अनेक उपमा, शब्द और शैली में व्यक्त करके रखा गया है। इसमें धर्मसेनापति भिक्षु सारिपुत्र को एकान्त सौमनस्य ध्यान में इन्द्रिय संयम, भिक्षु महामौद्गल्यायन के आर्यमौन, भिक्षु महाकाश्यप की सन्तुष्टवृत्ति, भिक्षु अनुरुद्ध की योग अनुभूति, भिक्षु वंगीश का कामवासना के दुष्परिणाम की पर्यवेक्षणा,

अन्धवन में रूप वेदनादि का अनित्य, दुःख और अनात्म का साक्षात्कार कर सकते हैं। राहुल का अर्हत्व के पुण्य प्रसङ्ग के साथ गौतमी, उत्पलवर्णा और वजिरादि श्राविकाओं के बुद्धशासन में प्रवेश से लेकर मार-विजय की कीर्तिकथा आदि वर्णित हैं।

4. अंगुत्तरनिकाय

अंगत्तुरनिकाय सुत्तपिटक का चौथा महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें परम्परागत रूप में 9557 सूत्र हैं। इसे 169 वर्ग में विभाजित किया गया है। इस प्रकार के सूत्रों में वर्णित विषय संख्या क्रम के अनुसार एक से लेकर एकादशक निपात तक है। इस प्रकार क्रम संख्या अङ्गणेत्तर रूप में रखी जाने से इसे अंगुत्तरनिकाय कहा गया है।

एकनिपात के एक सूत्र में उदाहरण के लिए–"भिक्षुओं ! मैने ऐसा कोई भी रूप नहीं देखा है, जिससे पुरुष के चित्त को वश में करता हो, वह है स्त्री का रूप। भिक्षुओं ! स्त्री का रूप से पुरुष के चित्त को वश में लेता है।" --- उसी प्रकार, पुरुष का रूप स्त्री के चित्त को वशवर्ती करता है। उसी प्रकार तिक्निपात में तीन मद– यौवन मद, आरोग्य मद एवं जीवन मद हैं। चतुक्कनिपात में चतुआर्यसत्य, चार सामान्य फल जैसे संख्या में चार-चार वाले उपदेश संगृहीत है। उसी प्रकार, अट्ठक निपात में आर्य-अष्टांगिकमार्ग, आठ आरण्य वस्तु, आठ अभिभू आयतन, आठ विमोक्ष जैसी संख्या में आठ-आठ प्रकार के आठ-आठ अंग वाले बुद्ध के उपदेश संगृहीत हैं। वैसे ही, एकादशकनिपात में निर्वाण लाभ के ग्यारह उपाय जैसे अंग और संख्या में ग्यारह-ग्यारह तत्त्व वाले उपदेश संकलित हैं। अंगुत्तनिकाय के तिक् निपात में आया केसमुत्तिसुत्त, जिसे कालामसूत्र भी कहते हैं। इसमें भगवान् बुद्ध द्वारा दी गयी बौद्धिक स्वतन्त्रता का उपदेश है। इसमें स्वतन्त्र चिन्तन को मानसिक पराधीनता से छुटकारा पाने का पथ दिखाया गया है।

"कालामओं ! तुम लोग किसी भी बात को परम्परा से सुनते हुए, प्रचारित होती हुयी आयी है, तो उसे न माने, यदि वह हमारे धर्म ग्रन्थ के अनुकूल है, तो भी न माने तर्क सम्मत है, तो भी न मानो, न्याय (शास्त्र) के साथ मिलता है, तो भी न मानो, बातें अच्छी हैं, तो भी न मानो, उपदेशक व्यक्ति के व्यक्तित्व आकर्षक है, तो भी न मानो, न तो उपदेशक व्यक्ति हमारे पूज्य गुरु श्रमण हैं, तो भी मानना चाहिए। ---"

5. खुद्दकनिकाय

खुद्दकनिकाय सुत्तपिटक का पाँचवाँ निकाय है। इसमें अठारह छोटे-बड़े ग्रन्थ हैं। वह है– खुद्दकपाठ, धम्मपद, उदान, इतिवुत्तक, सुत्तनिपात, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा,

थेरीगाथा, जातक, निद्देश, पटिसम्भिदामग्ग, अपदान, बुद्धवंश, चरियापिटक, नेति, पेटकोपदेस एवं मिलिन्दप्रश्न।

1. खुद्दकपाठ– खुद्दकपाठ में तिसरण, दससिक्खापद, द्वत्तिंसाकार, कुमारपञ्ह, मंगलसुत्त, रतनसुत्त, तिरोकुड्डसुत, निधिकण्डसुत्त, मेत्तसुत्त आदि नौ सूत्र हैं।

2. धम्मपद– विश्व में यह अत्यन्त लोकप्रिय एवं अधिकांश भाषा में अनूदित ग्रन्थ है। धम्मपद में 26 वर्ग और 423 गाथाएँ हैं। धम्मपद त्रिपिटक के सुत्तपिटक के अन्तर्गत खुद्दकनिकाय के 18 छोटे-छोटे ग्रन्थों में से एक होने के बावजूद भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। धम्मपद को प्रत्येक गाथा सरल एवं मर्मस्पर्शी है।

इसमें भगवान् बुद्ध के बुद्धत्व प्राप्ति के समय से महापरिनिर्वाण पर्यन्त समय-समय पर दिए गये उपदेश गाथा के रूप में विद्यमान हैं।

3. उदान– भगवान् बुद्ध द्वारा समय-समय पर दिये गये उपदेश ही प्रीति वाक्य हैं, उद्गार सम्बन्धी उपदेशों के संग्रह ही उदान हैं। इसमें आठ वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में प्रायः दश सूत्र हैं।

4. इतिवृत्तक– इतिवृत्तक का शाब्दिक अर्थ है– 'इस प्रकार कहा है'। इतिवृत्तक में 112 सूत्र चार निपात में विभाजित किये गये हैं, जो अंगुत्तरनिकाय में संख्यात्मक क्रम के अनुसार समाविष्ट हैं। उदाहरण के लिए प्रथम परिच्छेद में है– "एक धर्म को छोड़कर झूठ बोलने और परलोक का विश्वास नहीं करने योग्य इस लोक में नहीं किया जा सकने वाला कोई ऐसा पाप नहीं।"

5. सुत्तनिपात– सुत्तनिपात भाषा और छन्द की दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन शैली में बुद्ध की जीवनी के प्रसंग वाला ग्रन्थ है। अशोक के अभिलेख में विद्यमान प्रसंग इस ग्रन्थ से उद्धृत किया गया है, इस तथ्य द्वारा इसका महत्त्व स्वतः स्पष्ट होता है। सुत्तनिपात में पाँच वर्ग और 72 सूत्र हैं।

6. विमानवत्थु– विमानवत्थु में सात वर्ग, पंचासी विमानकथा और 1289 गाथाएँ हैं। विशेषतः इसमें दान, शील आदि पालन करके मृत्यु पश्चात् स्वर्ग प्राप्त करने वाले देव-देवियों का उल्लेख किया गया है।

7. पेतवत्थु– पेतवत्थु में चार वर्ग हैं, जिसमें 51 प्रेतों की कथा विद्यमान है। इसमें दुष्कृत्य के फल से प्रेत-योनि में उत्पत्ति और वहाँ से मुक्त होने का उपाय सहित बतलाया है।

8. थेरगाथा– इसमें अर्हत् भिक्षुओं द्वारा स्वस्फूर्त अनुभवों को व्यक्त करने वाली गाथाओं का संग्रह है। इसमें 21 निपात में विभक्त 264 थेर व 1283 गाथाएँ संगृहीत हैं।

9. थेरीगाथा– इसमें अर्हत् थेरियों द्वारा स्वयं द्वारा अर्हत्व की प्राप्ति के पश्चात् अपनी-अपनी बातों, अनुभव आदि व्यक्त की गयी गाथाओं का संकलन मिलता है। इसमें 16 निपात में विभाजित 73 थेरियों की 527 गाथाएँ हैं।

10. जातक– जातक में भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म से सम्बन्धी 447 कथाएँ हैं।

11. निद्देस– इसके महानिद्देस और चूलनिद्देस दो भाग हैं। निद्देस का अर्थ है- व्याख्या। निद्देस में सुत्तनिपात का खग्गविसाणसुत्त और परायणवर्ग के ऊपर व्याख्यान उपलब्ध होता है। महानिद्देस ग्रन्थ में अट्ठकवर्ग का भाष्य है, तो चूलनिद्देस में लगभग 118 सूत्र हैं, उनमें से पारायणवर्ग में 18 सूत्र और खग्गविसाणसूत्र में 41 सूत्रों के एक-एक शब्द की विस्तृत व्याख्या की गयी है।

12. पटिसम्भिदामग्ग– इसमें महावर्ग, युगनद्धवर्ग और प्रज्ञावर्ग तीन वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में 10 परिच्छेद हैं। प्रतिसम्भिदाज्ञान प्रभेद के अर्थ में प्रयुक्त है। यह पटिसम्भिदामग्ग अर्थ, धर्म, निरुक्ति और प्रतिभान– इन चार प्रतिसम्भिदाओं में दक्षता प्राप्त करने के लिए तथा संसार के लिए दुःख से छुटकारा प्राप्त करने के लिए अध्ययन के लिए उपयुक्त ग्रन्थ है।

13. अपदान– अपदान शब्द का अर्थ है- जीवनचरित्र। बुद्धापदान, पच्चेकबुद्धा-पदान, थेरापदान और थेरीअपदान चार भागों में विभाजित 7619 गाथाएँ इसमें संगृहीत हैं।

14. बुद्धवंश– बुद्ध के परम्परागत इतिहास से युक्त बुद्धवंश में दो परिच्छेद हैं- बुद्ध-प्रकीर्णक-काण्ड एवं धातु-भाजनीय कथा। बुद्ध-प्रकीर्णक-काण्ड में अतीत बुद्धों में दीपंकर बुद्ध से लेकर काश्यप बुद्ध तक 24 बुद्धों के बारे में वर्णन मिलता है, तो धातुभाजनीय कथा में कुशीनगर में भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण के बाद धातुविभाजन एवं प्रतिष्ठान होने के बारे में विस्तृत वर्णन दिया गया है।

15. चरियापिटक– इसमें भगवान् के बुद्ध होने से पहले बोधिसत्त्व के रूप में दान, शील, नैष्क्रम्य, अधिष्ठान, सत्य, मैत्री, उपेक्षादि पारमिता को पूर्ण करने के लिए अपने जीवन समेत उत्सर्ग के विवरण मिलते हैं।

16. नेतिप्पकरण– भगवान् बुद्ध के अस्सी प्रमुख महाश्रावकों में से आयुष्मान् महाकात्यायन ने इसे देशना दिया था। इसीलिए प्रथम संगीति काल में ही यह खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत संकलित था। नेतिप्पकरण के प्रारम्भ में संग्रह क्रम से कहा गया है कि- **'महाकच्चायेन निदिट्ठा'** अर्थात् महाकाच्चायन द्वारा निर्दिष्ट है। ग्रन्थ के अन्त में भी ऐसा कहा है–

इतने में नेति समाप्त हुआ, जिसमें आयुष्मान् महाकात्यायन ने बताया, जो भगवान् द्वारा अनुमोदित है और जिसका संगीति (प्रथम संगीति) में संगायन हुआ था। जैसे मज्झिम-निकाय के अन्तर्गत श्रावकभाषित मधुपिण्डितसुत्त, माधुरसुत्त, महाकच्चायन-भद्देकरत-सुत्त, उद्देस-विभंग आदि बुद्धवचन को समान मान्यता दी गयी है, नेत्ति वा नेतिप्पकरण का खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत समावेश कर छठवीं संगायन में दिया गया है।

17. पेटकोपदेस– इस ग्रन्थ का श्रेय भी आयुष्मान् महाकात्यायन को जाता है। इस ग्रन्थ में विशेषतः चार आर्यसत्य के आधार पर विषय-विन्यास प्रधान रहा है। इसे नेत्ति ग्रन्थ को पूरक के रूप में भी लेते हैं। **पेटकोपदेसे महाकच्चायनेन भासित पठमभूमि** कहने के वाक्य से भी महाकच्चायन नाम आने के कारण उन दोनों ग्रन्थों के भिक्षु महाकात्यायन के होने की मान्यता दी गयी है।

18. मिलिन्दपञ्हपालि– यह ग्रन्थ खुद्दकनिकाय का अन्तिम ग्रन्थ है, जो विश्व की विभिन्न भाषाओं में प्राप्त होता है। थेरवादी परम्परा में यह ग्रन्थ तर्कशास्त्र के रूप में प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में राजा मिलिन्द एवं नागसेन का तार्किक संवाद है।

यह ग्रन्थ साहित्यिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका वर्णन डॉ. भरतसिंह उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ 'पालि साहित्य का इतिहास' में विस्तृत रूप से किया है। [क्रमशः]

सहायक-ग्रन्थ :

1. पालि साहित्य का इतिहास- डॉ. भरतसिंह उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 12, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद, सन् 2000
2. पालि साहित्य का इतिहास- राहुल सांकृत्यायन, उत्तर प्रदेश शासन, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, 1973
3. चुल्लवग्गपालि- स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारती, पञ्चशील, एस 10/6 ए- 2ए, मकबूल आलम रोड, वाराणसी-2
4. विनय पिटक- महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, सम्यक् प्रकाशन, 32/2, क्लब रोड, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली- 63
5. दीघ निकाय-राहुल सांकृत्यायन, भिक्षु जगदीश काश्यप, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ-22600
6. मिलिन्दपञ्हपालि- सं. स्वामी द्वारिका शास्त्री, बौद्ध भारती, बौद्धभारती ग्रन्थ माला- 13, वाराणसी- 1, 1979

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9455695530

उपासिका विशाखा की संक्षिप्त जीवनी

—डॉ. छेरिङ् डोलकर—

नमो बुद्धाय।

भगवान् शाक्यमुनि बुद्ध अपना राज-प्रासाद, परिवार, मोह-माया आदि सभी को त्यागकर प्रव्रजित हुए थे। उन्होंने छह वर्षों तक कठिन तपस्या करके बुद्धत्व प्राप्त किया। तत्पश्चात् बुद्ध ने सभी सत्त्वों के हित के लिए स्थान-स्थान पर भ्रमण किया और अपने द्वारा प्राप्त किये गये ज्ञान को धर्म-देशना के रूप में जन-जन तक पहुँचाया। भगवान् बुद्ध ने धर्म का उपदेश देते हुए सबसे अधिक समय श्रावस्ती में बिताया। वहाँ के असंख्य लोग भगवान् बुद्ध के शिष्य बनें। उनमें भिक्षु-भिक्षुणियाँ, राजा, मन्त्री, उपासक, उपासिका आदि अनेक लोग थे, जिन्होंने बुद्ध-शासन के लिए काम किये। उनमें श्रावस्ती की उपासिका विशाखा की जीवनी हृदय को छू लेने वाली है, जिसकी संक्षिप्त जीवनी, मूलसर्वास्तिवाद-विनयवस्तु[1] पर आधारित है।

विशाखा चम्पा[2] निवासी बलमित्र[3] की पुत्री थी। विशाखा एक ऐसी लड़की थी, जो बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ आचार-व्यवहार में दक्ष और बुद्धिमती होकर सभी गुणों से सम्पन्न थी। विशाखा बड़ी होकर श्रावस्ती के अन्तर्गत कोसल देश के राजा प्रसेनजित के मंत्री मृगार श्रेष्ठी के सबसे छोटे पुत्र विशाख[4] से विवाह करने के पश्चात् श्रावस्ती में बस गयी थी।

मृगार श्रेष्ठी दम्पति के सात पुत्र हुए। कुछ वर्ष के बाद उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। उनके छह पुत्र विवाह के पश्चात् अपनी-अपनी पत्नियों के साथ अलग-अलग घरों में रहने लगे। इस कारण मृगार श्रेष्ठी की सेवा ठीक से नहीं हो रही थी और वह दुःखी रहता था। उसकी इस स्थिति को उसके मित्र ब्राह्मण ने देखा और उससे कहा– तुम अपने सबसे छोटे पुत्र विशाख(=पुण्यवर्धन) के लिए एक अच्छी-सी बहू देख लो, जो तुम्हारा घर ठीक से चला

---

1. (क)– मूलसर्वास्तिवाद-विनयवस्तु, प्रथमः खण्डः, चीवरवस्तु, पृ. 198–215, बौद्ध-संस्कृत-ग्रन्थावली-16, मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन प्रकाशितम्, ऐशवीयाब्दः 1967.
   (ख)– སྡེ། བཀའ། འདུལ་བ། ག །འདུལ་བ་གཞི། ཤོག་གྲངས་༡༠༥བ༥–༡༣༩བ༧ (=भोट-संस्करण)
2. साकेत, आदर्श बौद्ध महिलाएँ, लेखिका धनवन्ती आर्य, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, ई. 2010.
3. धनञ्जय, वही।
4. पुण्यवर्धन, वही।

सके और तुम्हारी सेवा भी अच्छी तरह से हो सके। मृगार श्रेष्ठी ने यह काम अपने मित्र ब्राह्मण को ही सौंप दिया। ब्राह्मण मित्र, मृगार के पुत्र के लिए वधू खोजते हुए चम्पा नगर पहुँच जाता है। वहाँ उसने गृहपति बलमित्र की सुपुत्री विशाखा को अपनी सहेलियों के साथ देखा। वह व्यवहार में दूसरी लड़कियों से भिन्न था। वह सभी में श्रेष्ठतम और तेज बुद्धि वाली थी। उसका पीछा करते हुए वह उसके घर पहुँचा, तो पता चलता है कि वह लड़की भी मृगार श्रेष्ठी के समान जाति वाली है। ब्राह्मण मित्र, गृहपति बलमित्र(=धनञ्जय) से उनकी पुत्री विशाखा को अपने मित्र मृगार श्रेष्ठी के पुत्र के लिए माँगता है और उसे देने के लिए मना लेता है। उसके बाद वह ब्राह्मण वापस श्रावस्ती आकर अपने मित्र मृगार श्रेष्ठी को उन सबके विषय में जानकारी देता है, फिर दोनों परिवार के मध्य बच्चों के विवाह की तिथि निश्चित करता है।

इस तरह, विशाखा का विशाख(=पुण्यवर्धन) के साथ विवाह हुआ। जब उसकी विदाई हो रही थी, उस समय विशाखा अपनी माँ की आँख में आँसू और उसे दुःखी देखकर अपनी माँ से कहती है– माँ ! तुम दूसरी जगह पैदा हुई और यहाँ बस गयी। इसी तरह मेरा जन्म भी यहाँ हुआ है और अब मैं दूसरी जगह बसने जा रही हूँ, क्योंकि जहाँ संयोग है, वहाँ वियोग होना निश्चित है। यही जीवन का नियम है। फिर उसकी माँ, विशाखा को शिक्षा देती है कि अब तुम किसी दूसरे के घर में बहू बनकर जा रही हो, तो तुम अपने सास-ससुर के घर में शिष्टाचार से रहना, जैसे– सास-ससुर को नमन करना, पति की परिचर्या करना, हमेशा घर को साफ रखना और घर में लेप लगाना, पूजार्चना के समय श्वेत-वस्त्र का परिधारण करना, लोगों के अपशब्द को ग्रहण करना और दूसरों को अपशब्द नहीं बोलना, गोपनीय वचन को गुप्त रखना, अपना आसन नीचे रखना, भूख लगने पर ही खाना तथा घर-परिवार के लोगों को खिलाने के बाद ही भोजन करना, रात के समय घर का सभी कार्य सम्पन्न करने के बाद ही सोना, निःश्रेयस के लिए दान आदि कुशल कर्म को करना तथा अकुशल कर्म को नहीं करना। इस प्रकार विशाखा की माँ ने उसे दस शिक्षाएँ[1] दीं और कहा– विशाखा !

---

1. द्र०– पुत्रि नित्यं त्वया सूर्याचन्द्रमसौ नमस्यौ। अग्निः परिचर्तव्यः। आदर्शो निर्मादयितव्यः। शुक्लानि वासांसि प्रावरितव्यानि। ग्रहीतव्यं न दातव्यम्। वाणी रक्षितव्या। न कस्यचिदुत्थायासनं दातव्यम्। मिष्ठं भोक्तव्यम्। सुखं स्वप्तव्यम्। निःश्रेणी बद्धव्येति। –चीवरवस्तु, मूलसर्वास्तिवाद-विनयवस्तु, प्रथमः खण्डः, पृ. 200, बौद्ध-संस्कृत-ग्रन्थावली-16, मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन प्रकाशितम्, ऐशवीयाब्दः 1967.
टिप्पणी– आदर्श बौद्ध महिलाएँ और मूलसर्वास्तिवाद-विनयवस्तु, इन दोनों ग्रन्थों में दिये गये दस शिक्षाओं में कहीं-कहीं अन्तर है।

तुमने पूर्वजन्म में दश-कुशल कर्म किये हैं। इसलिए इस जन्म में मनुष्य-जीवन प्राप्त हुआ है। इस जन्म में भी तुम्हें दान आदि पुण्य-कर्मों को करना चाहिए। पाप (=अकुशल) कर्म को नहीं करना चाहिए। यही स्वर्ग अर्थात् मोक्ष तक जाने की सीढ़ी है। जब विशाखा अपने घर से विदा होकर बारातियों और अपने लोगों के साथ श्रावस्ती जा रही थी, उस समय विशाखा ने अपने ससुर की जान कई बार बचायी और लोगों ने उसकी कुशाग्र बुद्धि को देखा। मृगार श्रेष्ठी ने भी अपनी बहू विशाखा की प्रशंसा की। विशाखा ससुराल में पहुँचकर माँ के उपदेश के अनुसार ससुराल के सभी लोगों और सेवक-सेविकाओं के साथ अच्छा व्यवहार करती हुई घर का सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करती थी। इसके कारण वह घर की मुखिया भी जल्दी बन गयी।

विशाखा द्वारा श्रावस्ती के राजा और मन्त्रीगण की समस्याओं को सुलझाने के भी कई किस्से मिलते हैं। जैसे एक बार कोसल राजा प्रसेनजित अस्वस्थ हो गये। राजवैद्य के अनुसार राजा के रोग को ठीक करने के लिए औषधि स्वरूप विशेष प्रकार का शालि-धान चाहिए था, जो केवल विशाखा के पास था। विशाखा ने उस शालि-धान को स्वर्ण-पात्र में भरकर राजा को भेंट किया और उसी से राजा की जान बच गई है। इस कारण राजा, विशाखा को अपनी बहिन मानता था।

फिर एक बार राजा को किसी व्यक्ति ने माँ-बच्चे सहित दो जोड़ी घोड़ी भेंट किये। राजा और मन्त्रीगण को घोड़ी के बच्चे और माँ का पता नहीं चल रहा था। उस दिन मृगार श्रेष्ठी घर पहुँचकर उस घोड़ी के बारे में विशाखा से चर्चा करते हैं, तो उस पर विशाखा अपना उपाय बताती है, जिससे मन्त्रियों का काम सफल हो जाता है।

एक बार एक व्यक्ति अपना कम्बल नदी के तट पर रखकर स्नान करने चला जाता है, तभी कोई दूसरा व्यक्ति पहुँचकर नदी के तट पर पहले व्यक्ति द्वारा रखे उस कम्बल को अपने सिर पर बाँधकर पानी में स्नान करने जाता है। पहला व्यक्ति स्नान करने के बाद पानी से बाहर निकलकर देखता है कि उसका कम्बल दूसरे व्यक्ति ने अपने सिर पर बाँधा हुआ है। उसके बाद उन दोनों के बीच उस कम्बल के लिए विवाद होता है और दोनों राजा के समीप पहुँचते हैं। राजा इस विवाद को सुलझाने के लिए मन्त्रीगण को सौंपते हैं। दिन बीत गया, विवाद सुलझ नहीं सका और मन्त्रीगण अपने-अपने घर लौट जाते हैं। मृगार श्रेष्ठी ने दिन की घटना-क्रम को पूर्ववत् विशाखा को सुनाया, तो विशाखा ने कहा– इसमें क्या है ? आप उन दोनों से कहिये कि उस कम्बल को आधा-आधा काटकर ले जाओ। ऐसा कहने पर जिसका वह कम्बल है, उसके मुख से अवश्य निकलेगा कि मेरा कम्बल क्यों फाड़ रहे हो ?

जिसका कम्बल नहीं है, वह सोचेगा कि मुझे आधा कम्बल तो मिल ही रहा है, और क्या चाहिए ? दूसरे दिन मृगार श्रेष्ठी और अन्य मन्त्रियों ने विशाखा द्वारा बताये गये उपाय का प्रयोगकर उस समस्या को सुलझाया, जो सही निर्णय था।

एक बार समुद्री व्यापारियों ने राजा को चन्दन की लकड़ी भेंट की। उस चन्दन के शीर्षभाग और निचले भाग को राजा को जानना चाहता था, लेकिन जान नहीं पा रहा था। तब राजा मन्त्रियों से पूछता है, फिर भी जान नहीं पाता है। इसके बारे में मृगार श्रेष्ठी शाम को अपने घर पहुँचकर पूर्व की भाँति विशाखा के साथ चर्चा करता है। इस विषय पर भी विशाखा अपना उपाय बताती है। दूसरे दिन मृगार श्रेष्ठी, विशाखा के उस उपाय को राजा को बताता है, तो राजा कहता है, यह चम्पा की विशाखा बुद्धिमती है।

एक समय किसी गाँव में एक गृहपति और उसकी पत्नी रहते थे। उनके विवाह के कुछ वर्ष बाद भी सन्तान नहीं हुई। अपने कुल को आगे बढ़ाने की इच्छा से वह गृहपति दूसरा विवाह कर लेता है। उसकी छोटी पत्नी से एक पुत्र का जन्म होता है। बड़ी पत्नी ईर्ष्यावश छोटी पत्नी और बच्चे को तंग करती रहती थी। तब छोटी पत्नी स्वयं और बच्चे की सुरक्षा तथा बच्चे का पालन-पोषण ठीक से हो, इसके लिए अपने बच्चे को अपनी सौत को दे देती है। परन्तु बाद में गृहपति की मृत्यु हो जाती है। उस समय जिनके पास पुत्र होता था, उसी को धन-सम्पत्ति का अधिकार होता था। इस कारण मृतक गृहपति की पत्नियों में घर, धन-सम्पत्ति के अधिकार और बच्चे के लिए विवाद होता है। एक दिन उन दोनों का विवाद राजा के पास पहुँचता है और दोनों पुत्र की माँ होने का दावा करती हैं। राजा इस समस्या को सुलझाने के लिए मन्त्रियों को आदेश देता है। फिर भी समस्या का हल नहीं हो पाता है और दिन बीत जाता है। जब शाम को मृगार श्रेष्ठी घर पहुँचकर पहले की तरह दिन में हुई पूरी घटना के बारे में विशाखा से चर्चा करता है, तो इस पर विशाखा कहती है– इस समस्या को सुलझाने में क्या कठिनाई है ? आप उन दोनों से सीधे कहिये कि इस बच्चे की माँ कौन है ? हम निर्णय नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए तुम दोनों इस बच्चे का एक-एक हाथ पकड़कर अपनी-अपनी तरफ खींचो, जो बलशाली होगा, बच्चा उसका ही होगा। ऐसा करने पर जो बच्चे की असली माँ होगी, वह रोती हुई बच्चे की पीड़ा को सहन नहीं कर पायेगी और हाथ छोड़ देगी। वही उस बच्चे की असली माँ होगी। इसी तरह दण्ड का निर्णय कर सकेंगे। मृगार श्रेष्ठी विशाखा के इस उपाय को राजा और मन्त्रियों के समक्ष रखता है। इस तरह करने से निर्णय सही साबित हुआ। इस पर राजा कहते हैं, विशाखा बुद्धिमती है।

एक समय मृगार श्रेष्ठी रोग-ग्रस्त हो जाता है। वैद्य आकर उसे एक दिन कुछ औषधि, दूसरे दिन कुछ और औषधि देता है। इस कारण मृगार श्रेष्ठी का स्वास्थ्य एक दिन ठीक रहता है और दूसरे दिन ठीक नहीं रहता है। ससुर को ऐसा क्यों हो रहा है ? विशाखा ने इसका कारण जानने की कोशिश की। ससुर को जिस औषधि से स्वास्थ्य लाभ मिलता है, वैद्य से उसी औषधि को देने को कहती है और उससे ससुर का रोग ठीक हो जाता है। मृगार श्रेष्ठी ने सोचा कि पूर्व में उनका रोग एक दिन ठीक हो रहा था और दूसरे दिन ठीक नहीं हो रहा था। इसका कारण विशाखा से पूछकर जान लिया, तो इस पर मृगार श्रेष्ठी ने कहा कि विशाखा तुम बड़ी बुद्धिमती हो।

इसी प्रकार फिर एक समय मृगार श्रेष्ठी गुप्त रोग से ग्रस्त हो जाता है। रोग के उपचार के लिए वह विशाखा की सेवा लेने में असमर्थ होता था, तब विशाखा श्रीवर्धन नामक गृहपति की पुत्री से अपने ससुर मृगार श्रेष्ठी का विवाह कराती है, ताकि उनकी सेवा हो सके। श्रीवर्धन अपनी पुत्री का विवाह मृगार श्रेष्ठी से करने के लिए इसलिए सहमत हुआ, क्योंकि पूर्व में विशाखा ने उसे राजा के दण्ड से बचाया था।

मृगार श्रेष्ठी अपनी पुत्रवधू विशाखा को सम्मान देने के लिए माँ के रूप में सम्बोधन कर सकता है कि नहीं ? इस सम्बन्ध में, वह भगवान् बुद्ध से पूछता है। इस पर भगवान् बुद्ध कहते हैं कि यदि विशाखा, माता के पाँच गुणों[1] से युक्त है, तो कर सकते हो। तब से विशाखा का नाम मृगार-माता पड़ा। मृगार श्रेष्ठी ने इसके विषय में कोसल नरेश से कहा, तो राजा ने भी कहा– विशाखा ने मेरा भी उपकार किया है, इसलिए मैं भी उसे बहिन कहकर सम्बोधित करूँगा, ऐसी उसने घोषणा की।

विशाखा को राजा अपनी बहिन मानता था और विशाखा के सभी पुत्र तेजस्वी, बलशाली, गुणों से युक्त थे। लेकिन एक राजपुरोहित विशाखा के पुत्रों के साथ अपना व्यक्तिगत द्वेष होने के कारण उनसे बदला लेने के लिए सोचता है। इसलिए वह राजपुरोहित ईर्ष्यावश राजा के मन में ऐसा विकार पैदा करता है कि विशाखा के पुत्रों से राज-सिंहासन के लिए खतरा होने की सम्भावना हो जाती है। तत्पश्चात् पुरोहित और राजा दोनों गुप्त रूप से विशाखा के पुत्रों को मारने की साजिश बनाते हैं। उसी साजिश के तहत राजा ने एक दिन विशाखा के पुत्रों को भोजन के लिए निमन्त्रण दिया। उन सभी को विष से युक्त भोजन

---

1. ग्लानोपस्थानं दारा च जीवितस्य धनस्य च
प्रज्ञया उपसंहर्षी पञ्चैता मातरः स्मृताः ॥ –चीवरवस्तु, मूल०-विनयवस्तु, प्रथमः खण्डः, पृ. 206

खिलाकर बेहोशी अवस्था में ही मार देता है। जिस दिन विशाखा के पुत्रों को राजा निमन्त्रण देकर बुलाता है, उसी दिन विशाखा अपने घर भगवान् बुद्ध एवं भिक्षुसंघ सहित सभी को दिन के भोजन के लिए बुलाती है और जैसे ही वे भोजन कर लेते हैं, उसी समय विशाखा के घर उसके पुत्रों के सिर धड़ से कटे कपड़ों में लपेटकर टोकरी में डाले हुए पहुँचता है। इस पर विशाखा सोचती है कि राजा ने उसके पुत्रों के लिए कपड़े भेजे होंगे। इन कपड़ों में से कुछ भगवान् के चरणों में चढ़ाने के लिए सोचती है। जैसे ही उस बन्द टोकरी को खोलने जाती है, तो भगवान् बुद्ध, विशाखा को उसे खोलने से मना कर देते हैं, क्योंकि भगवान् बुद्ध जान गये थे कि जब तक विशाखा अनित्यता का सक्षात्कार नहीं कर लेती, तब तक वह अपने पुत्रों को मरा हुआ नहीं देख सकती। इसलिए भगवान् बुद्ध, विशाखा के चित्ताशय और अनुशय की प्रकृति को जानकर अनित्यता-धर्म की देशना देते हैं। तदनुसार विशाखा सत्य का साक्षात्कार कर लेती है। तत्पश्चात् विशाखा उस पोटली को खोलती है और उसे देखकर वह कहती है– भगवान् ! सभी संस्कार इस प्रकार अनित्य हैं।[1]

यदि कोसल नरेश प्रसेनजित ने विशाखा के पुत्रों को नहीं मारा होता, तो कोसल की राज्य-सुरक्षा में उन पुत्रों का योगदान रहता। इस पर भिक्षुसंघ भगवान् बुद्ध से पूछते हैं कि विशाखा और उनके पुत्रों ने ऐसा कौन-सा कर्म किया, जिसके परिणाम स्वरूप ये इस जीवन में भोग रहे हैं ? इसके उत्तर में भगवान् बुद्ध, विशाखा और उसके पुत्रों के पूर्व जन्मों के विषय में विस्तार से बताते हैं।

फिर एक दिन विशाखा भगवान् बुद्ध से अनुमति लेती है कि वह भिक्षुसंघ के लिए आठ महादान देना चाहती है, जैसे—

1. आगन्तुक लोगों को दान।
2. यात्रा करने वाले को दान।
3. रोगियों को दान।
4. रोगी की सेवा करने वाले को दान।
5. (उन सभी के लिए) यवागू (=जौ के माड़ की कांजी) का भोज।
6. (रोगियों को) नित्य औषधि का दान।
7. भिक्षुओं के लिए ग्रीष्मकाल में पहनने के लिए वस्त्र और

---

1. भगवन् एवमनित्याः सर्वसंस्कारा इति। –चीवरवस्तु, मूल०-विनयवस्तु, प्रथमः खण्डः, पृ. 208.

8. भिक्षुणियों के लिए स्नान-वस्त्र[1] का दान।[2]

इस प्रकार विशाखा ने बौद्ध भिक्षुसंघ के रहने के लिए श्रावस्ती में पूर्वाराम विहार भी बनवाये। विशाखा, भगवान् बुद्ध, भिक्षुसंघ और भिक्षुणी-संघ को समय-समय पर दान अर्पित करते हुए, उनसे अमृत स्वरूप धर्म-उपदेश को ग्रहण करती थी। इसलिए भगवान् बुद्ध ने विशाखा को गृहस्थ उपासिकाओं में श्रेष्ठ-दानी माना है।

भवतु सर्वमङ्गलम्।

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9005041749

1. ऋतुमती-वस्त्र, आदर्श बौद्ध महिलाएँ।
2. इच्छाम्यहं भदन्त अष्टौ महादानानि प्रज्ञापयितुम्। आगन्तुके दानं गमिके दानं ग्लाने दानं ग्लानोपस्थायिके दानं ध्रुवं यवागुं ध्रुवं भैषज्यं भिक्षूणां वर्षाशटीचीवरं भिक्षुणीनां चोदकशाटिकामिति। –चीवरवस्तु, मूल०-विनयवस्तु, प्रथमः खण्डः, पृ. 214.

भारत के शोध क्षितिज विस्तार का उपक्रम होगा नेशनल रिसर्च फाउंडेशन

—डॉ. सुनीता चंद्रा—

किसी भी राष्ट्र का विकास मानवीय विकास, विशेष रूप से युवा पीढ़ी के साथ सीधे तौर पर जुड़ा होता है। मानवीय विकास के लिए यह आवश्यक है कि मानवीय जीवन के हर पहलू में विज्ञान, तकनीकी और शोध कार्य अहम् भूमिका निभाये, विशेष रूप से आने वाली पीढ़ी के लिए ज्ञान आधारित वातावरण बने और उच्च शिक्षा के स्तर पर शोध और अनुसन्धान के लिए अनुकूल शोध-पारिस्थिकी तंत्र विकसित हो। इस दृष्टि से भारत के महत्वाकांक्षी विकास एजेंडे को मूर्त रूप देने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान का एक सशक्त पारिस्थितिकी तंत्र विकसित करने, अंतर-अनुशासनात्मक अनुसंधान को बढ़ावा देने, देश की वैज्ञानिक साक्षरता का विस्तार एवं भारत में ज्ञान-विज्ञान-अनुसंधान का व्यापक क्षितिज तैयार करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (पैरा 17.9) में नेशनल रिसर्च फाउंडेशन के गठन का प्रस्ताव दिया गया, जिसे साकार करने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संसद में नेशनल रिसर्च फाउंडेशन बिल, 2023 के लिए हरी झंडी देना भारत की उच्च शिक्षा में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन के प्रति प्रतिबद्धता का सूचक है। यदि हम भारत के अतीत पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि भारतीय वैज्ञानिक विमर्श अनादि काल से समृद्ध रहा है। यदि हम बहुत पीछे न भी जायं तो हम देख सकते हैं कि नालंदा एवं तक्षशिला जैसे भारत के विश्वविद्यालय शोध-कार्य एवं ज्ञान-सृजन के क्षेत्र में विश्व-पटल पर अपनी छाप रखते थे, जिसकी प्रमाणिकता व्हेनसांग एवं फाह्यान आदि के उद्धरणों से सहज रूप में देखी जा सकती है। वैज्ञानिक सिद्धांतो से सनातन परम्परा हमेशा पोषित रही है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ही सदैव सामाजिक विमर्श का वाहक बना रहा, जो भारत की शोध एवं वैज्ञानिक मनोवृत्ति की आधारभूमि का परिचायक है। आज भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में शिक्षा ग्रहण करने वाले एक बड़े समूह का भारत में होना जहाँ एक ओर गर्व का विषय है, वहीं विकास के तमाम प्रयासों के बावजूद वैश्विक स्तर के अनुसन्धान इत्यादि में श्रेष्ठ प्रदर्शन न कर पाना चिंता का विषय है, जिसका बड़ा कारण शोध के लिए समुचित धन का अभाव, शोध संस्थाओं के बीच समन्वय का अभाव एवं रणनीतिक अक्षमता को देखा गया है। यद्यपि शोध के लिए समुचित वातावरण के निर्माण का प्रयास जरुर हुआ है, किन्तु विश्वविद्यालयों तथा निजी और सरकारी क्षेत्र की प्रयोगशालाओं में सकल खर्च बहुत कम है। भारत के विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थाओं में अनुसन्धान मद

के लिए अपेक्षित धनराशि के आवंटन के न होने का मुद्दा बड़े लम्बे समय से अकादमिक जगत द्वारा उठाया जाता रहा है। भारत अनुसंधान और विकास पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 0.7 प्रतिशत खर्च करता है, जो कुल जी.डी.पी. का 1% भी नहीं है और कई अन्य देशों की तुलना में बेहद कम है। इसकी तुलना में, अमेरिका 2.83 प्रतिशत, चीन 2.14 प्रतिशत और इज़राइल 4.9 प्रतिशत खर्च करता है। शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों एवं वैज्ञानिकों द्वारा यह सीमा 2% तक बढ़ाने की मांग न जाने कब से चली आ रही है, किन्तु वैचारिक धरातल से यथार्थ के धरातल पर यह अभी तक नहीं पहुँच पायी। इतना ही नहीं कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय मंचों पर भी यह मुद्दा चर्चा से गायब ही रहता है। एक बात और देखी गयी है कि देश में अनुसंधान और उच्च शिक्षा के बीच एक कृत्रिम अलगाव सा रहा है, शोध केवल शोध केन्द्रित संस्थाओं एवं कुछ श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों की सीमाओं में ही सिमटे रह गए हैं। यह भी देखा गया है कि विश्वविद्यालयों एवं शैक्षिक संथाओं में किए गए अनुसंधान और उद्योगों द्वारा आवश्यक अनुसंधान के बीच एक बेमेल की स्थिति है। इसके बावजूद कि आज भारत में ऐसे बहुत से विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा संस्थान हैं, जहाँ पर शोध कार्य बहुत अच्छे एवं प्रभावी तरीके से हो रहा है, फिर भी हमारे विश्वविद्यालय एवं शैक्षिक संस्थान विश्व के अन्य विश्वविद्यालयों की तुलना में बहुत पीछे हैं। हमारा शोध प्रदर्शन कई महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर आशा के अनुरूप नहीं है। गुणवत्ता के अंतर्राष्ट्रीय मापदंड क्यू.एस. रैंकिंग में भी हमारा प्रदर्शन उत्साहवर्धक नहीं है । यद्यपि इस वर्ष थोड़ी सुकून देने वाली बात यह है कि 147वीं रैंक हासिल कर आई.आई.टी.-बॉम्बे दुनिया के शीर्ष 150 विश्वविद्यालयों में शामिल हो गया है और 07 नए विश्वविद्यालयों की एंट्री हुई है। इस वर्ष क्यू.एस. वर्ल्ड यूनिवर्सिटी रैंकिंग में भारत के 41 विश्वविद्यालयों को जगह मिली है, जबकि पिछले वर्ष यह संख्या 35 थी। यह भारत में शोध के प्रति बदलते नजरिए एवं प्रतिबद्धता का द्योतक जरूर माना जा सकता है । सी.एस. आई.आर. का एक हालिया सर्वे बताता है कि हर साल लगभग 3000 अनुसन्धान/शोध पत्र तैयार होते हैं, लेकिन इनमें कोई नया विचार नहीं होता है। भारत में प्रति 10 लाख आबादी पर शोधकर्ताओं की संख्या केवल 253 है, जबकि अमेरिका में यह करीब 4,200 और इजराइल में 8,000 से अधिक है। डी.एस.टी. के आंकड़ों से पता चलता है कि भारतीय शोधकर्ताओं ने 2020 में दुनिया भर में विज्ञान और इंजीनियरिंग पत्रिकाओं में 149,213 लेख प्रकाशित किए, जो एक दशक पहले की तुलना में लगभग ढाई गुना अधिक है। हालांकि, यह कुल प्रकाशन का केवल 5 प्रतिशत का योगदान है, जबकि चीनी शोधकर्ताओं ने 23 प्रतिशत और अमेरिकी शोधकर्ताओं ने 15.5 प्रतिशत का योगदान दिया। 2021 में, भारत में कुल 61,573 पेटेंट दायर किए गए जिसके साथ यह वैश्विक स्तर पर छठे सबसे बड़े पेटेंट फाइलर

के रूप में अपनी स्थिति हासिल करने में समर्थ हुआ, किन्तु यदि अन्य देशों से तुलना करें तब पता चलता है कि यह आंकड़ा चीन में दायर लगभग 16 लाख पेटेंट और उसी वर्ष के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका में दायर लगभग छह लाख पेटेंट की तुलना में कम है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा जारी की गयी एक रिपोर्ट, जो कि वर्ष 2001 से लेकर वर्ष 2020 तक हुए भारतीय अनुसन्धान उत्पादन पर आधारित है, के अनुसार सबसे ज्यादा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.), वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धान परिषद् (सी.एस. आई.आर.), केंद्रीय विश्वविद्यालय, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ टेक्नोलोजी आदि केन्द्रीय वित्त पोषित संस्थानों ने पिछले दो दशकों में भारत के कुल अनुसन्धान उत्पादन में आधे से अधिक का योगदान दिया है। इससे यह बात स्पस्ट होती है कि यदि वित्त एवं अनुकूल पारिस्थिकी तंत्र पर बल दिया जाय तो भारत अनुसन्धान के क्षेत्र में वैश्विक स्तर पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा सकता है। इन सबके बीच राष्ट्रीय शिक्षा नीति की भावना के अनुरूप नीचे से शीर्ष स्तर तक अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए, उच्च शिक्षण संस्थानों में अनुसंधान को वित्त पोषित करने और मार्गदर्शन देने के उद्देश्य से नेशनल रिसर्च फाउन्डेशन (एन.आर.एफ.) की स्थापना का प्रयास, भारत में शोध एवं नवाचार के माध्यम से उसे विश्व फलक पर ज्ञान महाशक्ति बनने की दिशा में मील का पत्थर साबित हो सकता है। नेशनल रिसर्च फाउन्डेशन के वित्त पोषण और रणनीतिक मार्गदर्शन से भारत की उच्च शिक्षा में गुणवत्ता वाले अनुसन्धान परिणामों में अपेक्षित मात्रतात्मक एवं गुणात्मक वृद्धि की उम्मीद जगी है। इसी के साथ अपेक्षा है कि नेशनल रिसर्च फाउन्डेशन समन्वयकारी संस्थान के रूप में उद्योग जगत, शिक्षा जगत एवं सरकार के बीच साझेदारी का प्रतिमान विकसित करने में भी सहायक होगा। इसके परिणामस्वरूप सरकारी और निजी दोनों स्रोतों से देश में वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए धन एवं संसाधन उपलब्ध कराने का अवसर प्राप्त होगा, साथ ही विश्वविद्यालयों एवं शैक्षिक संस्थाओं में किए गए अनुसंधान और उद्योगों द्वारा आवश्यक अनुसंधान के बीच एक समन्वय भी स्थापित होगा, जो शोध को समाजोपयोगी बनाने, ज्ञान-विज्ञान के अद्यतन क्षेत्रों में उसका विस्तार करने में सहायक होगा। भारतीय अकादमिक जगत में नेशनल रिसर्च फाउन्डेशन को भारत के शोध क्षितिज के विस्तार के उपक्रम के रूप में देखा जा रहा है।

कुलसचिव
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9453048616

योगनिद्रा एक चिकित्सा

—डॉ. अरुण कुमार राय—

आज विश्व की जनसंख्या लगभग 8 बिलियन है, परन्तु यदि हम यह सुनिश्चित करना चाहें कि सम्पूर्ण रूप से कितने लोग स्वस्थ हैं तो शायद 5 से 10 प्रतिशत ही लोग सम्पूर्ण स्वास्थ्य के मानक पर खरे उतर पाएंगे। सम्पूर्ण स्वास्थ्य का अर्थ होता है शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर अपना सम्पूर्ण योगदान समाज को देना। आज देखा जाय तो 10 से 11 प्रतिशत लोग केवल अवसाद से ही ग्रसित हैं। विश्व के आँकड़ों को सरसरी तौर पर देखें तो मनोशारीरिक रोगों (मधुमेह, रक्तचाप, गठिया, पेट में घाव) का आँकड़ा भारत तथा विश्व में बहुत तेजी से बढ़ रहा है।

यदि कारण तलाशने की कोशिश करेंगे तो भी सही कारण का आँकड़ा उपलब्ध नहीं मिलेगा, क्योंकि आज विश्व सिर्फ एक बाजार है जहाँ सबकुछ बिकता है, आँकड़ा भी वही उपलब्ध कराया जायेगा, जो बाजार को अच्छा लगे। वर्तमान समय में मानव प्रचार के हाथ का खिलौना है, जो पहले रोग खरीदता है फिर उसकी औषधि, पुनः उस औषध के दुष्प्रभाव के परिणाम का उत्पाद।

हमें अब तो जागना चाहिए। सबसे पहले यह सोचना है कि हमारे लिए क्या सर्वोतम है। पहले चिकित्सक रोगी का निदान कर उसके लिए औषधि का निर्माण करता था, उसके लिए कौन सा अनुपात उचित होगा उसका निर्देश देता था, तब वह चमत्कार करती थी। उदाहारण स्वरुप रामचरित मानस में लक्ष्मण शक्ति का उल्लेख है जिसमे सुशेन वैद्य निदान के पश्चात् हिमालय में पाई जाने वाली जड़ी बूटी को खिलने का निर्देश देते हैं, जिसके चमत्कार से सभी परिचित हैं। अर्थात् हमें इस बात का विशेष ध्यान देना होगा कि हम कितने रक्तचाप, रक्त की मात्रा, क्या पचता है आदि का स्वयं आकलन करें न कि प्रचार आधारित सामन्य आँकड़ा को आधार बनाकर स्वयं को रोगी घोषित करें। मेरा कतई यह नहीं मानना है कि आधुनिक चिकित्सा पद्धति की गुणवत्ता में संदेह है, लेकिन यह भी सत्य है कि उसको बेचने हेतु समस्त मानवीय गुणों को विलुप्त कर दिया जाता है।

इस सन्दर्भ में योग एक ऐसी विधा है जिसे आप स्वयं के अनुसार स्वयं के लिए करते हैं, जिससे यह एक निरापद चिकित्सा पद्धति के रूप में स्वीकार है।

योगनिद्रा एक अति प्राचीन पद्धति है जिसका प्रयोग पूर्व काल में साधक करते थे। इस पद्धति की चर्चा मार्कंडेय पुराण, विष्णु पुराण एवं देवी भागवत में किया गया है। जनमानस हेतु इसे सर्वप्रथम स्वर्गीय सत्यानन्द सरस्वती जी ने प्रचारित-प्रसारित किया।

योगनिद्रा : योगासन अभ्यास शरीर में ऊर्जा का स्तर बढ़ाते हैं। योगनिद्रा यौगिक या मानसिक नींद है जो ध्यान का एक सक्रिय स्वरूप है। यह जगाने एवं सोने के चरणों के मध्य एक मध्यवर्ती चेतना की अवस्था है, योगनिद्रा का अभ्यास करते समय दूसरे को लग सकता है कि अभ्यासी सो रहा है, परन्तु वह जागरूकता के गहरे स्तर पर क्रियाशील रहता है। योगनिद्रा वास्तव में ऊर्जा को संरक्षित एवं समेकित करती है, जिससे शरीर व मन को विश्राम मिलता है। योगनिद्रा आपको प्राणायाम और ध्यान के लिए तैयार करती है। अतः यह आवश्यक हैं कि योगासन के पश्चात् आप उचित समय योगनिद्रा के लिए रखें।

अर्थात् योगनिद्रा एक आध्यात्मिक नींद है। यह वह नींद है, जिसमें जागते हुए सोना है। यह सोने व जागने के बीच की स्थिति है। प्रारंभ में यह किसी योग विशेषज्ञ से सीखकर करें तो अधिक लाभ होगा। योगनिद्रा द्वारा शरीर व मस्तिष्क स्वस्थ रहते हैं। यह नींद की कमी को भी पूरा कर देती है। इससे थकान, तनाव व अवसाद भी दूर हो जाता है। राजयोग में भी इसे प्रत्याहार कहा जाता है, जब मन इन्द्रियों से विमुख हो जाता है।

प्रत्याहार की सफलता एकाग्रता लाती है। योगनिद्रा में सोना नहीं है। योगनिद्रा द्वारा मनुष्य से अच्छे काम भी कराए जा सकते हैं। बुरी आदतें भी इससे छूट जाती हैं। योगनिद्रा का संकल्प प्रयोग पशुओं पर भी किया जा सकता है। खिलाड़ी भी मैदान में खेलों में विजय प्राप्त करने के लिए योगनिद्रा लेते हैं। योगनिद्रा 10 से 45 मिनट तक की जा सकती है।

प्रारम्भिक अभ्यासी हेतु योगनिद्रा की विधि –

अभ्यास के पूर्व पेट हल्का रखें। योगासन एवं योगनिद्रा के पूर्व भर पेट भोजन नहीं करना चाहिए। योगनिद्रा प्रारंभ कर रहे हैं तो ध्यानपूर्वक खुली जगह का चयन किया जाए। यदि किसी बंद कमरे में करते हैं तो उसके दरवाजे, खिड़की खुले रहने चाहिए।

योगनिद्रा कैसे करे :

1. पीठ के बल शवासन में लेट जाएँ। नेत्र बंद कर विश्रामवस्था में आयें। कुछ गहरी श्वास लें और छोड़ें। ध्यान रहे साधारण श्वास लेना है, अर्थात् जो स्वाभाविक श्वास है उस पर ध्यान दें।

2. अब आप जिस जगह पर लेटे हैं उसे अपनी काल्पनिक या मन की आखों देखें यथा चादर के रंग आदि। आप के हाथ, पाँव, पेट, गर्दन, आँखें सब धीरे-धीरे शिथिल हो रहे हैं। अपने आप से कहें कि मैं योगनिद्रा का अभ्यास करने जा रहा हूँ। योगनिद्रा में अच्छे कार्यों के लिए संकल्प लिया जाता है। बुरी आदतें छुड़ाने के लिए भी संकल्प ले सकते हैं। योगनिद्रा में किया गया संकल्प बहुत ही शक्तिशाली होता है। अब लेटे-लेटे पांच बार पूरी साँस लें व छोड़ें। इसमें पेट व छाती चलेगी। पेट ऊपर-नीचे होगा। अब अपने इष्टदेव का ध्यान करें और मन में संकल्प तीन बार बोलें।
3. अब अपने मन को शरीर के विभिन्न अंगों (76 अंगों) पर ले जाइए और उन्हें शिथिल व तनाव रहित होने का निर्देश दें। अपना ध्यान अपने दाहिने पंजे पर ले जाएँ। कुछ सेकेंड तक यहाँ अपना ध्यान बनाये रखें। पंजों को विश्रामावस्था में लाएँ। इसके पश्चात अपना ध्यान क्रमशः दाहिने घुटने, दाहिने जंघा तथा दाहिने कूल्हे पर ले जाएँ। इसके पश्चात् अपने पूरे दाहिने पैर के प्रति सचेत हो जाएँ।
4. यही प्रक्रिया बाएं पैर में दोहराएँ। साथ ही सहज साँस लें व छोड़ें और ऐसा महसूस करें कि समुद्र की शुद्ध वायु आपके शरीर में आ रही है व गंदी वायु बाहर जा रही है।
5. अब अपना ध्यान शरीर के सभी भागों जननांग, पेट, नाभि और वक्ष में ले जाएँ।
6. अपना ध्यान दाहिने कंधे, भुजा, हथेली, उंगलियो में ले जाएँ। अब हृदय के यहाँ देखिए हृदय की धड़कन सामान्य हो गई है। ठुड्डी, गर्दन, होठ, गाल, नाक, आँख, कान, कपाल सभी शिथिल हो गए हैं। अंदर ही अंदर देखिए आप तनाव रहित हो रहे हैं। सिर से पाँव तक आप शिथिल हो गए हैं। ऑक्सीजन अंदर आ रही है। कार्बन डाई-ऑक्साइड बाहर जा रही है। आपके शरीर की बीमारी बाहर जा रही है। अपने विचारों को तटस्थ होकर देखते जाइए। यही प्रक्रिया बाये कंधे, भुजा, हथेली, गर्दन एवं चेहरे और सिर के शीर्ष तक ले जाएँ।
7. एक गहरी श्वास लें। अपने शरीर में तरंगो का अनुभव करें। कल्पना करें कि धरती माता ने आपके शरीर को गोद में उठाया हुआ है। कुछ मिनट इसी स्थिति में आराम करें।
8. अपने मन को दोनों भौहों के बीच में लाएँ व योगनिद्रा समाप्त करने के पहले अपने आराध्य का ध्यान कर व अपने संकल्प को तीन बार अंदर ही अंदर दोहराएँ। लेटे ही लेटे बंद आँखों में तीन बार ओऽम् का उच्चारण करिए। फिर दोनों हथेलियों को आपस

में रगड़कर गरम करके आँखों पर लगाएँ व पाँच बार सहज साँस लीजिए। अब अंदर ही अंदर देखिए, आपका शरीर, मन व मस्तिष्क तनाव रहित हो गया है।

9. अपने शरीर एवं आस-पास के वातावरण के प्रति सचेत हो जाएँ। दाहिने करवट ले के कुछ समय लेटे रहें। बाईं नासिका से श्वास बाहर छोड़ें जिससे शरीर में ठंडेपन का अहसास होगा।
10. आराम से धीरे-धीरे उठकर बैठें। जब आप आराम महसूस करें तो धीरे धीरे नेत्र खोलें।

योगनिद्रा के लाभ

- योगनिद्रा के पश्चात् शरीर को आराम मिलता है।
- शरीर के तापमान को सामान्य बनाने में मदद करता है। योगनिद्रा (गहन विश्राम) के प्रभाव से तंत्रिका तंत्र को सक्रिय बनाता है।
- योगनिद्रा का प्रयोग रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग, सिरदर्द, तनाव, पेट में घाव, दमे की बीमारी, गर्दन दर्द, कमर दर्द, घुटनों, जोड़ों का दर्द, साइटिका, अनिद्रा, अवसाद और अन्य मनोवैज्ञानिक बीमारियों, स्त्री रोग में प्रसवकाल की पीड़ा में बहुत ही लाभदायक है।
- यह मनोआध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति है, जो किसी भी धर्म से सम्बंधित नहीं परन्तु यह आत्मा या चेतना की वास्तविक शक्ति को जागृत कर मानव को अपने शरीर को साक्षी भाव से देखने में सक्षम बनाता है।

सोवा-रिग्पा संकाय
के. उ..ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 9452922660

सूचना समाज और मानव का भविष्य

—राजेश कुमार मिश्र—

समाचार पत्रों, टेलीविजन, इण्टरनेट आदि माध्यमों से हम अक्सर सूचना या ज्ञान के बारे में पढ़ते-सुनते हैं कि आने वाली सदी सूचना सदी या ज्ञान सदी के रुप में जानी जाएगी। वस्तुतः ये नए शब्द नहीं हैं, पश्चिमी देशों में सूचना और संचार तकनीकी के बढ़ते आविष्कारों और उनके अनुप्रयोग ने सूचना या ज्ञान समाज की अवधारणा को जन्म दिया है। एक ऐसा मानव-समाज जहाँ सूचनाओं का उपयोग, उत्पादन, वितरण, आदान-प्रदान और एकीकरण एक महत्वपूर्ण गतिविधि हो, उसे सूचना समाज कहा जा सकता है। किन्तु ध्यान रहे यह किसी सूचना एवं संचार तकनीकी सक्षम समाज में ही हो सकता है, अतः सूचना समाज की पहली शर्त तकनीकी की उपलब्धता और नागरिकों में इसके प्रयोग की कुशलता है जिन्हें के. मॉसबर्गर "जो नियमित रूप से और प्रभावी ढंग से इंटरनेट का उपयोग करते हैं" के रूप में कहते हैं। इस समाज के प्रमुख लक्षण के रुप में वस्तुओं के भौतिक उत्पादन की अपेक्षा मानव जीवन के हर क्षेत्र में सेवा क्षेत्र के विस्तार को देखा जाता है।

आज हमारा देश भी सूचना तकनीकी आधारित सेवाओं के सृजन और उपयोग में विश्व के अग्रणी देशों में सम्मिलित है और दिन-प्रतिदिन इनका प्रयोग बढ़ता जा रहा है। यह भी सत्य है कि इस तकनीकी विकास ने मानव समाज में डिजिटल डिवाइड नाम के एक और विभाजन का सृजन भी हुआ है।

सूचना एवं संचार तकनीकी पर आधारित सूचना या ज्ञान समाज में सूचनाएं हमें किस तरह से प्रभावित करती हैं, इसे हाल ही में बालासोर (उड़ीसा) में हुई रेल दुर्घटना के उदाहरण से समझ सकते हैं। अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार इस भयावह दुर्घटना का कारण ट्रेन को आगे जाने के लिए गलत सिग्नल मिलना ही माना जा रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि पूरी तरह से सूचना संचार तकनीकी पर आधारित सिग्नल प्रणाली से किसी भी कारणवश जारी एक निर्देश जिसके कारण लाल की जगह हरी बत्ती का जलना और परिणाम सैकड़ों लोगों का जान गँवाना और हजारों करोड़ का नुकसान। इसी तरह ट्विटर, व्हाट्सएप, फेसबुक आदि सोशल मीडिया साइट्स पर प्रसारित भ्रामक सूचनाओं के कारण उत्पन्न कानून-व्यवस्था की समस्यायें और दंगाग्रस्त समाज में सबसे पहले इण्टरनेट सर्विसेज का ब्लाक किया जाना, आज के समाज का सच हैं। किन्तु साथ ही केरल बाढ़

विभीषिका 2018 में राहत अभियान से लोगों को जोड़ने के लिए प्रयुक्त व्हाट्सएप, कोविड काल में सोशल मीडिया के सकारात्मक प्रभाव, कोविड वैक्सीन के निर्माण में विश्व भर के वैज्ञानिकों के मध्य तकनीकी हस्तान्तरण के लिए सूचना एवं संचार तकनीकी के सदुपयोग और योगदान को हम कैसे भूल सकते हैं? इन उदाहरणों के साथ ही जीवन के हर क्षेत्र में सूचना एवं संचार तकनीकी पर आधारित प्रणालियों के कारण प्राप्त त्वरित संवाद और तत्काल निर्णय लेने की क्षमता ने तो जैसे मानव सभ्यता को पंख ही प्रदान कर दिए हैं। सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रभाव छोड़ने वाली सूचनाएं इस युग की प्रमुख शक्ति या संसाधन है।

वस्तुतः अपने आविर्भाव काल से लेकर कुछ साल पहले तक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास में संलग्न संस्थान आधारभूत संरचनाओं जैसे स्टोरेज, प्रोसेसिंग स्पीड, नेटवर्क स्पीड आदि के विकास पर कार्य कर रहे थे, जो कि क्लाउड कम्प्यूटिंग और 6-जी जैसी अनेक प्रणालियों के विकास से असीमित क्षमता प्राप्त कर चुके हैं और अब हम इन बेहतरीन आधारभूत संरचनाओं पर आधारित सेवाओं के युग में प्रवेश कर चुके हैं और अब इस तकनीकी संरचना पर विकसित होने वाले एप्लीकेशन्स हमारी सोच से आगे निकलने के लिए तत्पर हैं। इसका पहला उदाहरण वेब 2.0 है यानि कि इण्टरएक्टिव या संवादी वेब। यह हमें संवाद का स्थान देनेवाला और हमारी बातें (सूचनाएं) संग्रहित करने वाला वेब है। इसमें सभी सोशल मीडिया साइट्स, गूगल, विकीज और ऐसी ही अनेक अन्य सेवाएं समाहित हैं। इस संवादी वेब प्रणाली ने प्रत्येक प्रयोगकर्ता को इण्टरनेट डेटा के विकास में योगदान देने का अवसर देकर प्रतिदिन असीमित डेटा के उत्पादन और उपभोग का तंत्र विकसित कर दिया है।

सूचना संचार प्रौद्योगिकी और मानव तथा मशीन निर्मित असीमित डेटा के मणिकांचन संयोग को सूचना क्रांति भी कहा जाता है, जिसके फलस्वरूप उद्भूत कृत्रिम बुद्धिमत्ता और जीन तकनीकी मानव सभ्यता का स्वरूप बदलने की संभावनाओं से युक्त तकनीकी विकास है। सीखने और बोलने वाली मशीनें और यथावांछित जीन परिवर्तन करके उपभोग्य जीवों के निर्माण की इन विधाओं का मानव समाज किस तरह उपयोग या दुरुपयोग करेगा यह तो भविष्य के गर्भ में है किंतु संपूर्ण विश्व में बाजार के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए यह तो नहीं ही प्रतीत होता कि इस विलक्षण तकनीकी का उपयोग केवल मानव कल्याण के लिए ही होगा और कोई निरंकुश शासक, समाज या बाजार इनका दुरुपयोग नहीं करेगा।

मुक्त बाजार की व्यवस्था से उत्पन्न मुक्तता हमें कितना मुक्त करेगी या बाजार का कितना गुलाम बनाएगी, यह तो अभी से महसूस किया जा सकता है। सप्ताह में एक दिन कुछ समय के लिए जरूरत के सामान की अपने उत्पादों से अदला-बदली के लिए लगने वाला बाजार आज हमारे न चाहते हुए भी 24 घंटे 365 दिन लगातार हमारे साथ है ।

हमारी हर गतिविधि का आर्थिक मूल्यांकन कर हमारी जरूरतों, विलासिताओं को उद्दीप्त कर अपने जाल में फंसाने के लिए सतत् कार्यरत बाजार इस तकनीकी का इस्तेमाल किसी न किसी रूप में करना प्रारंभ कर चुका है और यह बढ़ता ही जा रहा है। प्राचीन मानव सभ्यता के स्वरूप को जिस तरह से आग और पहिए के आविष्कार ने आमूल चूल परिवर्तित किया था, उसी तरह आज ये युग में सूचना एवं संचार तकनीकी का विकास मानव समाज के स्वरूप को पुनः आमूल चूल परिवर्तित करने की दिशा में अग्रसर है ।

बाजार, उग्रवादी सोच, सत्ता प्रतिष्ठानों की प्रतिस्पर्धा इनका किस तरह प्रयोग करेगी यह हम सोच भी नहीं सकते। कृत्रिम बुद्धिमत्ता को समझने के लिए हमें मानव मन के निर्माण की प्रक्रिया को समझना होगा। अबोध बालक को जब हम सिखाना शुरू करते हैं तो वह केवल वही नहीं सीखता जो हम सिखाते हैं। कुछ बड़ा होते ही आसपास के परिवेश से वह स्वतः ही सीखने लगता है और इस तरह मनुष्य के चेतन मन का निर्माण होता है ।

ठीक उसी तरह वेब 2.0 के विकास के साथ ही कृत्रिम बुद्धिमत्ता का आविर्भाव हुआ है। इसे गूगल के विभिन्न सेवाओं के विकास के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। हम जितना ही इनका उपयोग करते हैं यह उतना ही सक्षम होती जाती है यानी कि हमसे ही इनपुट इंफॉर्मेशन लेकर यह सभी सेवाएं दिन प्रतिदिन बलवती हो रही हैं। आज हमारी निजी से निजी सूचनाएं विभिन्न डेटाबेस और सर्विसेज में जमा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि आज गूगल हमको हमसे अधिक जानता है। इन्हीं तकनीकी संरचनाओं से एक्सपर्ट सिस्टम और आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस का विकास हो रहा है। हाल ही में देखने में आया Chatbot या Chatgpt AI एप्लीकेशन का एक सर्वसुलभ उदाहरण है। ध्यान रहे कि यह सब जन सामान्य को दिखाई देने वाले उदाहरण, सील्ड प्रयोग-शालाओं में जारी अनुप्रयोगों का एक बहुत छोटा हिस्सा हैं। संभवत इन्हीं प्रयोगों की आगामी भयावहता को समझकर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के जनक कहे जाने वाले ज्योफ्री हिंटन ने गूगल से हाल ही में स्तीफा दे दिया।

आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस (AI) एप्लीकेशन के दूरगामी गंभीर खतरों को नजर-अंदाज भी कर दें तो भी निकट भविष्य में यह तकनीकी कार्यालय सहायक, चालक, प्रूफरीडर, अनुवादक, रिटेल सर्विस मैनेजर, सेल्स पर्सन, अकाउंटेण्ट, सुरक्षाकर्मी, सर्जिकल असिस्टेंट, लीगस असिस्टेंट आदि अनेक सेवा क्षेत्रों के लिए चुनौती पेश कर रहे हैं।

सूचना युग को परिभाषित करते हुए हार्वर्ड विश्वविद्यालय की प्रोफेसर शुशाना जुबौफ ने अपनी पुस्तक 'द एज ऑफ सर्विलांस कैपिटिलिज्म' में सूचना युग के पूंजीवाद की एक नई व्याख्या करते हुए लिखती हैं कि मार्क्स मानते थे कि पूंजीवाद मानव श्रम का शोषण कर उसे संपत्ति में बदल देता है। प्रो. शुशाना पूँजीवाद की इस बहुप्रचलित परिभाषा को आधार बनाते हुए कहती हैं कि "आधुनिक संचार युग का पूंजीवाद लोगों के डाटा और उनकी निजता का शोषण कर उसे संपत्ति में बदलता है"। यह वह परिभाषा है जिससे हम गूगल, फेसबुक, सोशल मीडिया जैसी कंपनियों को बहुत आसानी से समझ सकते हैं। इन कंपनियों ने बिना कोई बड़ा भौतिक निवेश किए और बिना किसी भौतिक उत्पादन के बहुत ही कम समय में जितनी संपत्ति अर्जित की है वह हमारे आपके द्वारा दिए डाटा के आधार पर ही हुई है। सूचना तकनीकी की व्यापकता का अंदाजा आप इस तरह से भी लगा सकते हैं कि राष्ट्रों को इसके नियमन और सदुपयोग के लिए नए कानून बनाने पड़ रहे हैं। अपने देश में भी डेटा प्रोटेक्सन बिल लाने की तैयारी चल रही है। हाल ही में भारत सरकार ने हिंसा, घृणा और मानसिक परिवर्तन करने वाले ऑनलाइन खेलों पर पाबन्दी लगाई है। कुछ वर्ष पहले इसी तरह पबजी खेल पर पाबन्दी लगाई गई थी। तत्काल ऑनलाइन कर्ज देने वाले चाइनीज एप अभी भी एक बड़ी समस्या बने हुए हैं।

सूचना तकनीकी की हर नई छलांग उत्साह भी पैदा करती है और चिंता भी लाती है डीपमाइंड और ओपन एआई जैसी कंपनियों द्वारा बनाए गए स्मार्ट चैटबाट ने लोगों का मन मोह लिया है। इनमें इंसानों की तरह सवालों के जवाब देने की क्षमता है, यह बारीकियों की व्याख्या कर सकते हैं, सवालों के साथ ही तथ्यों को विश्वास के साथ साझा भी कर सकते हैं। यह चैटबाट नए नहीं है। इंसानों के साथ संवाद करने में सक्षम कंप्यूटर प्रोग्राम या चैटबाट की अवधारणा का 1950 के दशक से ही इतिहास रहा है। आने वाले दिनों में कई पुराने काम खत्म होंगे, तो कई नए शुरू हो जाएंगे। विज्ञान रुकने वाला नहीं है। माइक्रोसॉफ्ट की प्रयोगशालाओं में चैटजीपीटी से भी अधिक शक्तिशाली बात करने वाली मशीनों का काम चल रहा है, और इस पूरी प्रक्रिया में मानव सभ्यता के भविष्य का निर्धारण की क्षमता मानव समाज से सत्ता प्रतिष्ठानों से होते हुए बाजार आधारित तकनीकी

विकास के पक्ष में जाती हुई दिख रही है। परम पावन दलाई लामा जी कहते हैं कि बाजार के विकास का मूल भाव लालच (greed) है। अतः इस लालच पर आधारित तकनीकी विकास को समझना और इस पर नजर रखना हर नागरिक का दायित्व है। अन्यथा हम सभी किसी न किसी रूप में इन कंपनियों के अवैतनिक कर्मचारी के रूप में काम करते हुए नजर आएंगे, चाहे वह सोशल मीडिया हो, गूगल सर्च या चैटबाट का प्रयोग। वर्तमान समाज में सूचना तकनीकी अब इस स्थिति में है कि इसका प्रयोग करें या ना करें, यह हमारे निर्णय पर निर्भर नहीं है कि हम इसका प्रयोग करने के लिए बाध्य हैं साथ ही इसने हमारे विकास को अत्याधिक गति प्रदान की है। यह तथ्य सर्वदा सत्य है। हाल ही में गुजरे कोविड-19 काल का स्मरण कर कोविड टीके के विकास में साझा तकनीक ने जिस तरह योगदान दिया है वह अविस्मरणीय है। संचार और संवाद को जिस तरह गति प्राप्त हुई है उसके लिए किसी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है। साथ ही यह भी एक तथ्य है कि भोगवाद के युग में जो समाज बाजार का उपयोग नहीं करता या करने में सक्षम नहीं होता, उसका उपभोग बाजार कर लेता है। अतः समझ पूर्ण प्रयोग और तकनीकी विकास पर पैनी नजर रखना हम सभी का व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक दायित्व है। हमें यह समझना होगा कि हम पेड एडवर्टाइजमेंट और स्पॉन्सर्ड रिसर्च के युग में जी रहे हैं और सूचना तकनीकी के माध्यम से अफवाहें किस तरह सच होकर रक्तपात करा रहीं है। अतः विश्लेषणात्मक सोच (क्रिटिकल थिंकिंग) और तकनीकी की सही समझ और इसका सार्थक उपयोग ही हमें इस बाजार आधारित तकनीकी विकास की इस आँधी से बचा सकता है। विश्लेषणात्मक सोच के लिए हमें अपने सहज विश्वासी भारतीय मन के दायरे से बाहर निकल कर बाजार और तकनीकी आधारित सेवाओं से प्राप्त सूचनाओं को संदेह से देखने की दृष्टि विकसित करनी होगी, जैसे कि आखिर क्यों मुझे ही पाँच करोड़ की लाटरी लग गई या कि मेरा ही चयन किसी अनाम प्रतिस्पर्धा या पुरस्कार के लिए क्यों हो गया? या कि कोई बहुमूल्य वस्तु मुझे ही मुफ्त में क्यों भेजी जा रही है? जैसे प्रश्नों के आधार पर ही हमें मोबाइल सहित तमाम संचार साधनों से प्राप्त होने वाली सूचनाओं को विश्लेषित कर उनके सत्य, प्रयोजक या स्रोत को जाने बिना कोई भी प्रतिक्रिया करने से बचना होगा। तकनीकी की सही समझ के लिए हर पढ़े-लिखे मनुष्य का यह दायित्व है कि वह कम से कम समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाली सूचना संचार तकनीकी और विज्ञापनों को आवश्यक रूप से गंभीरता से पढ़े, उन्हें समझने का प्रयास करे। यदि हम आभासी मीडिया को छोड़कर केवल मुद्रित समाचार पत्रों की ही बात करें तो पाएंगे कि पिछले पाँच-दस वर्षों

में समाचार पत्रों में तकनीकी से सम्बन्धित समाचारों का भाग अप्रत्याशित रूप से बढ़ा है प्रबुद्ध नागरिक होने के कारण हमें इस पर नजर रखनी ही चाहिए और इस अभूतपूर्व तकनीकी विकास के बारे में सही समझ रखना और इसे प्रसारित करना हम सब की जिम्मेदारी है क्योंकि अंततः कोई भी तकनीकी हमारी सुविधा और सहजता के लिए है न कि हमारे शोषण और विनाश के लिए।

प्रलेखन अधिकारी
शांतरक्षित ग्रंथालय
के.उ.ति.शि.सं. सारनाथ, वाराणसी

महातीर्थ डिल-बु-री (घण्टापाद-गिरि) तथा गन्धोला का स्फुटार्थ-प्रदीप नामक तीर्थ-लेख[1]

—अनुवादक- टी. आर. शाशनी एवं डॉ. छेरिङ् डोलकर—

नमो गुरु। (गुरु को नमस्कार)
नमो गुरु-बुद्ध-धर्म-संघ-इष्टदेव-डाक-डाकिनीभ्यः।
पूज्यामि शरणं च गच्छामि।

(मैं गुरु, बुद्ध, धर्म, संघ, इष्टदेव, तथा डाक एवं डाकिनियों को नमस्कार करता हूँ। पूजा करता हूँ और शरण में जाता हूँ।)

सांसारिक-कृत्यों का परित्याग कर चुके योगी द्वारा
भाषित 'स्फुटार्थप्रदीप' नामक तीर्थ-लेख
की रचना में जो भी दोष हैं, उसके लिए
ज्ञानचक्षु लोग (अर्थात् विद्वज्जन), मुझे क्षमा करें॥

सहा-लोकधातु के निर्माण के समय महेश्वर आदि रौद्र-देवगणों के द्वारा जगत् के सत्त्वों पर आधिपत्य के दौरान इन (रौद्र-देवगणों) के दमन के लिए स्वयं समन्तभद्र(-बुद्ध) ने (जम्बुद्वीप के) मध्य सुमेरु पर्वत के शिखर पर पधार कर इन रौद्र-देवगणों का दमन, लय एवं आभोग कर, अन्ततोगत्वा (सभी रौद्र-देवगणों का) उद्धार किया। उस समय (समन्तभद्र ने)

---

1. *"ने-छेन डिल-बु-री दङ् गन्धोला-यि ने-यिग दोन-सल शुग-सो"* नामक तीर्थ-लेख भोट भाषा से हिन्दी में अनूदित है। यह तीर्थ-स्थान हिमाचल प्रदेश के सीमान्त क्षेत्र लाहौल(=गरजा) घाटी में चन्द्र-भागा नदी के संगम स्थल के समीप स्थित है। शास्त्रों में यह घाटी डाक-डाकिनियों के निवास स्थान के रूप में उल्लिखित है। यह स्थान बौद्ध तान्त्रिक इष्टदेव श्रीचक्रसंवर का भी पीठ माना जाता है। यह क्षेत्र चौरासी सिद्धों में परिगणित महासिद्ध घण्टापाद के साधना-स्थल के रूप में भी प्रतिष्ठित है। कालान्तर में भोटाचार्य सिद्ध गोछंग-पा ने भी इस पवित्र-स्थल में आकर महामुद्रा की साधना की। उसके बाद अनेक भोट सिद्धाचार्यों ने इस पीठ की महिमा को उजागर किया है। उपर्युक्त तीर्थ-लेख उन्हीं सिद्धाचार्यों के ग्रन्थों से वर्णित प्रतीत होता है। इस लेख का प्रकाशन वर्ष 1906 में तोदघाटी के निवासी ठाकुर अमरचन्द्र जो ब्रिटिश शासन-काल में लाहौल क्षेत्र के तोदघाटी का शासक तथा महा तहसीलदार के रूप में नियुक्त थे, की सत्प्रेरणा से भोट-भाषा में काष्ठोत्कीर्ण के रूप में ब्लॉक बनाकर तैयार किया गया है। तोदघाटी के स्थानीय लोगों से ऐसी सूचना मिली है कि इसकी काष्ठोत्कीर्ण ब्लॉक सम्प्रति खंगसर नामक गाँव में उनके महल में उपलब्ध है।

पाताल-लोक, मनुष्य-लोक तथा देव-लोक के 24 पीठों, 32 तीर्थस्थलों, 8 महाश्मशानों, 8 श्रीपर्वतों, 100 स्वयंभू-स्तूपों, डाक-डाकिनियों से युक्त 8 एवं 13 तीर्थ-स्थलों, तथा गुह्य डाक-डाकिनियों की 80 महागुफाओं को अधिष्ठित किया। पुनश्च, इस (लोकधातु) के प्रथम कल्प में रुट (?) आदि मारों को उसी महाश्रीहेरुक (=समन्तभद्र का उत्तम-निर्माणकाय रूप) ने मलय पर्वत के शिखर पर पधार कर उपर्युक्त वर्णनों की भाँति (उद्धार) किया। इसी कल्प के मध्य में, जिन(=बुद्ध) शाक्यमुनि ने श्रावस्ती में पधार कर मार देवदत्त तथा तैर्थिक आदि को व्यूहवत् (सैनिक विन्यास की तरह) उद्धार किया। पुनश्च, पूर्व (काल) में मध्य तिब्बत देश में ओडियान (आचार्य) पद्म(संभव) ने **"समये हस-पो-री"** पर्वत शिखर पर पधार कर पिशाच, राक्षस आदि रौद्रगणों का उपर्युक्त की तरह (दमन इत्यादि) किया। इनका एक अंग(=हिस्सा) **"गरजा-खडो"** नामक तीर्थ है, ऐसा कहा जाता है।

अहो, महातीर्थ से विशिष्ट **"गरजा-खडो-लिंग"**,
वज्रासन सदृश **"पर्वत-गन्धोला"**,
आश्चर्य एवं अद्भुत **"श्रीघण्टा-पर्वत"**,
जो सभी बुद्धों के द्वारा अधिष्ठित तीर्थ हैं।

सूत्र एवं तन्त्रों में व्याकृत इस तीर्थ (का विवरण)–

(इस तीर्थ क्षेत्र के) पर्वत का मध्य-भाग, आसन पर विराजमान गुरु सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) पर्वत का पृष्ठ-भाग, *क-ग्युद फो-ठोम छोग* सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) पर्वत का समस्त दायां भाग, गर्वित क्रोध (देवगण) सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) पर्वत का समस्त बायां भाग, गर्वित क्रोधी (देवीगण) सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) पर्वत का समस्त अग्र भाग, मुद्राओं से मुद्रित सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) पर्वत का समस्त शीर्ष भाग, श्वेत हिमवत कैलाश सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) तीन पर्वतों का संगम, *ला-छी* तीर्थ सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) तीन नदियों का संगम, (तिब्बत स्थित) *पल-गी छु-वर* सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) सर्वगुणसम्पन्नता में, (तिब्बत स्थित) *च-री* एवं *च-गोङ्* सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) पर्वत-शिखर की ऊँचाई, आकाश को छूने सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) दुर्गम एवं संकरा पर्वत, कपाट(=द्वार)-छेदन सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) *ज़-री मुग-पो*, सेना सदृश है।
(इस तीर्थ क्षेत्र के) विविध वृक्षों से युक्त वन, शस्त्रधारी सदृश हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र के) उग्र जल-प्रपात, शब्द(=आवाज़) सदृश हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र के) हरी-भरी घास, वस्त्र से आच्छादित सदृश है।

(इस तीर्थ क्षेत्र के) बादल और कोहरा, वस्त्रधारी सदृश हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र के) आकाश की ओर देखने से, अष्ट अराओं से युक्त चक्र सदृश (प्रतीत होते) हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र की) भूमि की ओर देखने से अष्ट पद्मदल सदृश (प्रतीत होते) हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र के) पार्श्व की ओर देखने से अष्ट मंगलचिह्न सदृश (प्रतीत होते) हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र के) समस्त पुरुषों के रूप-रंग वीर सदृश हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र के) समस्त स्त्रियों के रूप-रंग वीरिणी सदृश हैं।

(इस तीर्थ क्षेत्र की) भाषा की विविधता लोचावों(=लोकचक्षुओं) के सम्मिलन के सदृश है।

(इस तीर्थ क्षेत्र की) परम्परा की विविधता भारत-तिब्बत मिश्रित(-संस्कृति) के सदृश है।

(इस तीर्थ क्षेत्र की) वेश-भूषा की विविधता शिशु-अलंकार सदृश है। ऐसा कहा गया है।

समस्त भाग्यवान् देव एवं मनुष्य ध्यान से सुनें ! (इस तीर्थ क्षेत्र में उपर्युक्त भौगोलिक) समानता ही नहीं, अपितु अर्थ-समानता भी हैं, यथा–

चौबीस महाक्षेत्रों के अंश स्वरूप– (इस घण्टा-गिरि की) तलहटी में वज्रवाराही का अंगूठा है।

तीस महापीठों के अंश स्वरूप– (इस घण्टा-गिरि के) भीतरी भाग में पीठेश्वरी स्वयंभू देवी हैं।

अष्ट-सिद्धियों के अंश स्वरूप– अग्नि, जल, वायु, वृक्ष (शिङ्-स्मिन?), स्तूप, पर्वत तथा मातृका-सिद्धि आदि सम्पत्तियाँ हैं।

अष्ट-श्रीपर्वत के अंश स्वरूप– गन्धोला और वज्रघण्टा-गिरि हैं।

अष्ट-स्तूप के अंश स्वरूप– स्वयंभू महाबोधि-स्तूप हैं।

क्रोधदेवों के सम्मिलन-स्थल के अंश स्वरूप– अर्थ-लक्षण की साम्यता से डाक-डाकिनियों के नियत सम्मिलन होते हैं।

अस्सी गुह्य-गुफाओं के अंश स्वरूप– डाक एवं डाकिनियों के गुह्यगुफा के रूप में महाश्रीगुफा है।

सर्वबुद्ध-अधिष्ठान लक्षण स्वरूप– भावना-रहित होने पर भी (यहाँ के स्थानीय निवासियों की मृत्यु होने पर श्मशान में) दुङ् औऱ रिङ्सेल(=अस्थि-रत्न) उत्पन्न होते हैं।

(II)

इक्कीस सूत्र एवं तन्त्र ग्रन्थों के आधार पर (इस महातीर्थ की उपर्युक्त विशेषता को) कहा जा रहा है–

पर्वत का मध्य भाग– आसन पर विराजमान गुरु सदृश है, जो समस्त सत्त्वों के परिपक्व होकर मुक्त होने का लक्षण है।

पर्वत का पृष्ठ-भाग– *क-ग्युद फो-ठोम(*=गुरुपर्व-क्रम) समूह सदृश है, जो कग्र्युद-गुरुओं के मठ (विहार) होने का लक्षण है।

पर्वत का दायां भाग– गर्वित क्रोध(-देवगण) सदृश है, जो उपाय स्वरूप वीरों के आश्रय-स्थल होने का लक्षण है।

पर्वत का बायां भाग– गर्वित क्रोधी(-देवीगण) सदृश है, जो प्रज्ञा स्वरूप वीरिणियों के आश्रय-स्थल होने का लक्षण है।

पर्वत का अग्र(=सामने का) भाग– मुद्रा से मुद्रित सदृश है, जो प्रज्ञा और उपाय के युगनद्ध रूप होने का लक्षण है।

श्वेत हिमवत् पर्वत— कैलाश सदृश है, जो कैलाश-तीर्थ से अभिन्न होने का लक्षण है।

तीन पर्वतों का मिलन रूप– (तिब्बत स्थित) *ला-छी* सदृश है, जो ला-छी तीर्थ से अभिन्न होने का लक्षण है।

तीन नदियों का संगम-स्थल– (तिब्बत स्थित) *छु-वर* सदृश है, जो *छु-वर* तीर्थ से अभिन्न होने का लक्षण है।

सभी गुणों की सम्पन्नता– (तिब्बत स्थित) *च़-री* सदृश है, जो *च़-री* तीर्थ से अभिन्न होने का लक्षण है।

पर्वत-शिखर की ऊँचाई– आकाश को छूने सदृश है, जो अभ्युदय (=सांसारिक-सुख) और निःश्रेयस्(=नैर्वाणिकसुख) मार्ग में अनायास गमन करने का लक्षण है।

पर्वत की दुर्गमता एवं संकीर्णता– काटे गये कपाट (द्वार) सदृश है, जो संसार की दुर्गतियों के द्वार को छेदने का लक्षण है।

ज़-री मुग-पो– सेना के आवागमन सदृश है, जो विष रूपी पाँच क्लेशों के युद्ध को रोकने का लक्षण है।

वृक्षों से युक्त घना जंगल– शस्त्रधारी सदृश है, जो विद्या एवं अविद्या के मूल(=जड़) को छेदने का लक्षण है।

उग्र जल-प्रपात– आवाज़ की गूँज सदृश है, जो सभी ऊँच-नीच को अभिभव करने का लक्षण है।

हरी-भरी घास– फैलाये हुए वस्त्र सदृश है, जो भाग्यशाली लोगों के निवास-स्थान होने का लक्षण है।

बादल और कोहरा– वस्त्रधारी सदृश है, जो अविद्या और क्लेश के ताप से बचने का लक्षण है।

आकाश– अष्ट-अराओं से युक्त चक्र सदृश है, जो अष्ट-कोटि(=अन्त) दृष्टियों से स्वतः विनिर्मुक्त होने का लक्षण है।

भूमि– अष्ट पद्मदल सदृश है, जो अष्ट-पक्ष लक्षणों के नाश होने का लक्षण है।

पार्श्व भाग– अष्ट-मंगलचिह्नों से परिपूर्ण है, जो समूची अभिलाषाओं की पूर्ति वर्षा की भाँति (समान रूप से) करने का लक्षण है।

पुरुषों की वेश-भूषा– क्रोध-देव की वेश-भूषा के सदृश है, जो सभी पुरुषों के वीर होने का लक्षण है।

स्त्रियों की वेश-भूषा– क्रोध-देवी की वेश-भूषा के सदृश है, जो सभी स्त्रियों के वीरिणी होने का लक्षण है।

विविध भाषा– लोचावों(=लोकचक्षुओं) के सम्मिलन के सदृश है, जो सभी वीर-वीरिणियों की भाषा होने का लक्षण है।

विविध संस्कृति– भारत और भोट(=तिब्बत) सदृश है, जो भारत और तिब्बत की सीमावर्ती होने का लक्षण है।

वेश-भूषा– शिशु के खिलौने के सदृश (रंग-बिरंगा) है, जो आलोकित सित-रक्त देवधर्म की देशना का लक्षण है। ऐसा कहा गया है।

(III)

(इस महातीर्थ के बारे में) *डि-गुङ्-पा जिग्-तेन्-सुम्-गोन्*(=*डि-गुङ्-पा* त्रिलोक-नाथ) ने पूर्व-अपर रेस्पाओं को इस प्रकार से कहा है–

यहाँ से सूर्यास्त दिशा(=पश्चिम दिशा) में तथा उष्णीष जालन्धर (पीठ) से उत्तर दिशा में *गरजा-खडो* नामक तीर्थ है। यह विशिष्ट, उत्तम एवं अतुलनीय तीर्थ है। इस घाटी का भीतरी भाग पूर्व दिशा की ओर उन्मुख है। इस घाटी की तलहटी पश्चिम दिशा की ओर

उन्मुख आकार में है। दोनों फु-रल (कन्दराओं?) एवं तलहटी के साथ तीन (घाटियों में विभाजित) है। मध्य में *युगनद्ध महामध्यमक* रूपी पर्वत है। इस पर्वत पर अद्वय रूप में देवगण विराजमान हैं। इस पर्वत के पृष्ठ-भाग में धर्मपाल देव-गण विराजमान हैं। इसके पृष्ठ-भाग में गुह्यडाकिनियों का परिक्रमा-मार्ग है। इस परिक्रमा-मार्ग में क्रमशः जाने पर देव-देवियों की मूर्तियाँ तथा आयुध हैं। प्रज्ञा और उपाय स्वरूप जल तथा सिद्धि-स्वरूप जलस्रोत हैं। (यहाँ पर) अमृत-जल तथा अष्टांग-गुणों से युक्त जल हैं। आलि-कालि आदि अक्षर स्वयंभू अनाभोग रूप में (यहाँ) विराजमान हैं। *"भाग्यशाली (कुल-)पुत्रों को इस उत्तम तीर्थ में आगमन करना चाहिए"*– इस कथन को बार-बार कहा है।

तीर्थ-दर्शन की अनुशंसा—

यह (घण्टा-गिरि तीर्थ) गुरु-रत्न की भाँति है। इस जन्म तथा अगले जन्मों के महार्थ(=सांसारिक उन्नति एवं मोक्ष) को यदि सिद्ध करना चाहते हैं तो इस तीर्थ का (अवश्य) दर्शन करें।

यह तीर्थ अकनिष्ठ-क्षेत्र (देवलोक) से अभिन्न है, इसलिए यदि (अमिताभ बुद्ध आदि) शुद्ध-क्षेत्रों में गमन करना चाहते हैं तो इस तीर्थ का दर्शन (अवश्य) करें।

यह (घण्टा-गिरि) पर्वतराज सुमेरु की तरह है, यदि सभी प्रकार की पूर्णता को प्राप्त करना चाहते हैं तो इस तीर्थ का दर्शन करें।

यह तीर्थ चिन्तामणि की तरह है, यदि अभिलाषाओं को प्राप्त करना चाहते हैं तो इस तीर्थ का दर्शन (अवश्य) करें।

यह तीर्थ महाकल्पवृक्ष की तरह है, यदि सभी इच्छाओं की पूर्ति करना चाहते हैं तो इस तीर्थ का दर्शन (अवश्य) करें।

यह तीर्थ सेनापति-रत्न की तरह है, यदि भव-युद्ध(=सांसारिक दुःखों एवं संघर्षों) को रोकना चाहते हैं तो इस तीर्थ का दर्शन (अवश्य) करें।

यह तीर्थ उत्तम अश्व-रत्न की तरह है, यदि भद्र-महायान (बोधिसत्त्व-मार्ग) की चाहत रखते हैं तो इस तीर्थ का दर्शन (अवश्य) करें।

इस तीर्थ की एक बार परिक्रमा करने से, उत्तम प्रथम-भूमि(=प्रमुदिता-भूमि) को प्राप्त करने में संदेह नहीं है।

इस तीर्थ में अनासक्ति-भाव से पाप-देशना करने पर, पाँच आनन्तर्य-कर्मों *(माता की हत्या करना, पिता की हत्या करना, अर्हत् की हत्या करना, संघ-भेद करना, तथा तथागत-काय से द्वेष चित्त से रुधिर उत्पन्न करना जैसे घोर पाप)* भी एक ही क्षण में शुद्ध हो जाते हैं।

इन बातों को हृदय में ग्रहण करें तथा इन में श्रद्धा एवं भक्ति भाव रखें। इस प्रकार, इस तीर्थ की अनुशंसा समाप्त हुई।

(इस तीर्थ के सम्बन्ध में) ***उर्ग्यन-पेमा, जिग-तेन-गोन्पो, गोद्-छ्ङ्-पा, डुब-थोब्-ग्या-रस्, डिग-गुङ्-पा, लिङ्-पा गु-य-पा, गङ्-वा*** सहित भोट एवं भारत के अनेक सिद्धाचार्यों ने व्याकरण(=भविष्यवाणी) की है। इस तीर्थ में अधिमुक्ति(=विश्वास) कर सात पग चलने पर तीन जन्मों तक दुर्गति नहीं होगी, ऐसा कहा गया है। तेरह बार परिक्रमा करने पर तेरहवीं भूमि(=ज्ञानवती भूमि) को प्राप्त करेगा। इस तीर्थ में एक बार गणचक्र-पूजा करने पर चक्रवर्ती राजा के रूप में पैदा होगा, ऐसा कहा गया है।

यह महापीठ डिल-बु-री तीर्थ-विवरण *डिगुङ्-पा जिग-तेन गोन्-पो* (1143-1217 ई.) के द्वारा व्याकृत है।

पन्द्रहवें प्रवर के अभिभव वर्ष (1906) में (तोद-घाटी के) छिमेद्-दवा (=अमर चन्द) नामक भूपाल नरेन्द्र महा-तहसीलदार की अधिमुक्ति विशुद्ध-चित्त से सुप्रेरित होकर, इस तीर्थ-विवरण की प्रतिलिपि शिल्पकार मिफम-तेनजिन ने तथा काष्ठोत्कीर्ण का कार्य दोन-डुब नामक पोन (=चित्रकार) ने सम्पन्न किया है। सर्वमंगलम्॥

दु.बौ.ग्र.शो.विभाग
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी

संस्मरण

भाग्य और कर्म

—प्रमोद सिंह—

यह बात लगभग सन् 2002-2003 के आस-पास की है, मैं भारतीय नौ सेना में अपना प्रारम्भिक प्रशिक्षण पूरा कर गोवा में डाबोलिम एयरपोर्ट पर नियुक्त हुआ, आज भी डाबोलिम एयरपोर्ट का संचालन भारतीय नौसेना द्वारा किया जाता है। चूँकि परिवार में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं थी कि मुझे घर पैसा भेजना पड़े, तो सेवा के कुछ ही दिनों बाद मैंने अपने लिए एक मोटर साइकिल ले रखी थी। जब भी समय मिलता था, दोस्तों के साथ गोवा घूमने का आनन्द लेता था। उसी दौर में मुझसे एक वर्ष कनिष्ठ अजय (वास्तविक नाम गुप्त) जो कि मेरे ही कार्यालय में नियुक्त हुआ, तथा उसे मेरे ही कमरे में रहने के लिए स्थान आवंटित हुआ। मैं जब भी अजय को देखता था तो वह बहुत ही शांत स्वभाव का तथा अपने कार्य के प्रति बहुत सजग रहता था। वह कभी फालतू बाहर घूमने नहीं जाया करता था। चूँकि वास्को डी गमा वहां का बाजार था, जो लगभग 8 किमी दूर था। हम सभी बैच मैट सप्ताह में दो-तीन बाहर जाते थे तथा भोजन, घूमना आदि बाहर ही करते थे। लगभग दो तीन माह बाद मैंने अजय से पूछा।

मैं : तुम बाहर घूमने जाया करो नहीं तो तुम तनाव में चले जाओगे।

अजय : नहीं सर, ऐसा कुछ नहीं होगा। मैं खाली समय में गुरु जी की किताब पढ़ता हूँ।

मैं : कौन है आपके गुरु जी।

अजय : जी सतपाल महराज।

मैं : कौन सतपाल महराज।

अजय : सर वहीं जो सांसद भी हैं।

मैं : ठीक है, पर चलो, आज गुरु जी को छोड़ो और गोवा का आनन्द लो मेरे साथ !

अजय चाहे सम्मान में या एक वरिष्ठ साथी के आदेश को मानते हुए तैयार हो गया। मैं उसे अपनी मोटर साइकिल से बाहर ले कर निकला, एक दो घंटे घूमने के पश्चात् मैंने कहा कि चलो, आज बाहर ही खाना खाते हैं। गोवा में एक दुकान थी जो बनारस स्वीट हाउस के नाम से थी, हम सब उ.प्र. और बिहार के लोग वहाँ भोजन के लिए सामान्य रुप से जाया

करते थे, क्योंकि वहां उत्तर भारतीय व्यंजन आसानी से कम दरों पर उपलब्ध हुआ करता था। दुकान पर बैठने पर मैंने अजय से पूछा क्या खाओगे।

अजय : सर, जो आपकी इच्छा हो।

मैं : यहाँ का आलू पराठा दही के साथ बहुत अच्छा है, यदि कहो तो मंगा लिया जाए।

अजय : जी,

मैं : (हंसते हुए) कुछ मिठाई खाओ, क्योंकि पहली बार गोवा घूमने निकले हो।

अजय : नहीं सर, रहने दीजिए केवल भोजन करते हैं।

मैं : नहीं आज तुम्हें यहां का रसमलाई खाना होगा।

अजय : सर, वह क्या है ?

मैं : अरे, रसमलाई मिठाई है।

अजय : मैं नहीं जानता।

मैं : (आश्चर्य चकित होकर) तुम रसमलाई नहीं जानते, उत्तर प्रदेश के होकर।

अजय : नहीं

मैने तुरंत दो रसमलाई मंगवाया।

रसमलाई खाने के पश्चात् अजय ने मुझसे कहा मैं जीवन में पहली बार रसमलाई खा रहा हूँ। मैं आश्चर्यचकित रहा कि 20 वर्ष का नौजवान मुझसे यह कह रहा है। वहाँ से खाने के पश्चात् हम वापस अपने बेस में आ गए। परन्तु अभी भी मेरे मन में यह प्रश्न उठ रहा था कि क्या यह संभव है कि 20 वर्षो में अजय ने कभी रसमलाई न चखा हो, अतः शंका के साथ मैं उसके पास गया और पूछा ?

मैं : अजय घर में कौन कौन हैं ?

अजय : पिताजी, माता जी और एक छोटा भाई।

मैं : पिता जी क्या करते हैं ?

अजय : कुछ नहीं।

मैं : तब घर का खर्चा कैसे चलता है ?

अजय : पिताजी और माता जी कृषि में बटाई का काम करते हैं।

मैं : कोई खेत वगैरह नहीं है ?

अजय : नहीं, केवल एक कच्चा घर है।

मैं : घर का खर्चा कैसे चलता है ?

अजय : मैं कुछ प्रति माह भेजता हूं।

मैं : तुम्हारे नौकरी के पहले कैसे चलता था ?

अजय : मैं गैरेज में काम करता था।

मैं : क्या करते थे गैरेज में ?

अजय : स्कूटर और मोटर साइकिल बनाने में अपने उस्ताद की मदद करता था।

मैं : तब पढ़ाई कैसे की ?

अजय : सर, गाँव में स्कूल जाना अनिवार्य थोड़े ही है। केवल परीक्षा देने जाना पड़ता था।

मैं : भाई, नौसेना में तो विज्ञान विषय अनिवार्य है, कैसे पढ़े होंगे।

अजय : सर, सुबह पढ़ लेता था। परीक्षा दिया और पास हो गया।

मैं : नौसेना में कैसे आए ?

अजय : जानकारी तो गांव के एक व्यक्ति से हुई, जो गाड़ी बनवाने आते थे तथा फीस कुछ देना नहीं था, लखनऊ में भर्ती हो गया।

मैंने निरुत्तर होकर अजय को गले लगाया और सोने चला गया। रात बहुत देर तक नींद नहीं आयी और मैं उसके परिश्रम के विषय में सोचता रहा। अब वह मेरा प्रिय कनिष्ठ मित्र बन चुका था।

एक दिन अचानक उसने मुझसे कहा कि वह मड़गाँव कैसे जा सकता है।

मैं : क्या काम है ?

अजय : (अखबार देखते हुए) सर, इस दुकान पर जाना है यहाँ सोलर लाईट मिलता है।

मैं : क्या करोगे ?

अजय : घर पर लगाऊँगा।

मैं : मित्र इन्वर्टर लगा लो।

अजय : इन्वर्टर को सप्लाई कहां से दूँगा ?

मैं : क्यों उसमें क्या दिक्कत है ?

अजय : गाँव में बिजली की सप्लाई नहीं है।

अब पुनः मैं आश्चर्यचकित था। अजय सोलर पैनल ले आया तथा कुछ अलग से बैटरी सेल तथा बल्ब ला कर उस पैनल से चार जगह बल्ब जलाने का जुगाड़ कर दिया। यहां यह बताना अनिवार्य है कि हम सभी अभियांत्रिक विभाग से थे, जो वायुसेना में बिजली सप्लाई का कार्य देखते थे। अतः छोटे-मोटे रूपांतरण करना हमारे लिए आसान था। समय बीतता चला गया। मैं 2009 में दिल्ली ट्रांसफर हो गया तथा वह वहीं गोवा से रहा। हमारी बात आज भी होती है, उसने अपने छोटे भाई को भी पढ़ाया। आज वह भी किसी संस्थान में कार्यरत है। मैंने और अजय ने साथ–साथ कई डिग्रियाँ इग्नू से प्राप्त की। अपने 15 वर्षों के कार्यकाल में मुझे भी स्नातक, स्नातक (विधि) परास्नातक (विधि) तथा प्रबंध शास्त्र में परास्नातक करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा अजय ने भी स्नातक, परास्नातक तथा परास्नातक (प्रबंध शास्त्र) की उपाधि नौसेना सेवा काल में ही प्राप्त की। आज जब कभी हम सेना के मित्र मिलते हैं और कोई कहता है कि मैंने सेना में अपने समय का सदुपयोग कर आज समूह "क" अधिकारी के रूप में कार्यरत हुआ तो मुझें अभिमान की अनुभूति नहीं हो पाती है क्योंकि आज भी मैं जब अजय से अपनी तुलना करता हूँ तो स्वयं को बहुत छोटा महसूस करता हूँ, क्योंकि अजय विपरीत परिस्थियों को भेदते हुए आज भारत सरकार के एक उपक्रम में अधिकारी के रूप में कार्यरत है तथा मेरे साथ परिस्थितियां कभी विपरीत नहीं रही। आज भी मैं अजय को अपना प्रेरणास्त्रोत मानता हूँ। ईश्वर से प्रर्थना करता हूँ कि उसे और आगे ले जाए, जिससे समाज में एक संदेश जाए कि व्यक्ति को अपने भाग्य को कोसना नहीं चाहिए। अपने कर्म पर भरोसा कर स्वयं के भाग्य का निर्माण करना चाहिए। संत तुलसीदास जी ने भी लिखा है कि "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा"।

सहायक कुलसचिव
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9958391967

प्राचीन भारत में विधवा विवाह

एक विचारणीय प्रश्न ?

—डॉ. मधुर गुप्ता—

विधवा नारी अर्थात् वह स्त्री जिसका पति मृत्यु को प्राप्त हो गया हो। भारतीय समाज में विधवा होना किसी अभिशाप से कम नहीं है। आज भी 'विधवा विवाह' अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते हैं। राजा राममोहन राय जैसी विभूतियाँ, जिन्होंने विधवा विवाह को समर्थन देकर समाज में एक क्रान्ति का संचार किया था, अब नहीं दिखलाई पड़ती। हम कितने ही सभ्य एवं आधुनिक समाज का हिस्सा क्यों न बन जायें, परन्तु 'विधवा विवाह' के सन्दर्भ में हमारी सोच रुढ़िवादी परम्पराओं की जंजीरों से जकड़ी हुई है।

आज भी एक विधवा स्त्री के लिए पुनर्विवाह अत्यन्त कठिन होता है, परन्तु हमारे समाज की विडम्बना देखिये कि यदि किसी पुरुष की पत्नी मृत्यु को प्राप्त हो जाये तो उसका पुनर्विवाह परिवार एवं समाज द्वारा बड़ी आसानी से स्वीकार कर लिया जाता है। इस सन्दर्भ में आज के आधुनिक समाज से अधिक उदारता प्राचीन भारतीय समाज में दिखलाई पड़ती है।

ऋगवेद की कुछ ऋचाओं से ज्ञात होता है कि उस समय भी विधवा विवाह समाज में प्रचलित थे। इस वेद में एक विधवा स्त्री को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि 'तुम मृत पति को छोड़ कर भावी पति को प्राप्त करो।' ऋगवेद के एक मंत्र में 'विधिवेय देवरम्' कहकर यह संकेत दिया गया है कि 'विधवा स्त्री देवर को पति के रूप में अपना सकती है।' देवर का सामान्यतः अर्थ पति का भाई होता है, जो आज भी प्रचलित है। किन्तु निरुक्त में 'देवर' को द्वितीय वर कहा गया है, अर्थात् विधवा के किसी भी होने वाले वर को 'देवर' कहा जाता था। किन्तु आचार्य सायण 'देवर' का अर्थ पति का भाई ही बताते हैं। स्पष्ट होता है कि ऋगवैदिक काल में भी 'विधवा विवाह' होते थे।

महाभारत में भी विधवा के पुनर्विवाह का विधान मिलता है। नल राजा के अज्ञातवासी होने पर उसकी पत्नी दमयन्ती ने अयोध्या में संवाद भेजा कि राजा नल बहुत दिनों से लापता हैं, वे जीवित हैं या नहीं, यह भी पता नहीं, अतः आगामी कल, दमयन्ती अन्य व्यक्ति को पति रूप में वरण करेगी। संवाद प्राप्त होते ही तुरन्त अयोध्यापति ऋतुपर्ण दमयन्ती के पाणिग्रहण के उद्देश्य से चल दिये। स्पष्ट है कि स्वयं को विधवा मानने वाली स्त्री पुनः विवाह

कर सकती थी। कौटिल्य ने भी विधवा स्त्री को पुनर्विवाह की अनुमति प्रदान की है। पुनर्विवाह में दूसरे पति के सम्बन्ध में कौटिल्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि स्त्री को अपने पति के सगे भाई से विवाह करना चाहिये, यदि सगे भाई अधिक हों तो वह पति के पीठ पीछे पैदा हुए, भरण-पोषण में समर्थ भाई के साथ विवाह कर ले या जिस भाई की पत्नी न हो उसके साथ विवाह करे। यदि पति का सगा भाई न हो तो समान गोत्र वाले पति के किसी पारिवारिक भाई के साथ विवाह कर ले।

ऐसा जान पड़ता है कि मौर्य कालीन समाज में स्त्रियों को पुनर्विवाह की अनुमति तो थी, परन्तु यह भी आवश्यक था कि जिसके साथ विवाह किया जाए, वह पति के गोत्र का ही कोई नजदीकी रिश्तेदार हो, यदि भाई हो तो अधिक अच्छा है। स्पष्ट है कि कौटिल्य देवर के साथ विवाह की अनुमति देते हैं। मौर्यकाल के पश्चात् 'विधवा विवाह' को अच्छा नहीं समझा गया। यद्यपि स्मृतिकारों ने पुनर्विवाह का विधान अवश्य किया, परन्तु अब समाज अधिक रूढ़िवादी हो चुका था। नारद स्मृति में कहा गया है कि यदि पति नष्ट (लापता हो गया हो, मर गया हो, प्रव्रज्या ग्रहण कर ले, नपुंसक हो या पतित हो) तो इन पाँच दशाओं में स्त्री अन्य पुरुष से विवाह कर सकती है। यही श्लोक पराशर स्मृति एवं अग्नि पुराण में भी मिलता है। स्पष्ट है कि इन स्मृतिकारों ने विशेष दशाओं में पुनर्विवाह का विधान किया है। आगे चलकर विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गयी। उन्हें मांगलिक उत्सवों पर न आने की सलाह दी जाती थी, विवाह के समय केवल सुहागन महिलाएं ही वधू का श्रृंगार कर सकती थीं, विधवाओं का वहाँ प्रवेश निषेध था। विधवा स्त्रियों को जीवन भर अकेले ही सदाचारी होकर सम्पूर्ण जीवन गुजारना पड़ता था। यदा-कदा विधवाओं के पुनर्विवाह का उल्लेख भी प्राप्त होता है। विधवा विवाह का पूर्ण रूप से निषेध न था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने ज्येष्ठ भ्राता रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया था। कात्यायन ने वयस्क पुत्र होने पर भी विधवा के दूसरा विवाह करने का उल्लेख किया है।

बाद के कालों में विधवा नारियों की स्थिति और भी खराब होती चली गयी। आज भी पति की मृत्यु के बाद यदि पत्नी सम्पूर्ण जीवन पति के घर पर ही बिता दे, इसे ही आदर्श समझा जाता है। पत्नी की मृत्यु के बाद पति को पुनर्विवाह के लिए सोचना भी नहीं पड़ता। पारिवारिक जिम्मेदारी, संतान की देखभाल आदि समस्याओं को सामने रखकर तुरन्त उस पुरुष का दूसरा विवाह करवा दिया जाता है। क्या यही सब समस्याएं एक विधवा स्त्री के समक्ष नहीं होती हैं? 'नारी स्वतंत्रता' के नाम पर केवल कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा किया गया 'विधवा विवाह' ही समाज द्वारा स्वीकृत होता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारा समाज इस सन्दर्भ में 'प्राचीन भारतीय समाज' का अध्ययन अवश्य करे, ताकि उसे अपने प्रगतिशील विचारों को मूर्तरूप देने में सहायता प्राप्त हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. ऋगवेद - भाष्कार श्री पाद दामोदर सातवलेकर
2. निरुक्त - यास्क का
3. महाभारत - हिन्दी टीकाकार पंडित श्री हरगोविंद शास्त्री
4. महाभारत कालीन समाज - सुखमय भट्टाचार्य
5. कौटिल्य का अर्थशास्त्र - व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला
6. प्राचीन भारत का धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन - सत्यकेतु विद्यालंकार
7. प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति - के० सी० श्रीवास्तव
8. गुप्त काल का सांस्कृतिक इतिहास - भगवत शरण अग्रवाल।

सहायक आचार्य
सारनाथ बोधिसत्त्व महाविद्यालय, मुनारी, वाराणसी
मो० नं० - 7905319723

बच्चों का भविष्य : हमारा दायित्व

—डॉ. विश्व प्रकाश त्रिपाठी—

सबुह-सुबह जब अखबार हाथ में आता है, तो उसके पृष्ठ हत्या, अनाचार, लूट, चोरी, रिश्वत तथा घोटाले जैसे जघन्य अपराधों के समाचारों से भरे रहते हैं। भारत जैसे समृद्ध संस्कृति वाले देश में इस प्रकार की स्थिति अत्यंत भयावह तथा चिन्ताग्रस्त करने वाली है। आखिर क्या कारण है कि भारत जैसा देश जो कई धर्मों का जनक रहा है, जिसके हर एक क्षेत्र में ऐसे महान् सामाजिक विभूतियों का जन्म हुआ है, जिन्होंने समाज के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर एक आदर्श समाज की रचना के लिए अपने स्वार्थ की जगह परमार्थ के लिए कार्य किया हो, उनकी सन्तानें इस प्रकार के कुकृत्यों में निर्लज्जता के साथ रत हैं।

हम सभी जानते हैं कि समाज का अर्थ समुदाय होता है, व्यक्ति उसकी एक इकाई होता है। यह शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक अज् धातु से धञ् प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ जुड़ा हुआ होना है। इसका मतलब यह है कि समाज से जुड़े हर व्यक्ति का प्रभाव समाज पर पड़ता है तथा समाज का प्रभाव उससे जुड़े हर व्यक्ति पर पड़ता है, भले ही उसे इसका भान न हो। जैसे जंगल के एक पेड़ की आग से पूरा जंगल जल जाता है तथा जंगल की आग से क्रमशः उस जंगल का हर एक वृक्ष जल जाता है, इसलिए समाज के हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह अपने समाज के गुण तथा दोषों से अनभिज्ञ होने का कबूतर की तरह नाटक न करे तथा गंभीरतापूर्वक इस पर विचार करें।

इसी सन्दर्भ में मैं अपना एक संस्मरण आपसे साझा करना चाहता हूँ, जिससे यह पता चलता है कि हमारा समाज अपनी संस्कृति की जड़ों से दूर होता जा रहा है। मैं एक विद्यालय के कक्षा तीन के विद्यार्थियों को पढ़ा रहा था, जिसमें विद्यार्थियों की उम्र औसतन दस वर्ष के भीतर ही थी। एक छात्र ने एक अन्य छात्र की ओर संकेत कर कहा- सर वह कह रहा है कि मेरी दो-दो गर्ल-फ्रेण्ड है, मैंने कहा- नहीं, ऐसा नहीं कहते, कक्षा में साथ पढ़ने वाले सभी भाई-बहन होते हैं। कक्षा के सभी छात्र एक साथ बोलने लगे- नहीं सर, नहीं ऐसा नहीं होता है। मैं आश्चर्य में पड़ गया कि इन अनगढ़ बालमनों में ये कु-संस्कार कहाँ से पड़ गये ? हम सभी जानते हैं। इसका मूल उपभोगिता वाद है।

भारतीय संस्कृति के आधार चार पुरुषार्थ कहे गये हैं- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। अर्थ का उपार्जन धर्मोन्मुख होना चाहिये तथा काम को धर्म की आकांक्षा पूर्वक। परन्तु वर्तमान में मोक्ष की अवधारणा ही लुप्त हो गयी तथा अर्थ और काम ही प्रधान रह गये हैं। तथाकथित धर्म का उपयोग या विक्रय, अर्थ तथा काम की पूर्ति का वीभत्स साधन बन गया है।

मनोरंजन के नाम पर सिनेमा तथा धारावाहिकों में विभत्स-कथाओं तथा दृश्यों को अत्यधिक धन कमाने के लिए अनावश्यक रूप से डाल दिया जाता है। व्यावसायिक विज्ञापनों में भी बालमन को विकृत करने वाले तथा उन्हें कुण्ठित बनाने वाले दृश्यों को चौबीसों घण्टे परोसा जाता है। धार्मिक विषयों पर बन रहे धारावाहिक भी कलात्मकता तथा प्रयोगधार्मिता के नाम पर मनमाने प्रसंगों एवं दृश्यों को विकृत रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं। बच्चों के लिए बने तथाकथित बाल कार्यक्रम भी अश्लीलता तथा हिंसा को प्रोत्साहित करते ही दिखाई दे रहे हैं।

व्यावसायिकता की अंधी-दौड़ में नैतिकता तथा मर्यादा का कोई स्थान नहीं रहा। रही-सही कसर वेब साइट पर आने वाली श्रृंखलाओं ने पूरी कर दी, जिनमें अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं कला के नाम पर अपनी दमित कुण्ठाओं का घिनौना प्रदर्शन मोबाईल के माध्यम से हर हाथ में पहुँचा दिया जा रहा है, जिससे बच्चों के अपरिपक्व मन में हिंसा और अनाचार की विषवेल विकसित होने लगती है। बच्चे रोज-रोज इस तरह के दृश्यों को देखकर इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे उसे असली जीवन में भी अपनाने में सहज रूप से प्रवृत्त होने लगते हैं। हत्या एवं उसके बाद शव को गायब करने की अधिकांश घटनाओं में यह बात सामने आई है कि किसी सिनेमा या वेब धारावाहिक को देखकर अपराधी अपराध करने के लिए प्रेरित हुआ था। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का मूल्य क्या हम अपने प्रियजनों को सूटकेस, प्रेशर कूकर या फिर जेल में देख- कर चुकाना, चाहेंगे ? निश्चित रूप से नहीं।

हमें यह ध्यान देना चाहिए कि अधिकार प्राप्त करने से पहले हमारे भीतर कर्तव्य- बोध होना चाहिए। हमारे किसी आचरण से अगर वर्तमान या भविष्य में हानि की आशंका हो, तो अपने अधिकार को त्यागकर कर्तव्य का पालन करते हुए, हमें उस आचरण से बचना चाहिये।

भारत में तो इस प्रकार के असंख्य महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने अपना सब कुछ समाज के लिए समर्पित कर दिया। महर्षि दधीचि, राजा शिवि से लेकर सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद जैसे अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं, जिनसे शायद ही कोई अनभिज्ञ हो। इसके

अतिरिक्त पण्डित मदनमोहन मालवीय, आचार्य विनोबा भावे तथा भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम जैसे मनीषी भी इसी धरती से उत्पन्न हुए, जिन्होंने आने वाली पीढ़ियों के लिए अपना बहुमूल्य जीवन समर्पित कर दिया, परन्तु वर्तमान समय में मनोरंजन व्यवसाय अपराधियों को समाज के नायक के रूप में प्रस्तुत करता है। इसके परिणाम स्वरूप बच्चों के मन में गैंगस्टर, माफिया जैसे बनने की कल्पना घर कर लेती है और वह अनायास अपराध के नरक में चले जाते हैं। इस प्रकार के भी कई बार अपराधी पकड़े गये हैं, जिन्होंने किसी सिनेमा के नायक की तरह दिखने के लिए, बिना किसी कारण अनजान व्यक्ति की हत्या कर दी तथा उसे अपने सोशल मिडिया (वस्तुतः असामाजिक तन्त्र) पर डाल दिया। सड़क पर बच्चियों के साथ अपराध करते हुए तथा मादक द्रव्यों का प्रयोग करते हुए अल्पवयस्क सामान्यतः हर छोटे-बड़े नगरों में दिखाई पड़ जाते हैं।

बहुत से लोग अपराध को अशिक्षा और गरीबी से जोड़कर देखते हैं। उनके अनुसार शिक्षा के प्रचार-प्रसार के द्वारा अपराध पर नियन्त्रण किया जा सकता है। परन्तु क्या ये सत्य है ? क्या अपराध अनपढ़ ही करते हैं ? उच्च शिक्षाओं से अलंकृत, उच्च पदों पर आसीन व्यक्ति अपराध नहीं करते ? मुझे ऐसा लगता है कि अनपढ़ अपराधी अक्सर अपनी जीविका के लिए चोरी इत्यादि छोटे-मोटे अपराध करते हैं। हाँ, उनमें से भी कुछ अधिक जघन्य अपराधी होते हैं, जो मादक पदार्थों या सिनेमा इत्यादि के कारण उत्पन्न कुण्ठाओं के कारण अपराध करते हैं। परन्तु शिक्षित वर्ग के अपराध केवल उनके धन की पिपासा एवं काम की कुण्ठा के कारण होते हैं, जो अधिक हानिकारक हैं, ऐसे अध्यापक, चिकित्सक या अधिकारी, जिन्हें हम अपने आदर्श के रूप में देखते हैं तथा जिनके ऊपर समाज की रचना और उनके व्यवस्थित संचालन की जिम्मेदारी होती हैं। उनका अपराध वर्तमान तथा भविष्य दोनों को नष्ट करने वाला होता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि समाज के संरक्षण के लिए, उसके विचलन को रोकने में हम जैसे एक सामान्य व्यक्ति का क्या योगदान हो सकता है।

हम जानते हैं कि समाजरूपी वन के लिए वृक्ष की पौध हमारे बच्चे ही हैं तथा हमारा घर पौधशाला। हम अपने बच्चों को अच्छे संस्कार तथा उनके साथ अच्छा व्यवहार करें, तो निश्चित रूप से वे एक श्रेष्ठ नागरिक बनेंगे तथा किसी उच्च पद पर रहकर भी अनाचार-कदाचार आदि सामाजिक रोगों से दूर रहेंगे।

परन्तु ये होगा कैसे ? बचपन में हम एक कथा सुनते थे कि एक बालक गुड़ अधिक खाता था, उसकी माँ उस बालक को लेकर एक महात्मा जी के पास गयी और उनसे निवेदन

किया कि 'महाराजजी मेरा पुत्र अधिक गुड़ खाता है, जो इसके स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं है। कृपया इसे उपदेश दीजिए, जिससे इसका गुड़ खाना कम हो'। स्वामी जी ने कुछ विचारकर उस महिला से कहा- 'दस दिन बाद बालक को लेकर आना'। महिला दस दिन बाद उस बालक को लेकर जब महात्मा जी के पास आयी तो, महात्मा जी ने उस बालक से कहा- 'बेटा गुड़ कम खाया करो'। महिला के जाने के बाद स्वामी जी के शिष्य ने उनसे पूछा ! महाराज, यह बात तो आप दस दिन पहले भी उस बालक से कह सकते थे, तो आपने उसे आज क्यों बुलाया? स्वामी जी ने कहा- 'दस दिन पहले मैं भी अधिक गुड़ खाता था। जब मैं स्वतः उस दोष से ग्रस्त था, तो मैं उसको उपदेश, कैसे दे सकता था ? उपदेश के लिए आचरण अत्यन्त आवश्यक है। आचरण से रहित उपदेश किसी फल को उत्पन्न नहीं कर सकता'। यह कथा कहाँ तक सच है ये तो मैं नहीं जानता, परन्तु इसका संदेश शत-प्रतिशत सत्य है।

बच्चों को अच्छा संस्कार देने के लिए हमें सर्वप्रथम अपने आचरण को सही करना पड़ेगा कोई अन्य विकल्प नहीं है। बच्चे भले ही शिक्षा विद्यालय में प्राप्त करते हैं, परन्तु वह संस्कार घर पर ही पाते हैं। उचित-अनुचित, करणीय-अकरणीय का विवेक बच्चों में घर के वातावरण से ही विकसित होता है। अतः माता-पिता को यह ध्यान रखना चाहिये कि वे कोई ऐसा आचरण न करें, जिसका उनके बच्चों पर गलत प्रभाव पड़े। सबसे पहले उन्हें अपने बच्चों को मोबइल-फोन, इण्टरनेट पर परोसे जा रहे विष से दूर रखना होगा तथा उनके साथ समय बिताना होगा। पशु-पक्षियों के प्रति प्रेम, जल, विद्युत एवं खाद्य वस्तुओं का अपव्यय न करना, बड़ों का सम्मान जैसे आचरण बच्चे बिना बताये हमारे आचरण से ही सीख लेते हैं।

हमें बच्चों के सामने कभी भी मादक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिये तथा झूठ नहीं बोलना चाहिये। गाली-गलौच तथा घरेलू हिंसा का भी बाल-मन पर अत्यन्त विपरीत प्रभाव पड़ता है। अगर बच्चों से कोई गलती हो जाय तो उन्हें दण्डित करने के स्थान पर, उससे प्रेम-पूर्वक बात कर सही मार्ग पर लाने का प्रयास करना चाहिये। बच्चे, मिट्टी के कच्चे घड़े के समान होते हैं। जिस प्रकार से कुम्हार अन्दर से हाथ का सहारा देकर बाहर से दबाव बनाते हुए घड़े को सही आकार देता है, उसी प्रकार हमे भी प्रेम तथा अनुशासन के उचित प्रयोग से बच्चों के विकास में सहयोग करना चाहिये। कहा गया है- **लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।** इसका अर्थ है कि बच्चों को पाँच वर्ष तक की आयु तक बहुत प्रेम से रखना चाहिये, तथा दस वर्ष तक उसे अनुशासन

पूर्वक शिक्षा देनी चाहिए। जब वह सोलह वर्ष का हो जाय तो उसके साथ मित्र के समान व्यवहार करना चाहिए।

अगर हम अच्छे संस्कारों के द्वारा अपने बच्चों को विकसित करेंगे तथा जब वह संस्कार से युक्त युवा होकर इस समाज में अपना योगदान देगा, तो अपने आप हमारा ये समाज पुनः सांस्कृतिक समृद्धि से परिपूर्ण हो जायेगा। परन्तु इसके लिए हमें अपने भविष्य के लाभ के लिए आज के स्वार्थ का परित्याग करना होगा तथा धनोपार्जन मात्र में लगी अपनी प्रवृत्ति को अपने पूर्वजों की संस्कृति की रक्षा के लिए विराम देना होगा।

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9455925269

फ़िलहाल महिलाओं ने संभाल रखा है श्रम का 76.2% हिस्सा !

—डॉ. हुमा कयूम—

महिलाओं का जीवन अनिवार्य रूप से उनके घरों से जुड़ा होता है। महिलाओं ने हमेशा से दो आयामों के सापेक्ष काम किया हैं- घर के भीतर और बाहर। इसलिए महिलाओं के काम को उस बड़े सामाजिक और आर्थिक ढांचों से अलग करके नहीं समझा जा सकता, जिनके भीतर घर और अर्थव्यवस्थाएँ दोनों आती हैं। जब हम कार्य या श्रम को लैंगिक दृष्टिकोण से देखते हैं, तो कार्य की परिभाषा एक विवादित क्षेत्र बन जाता है। अब यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि कार्य क्षेत्र 'लिंग तटस्थ' क्षेत्र नहीं है, जहां केवल योग्यता, कौशल अथवा प्रदर्शन ही किसी व्यक्ति विशेष का किसी व्यवसाय या पेशे में प्रवेश या प्रगति निर्धारित करता है। जेंडर या लिंग इस बात का भी निर्धारण करता है कि व्यक्ति-विशेष को मिलने वाली गतिशीलता, अवसरों का लाभ और अर्जित की गई मजदूरी क्या होगी। जब निष्कर्ष स्पष्ट रूप में सामने हो तो सांख्यिकीय डेटा में बहुत गहराई से विचार करने की ज़रूरत भी नहीं मालूम पड़ती, लेकिन फिर भी सांख्यिकी डेटा हमें इससे पूर्ण रूप से अवगत करा भी देते हैं। उदाहरण के लिए जब महिला और पुरुष एक ही काम करते हैं, तो महिलाओं को किया जाने वाला भुगतान पुरुषों की तुलना में औसतन 20 प्रतिशत कम होता है। इस निरंतर असमानता के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) और संयुक्त राष्ट्र हर साल **18 सितंबर** को **अंतर्राष्ट्रीय समान वेतन दिवस** की न केवल मेजबानी करते हैं बल्कि समान वेतन, अंतर्राष्ट्रीय गठबंधन, लॉबी निगमों और सरकारों के माध्यम से लिंग वेतन अंतर को बंद करने के लिए भी प्रयास करते रहते हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के समान पारिश्रमिक सम्मेलन (1951) में **'समान काम के लिए समान वेतन'** (Equal Pay for Equal work) का विचार इस तथ्य की मान्यता में स्थापित किया गया था कि महिलाओं ने हमेशा औद्योगिक कारखानों में काम किया है, खासतौर पर द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ऐसा तेजी से हुआ था जब महिलाओं ने पुरुषों के खाली स्थान को अपने श्रम के ज़रिये भरा था। इस सम्मेलन ने 'समान मूल्य के काम के लिए पुरुषों और महिला श्रमिकों के लिए समान पारिश्रमिक के सिद्धांत' को अपनाया, फिर भी सरकार और निजी क्षेत्र दोनों ने इसका पालन करने से इन्कार कर दिया। कोविड-19 महामारी के दौरान, स्वास्थ्य देखभाल क्षेत्र पर गहन ध्यान केंद्रित किया गया था तथा स्वास्थ्य देखभाल कर्मचारियों को 'आवश्यक श्रमिकों' के रूप में

सार्वभौमिक रूप से सराहा गया था। मार्च 2021 में, **ट्राईकॉन्टिनेंटल: इंस्टीट्यूट फॉर सोशल रिसर्च** (Tricontinental: Institute for Social Research) ने एक डोजियर, **अनकवरिंग द क्राइसिस: केयर वर्क इन द टाइम ऑफ कोरोनावायरस** (Uncovering the Crisis: Care Work in the time of Coronavirus) प्रकाशित किया, जिसमें स्वास्थ्य देखभाल उद्योग में महिला श्रमिकों के विचारों को दर्शाया गया था। अर्जेंटीना वर्कर्स सेंट्रल यूनियन की जेनेट मेंडिएटा ने 'आवश्यक कार्य' के इस विषय पर विचार प्रस्तुत किया:

"सबसे पहले, उन्हें यह पहचानना चाहिए कि हम आवश्यक कर्मचारी हैं और फिर हमें अपने काम के लिए मजदूरी के साथ पहचाना जाना चाहिए, क्योंकि हमें जितना काम करना चाहिए हम उससे कहीं अधिक काम करते हैं। हम लैंगिक समानता और स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए बहुत सारे काम करते हैं, हम कैंटीनों और भोजनालयों में रसोइयों के रूप में काम करते हैं और इनमें से किसी को भी पहचाना या प्रदर्शित नहीं किया जाता है। यदि यह दिखाई नहीं देता है, तो निश्चित रूप से इसे पहचाना या पारिश्रमिक भी नहीं दिया जाएगा"।

उन्होंने यह भी बताया की स्वास्थ्य कर्मचारियों द्वारा किये गए किसी भी काम को न तो महामारी की ऊँचाई के दौरान पहचाना गया और न ही जब हमने इससे बाहर निकलना शुरू किया। 2018 में, आईएलओ ने एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट, **केयर वर्क एंड केयर जॉब्स फॉर द फ्यूचर ऑफ डिसेंट वर्क** (Care Work and care Jobs for the Future of Decent Work) प्रकाशित की, जिसमें अनुमान लगाया गया कि अवैतनिक देखभाल और घरेलू काम का मूल्य वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 9 प्रतिशत या 11 ट्रिलियन डॉलर है। कुछ देशों में यह मूल्य कहीं अधिक है, जैसे ऑस्ट्रेलिया में, जहां अवैतनिक देखभाल और घरेलू कार्य सकल घरेलू उत्पाद का 41.3 प्रतिशत है। 64 देशों में एकत्र किए गए समय-उपयोग सर्वेक्षण के आंकड़ों के आधार पर रिपोर्ट में पाया गया कि 16.4 बिलियन घंटे प्रतिदिन अवैतनिक देखभाल कार्य पर खर्च किए जाते हैं, जिसमें महिलाओं द्वारा किए गए अवैतनिक देखभाल कार्य के कुल घंटों का **76.2 प्रतिशत** है। दूसरे शब्दों में, दुनिया भर में महिलाओं का दैनिक अवैतनिक देखभाल कार्य 1.5 बिलियन से अधिक महिलाओं के बिना वेतन के आठ घंटे काम करने के बराबर है। जुलाई 2022 में, ILO और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वेतन अंतर पर एक और रिपोर्ट प्रकाशित की। इस बार स्वास्थ्य देखभाल क्षेत्र पर जोर दिया गया। उनकी रिपोर्ट, **द जेंडर पे गैप इन द हेल्थ**

एंड केयर सेक्टर: ए ग्लोबल एनालिसिस इन द टाइम ऑफ कोविड-19 (The Gender pay Gap in the Health and Care Sector: A Global Analysis in the time of Covis-19) ने स्थापित किया कि, स्वास्थ्य और देखभाल क्षेत्र में महिलाएं पुरुषों की तुलना में औसतन 24 प्रतिशत कम कमाती हैं। इस क्षेत्र में 67 प्रतिशत नौकरियां महिलाओं के खाते में होने के बावजूद, उनमें से केवल एक छोटी सी ही संख्या ऊपरी प्रबंधन के तबके में काम करती है। अस्पताल प्रशासकों और नर्सों के वेतन के बीच का यह अंतर, उदाहरण के लिए, प्रत्येक वर्ष केवल व्यापक होता जा रहा है, असमानता की यह खाई बढ़ती ही जा रही है।

रिपोर्ट इस वेतन अंतर के लिए कई स्पष्टीकरण प्रस्तुत करती है। उनमें से एक तर्क यह दिया जाता है कि 'उन क्षेत्रों में जहाँ महिलाओं की अधिकता है वहां कम वेतन देने की प्रथा पहले से मौजूद रही है', इस कारण महिलाओं को कम भुगतान किया जाता है। नर्सिंग जैसे स्वास्थ्य देखभाल क्षेत्रों को दूसरों की तुलना में कम भुगतान किया जाता है, जो कि वास्तव में कम कौशल स्तरों के कारण नहीं बल्कि 'महिलाओं के काम' के साथ उनके जुड़ाव के कारण होता है। वैसे भी इसमें कोई दो राय नहीं की महिलाओं द्वारा घर में किये गए कार्य को दुनिया भर में नियमित रूप से कम महत्व दिया जाता है। इसके अलावा, यह रिपोर्ट यह भी बताती है कि वेतन में **'मातृत्व अंतर'** है, जिसके बारे में अक्सर बात नहीं की जाती है, लेकिन सांख्यिकीय आंकड़ों में और स्वास्थ्य देखभाल कर्मचारियों की यूनियनों द्वारा की गई मांगों में दिखाई देती है। स्वास्थ्य देखभाल उद्योग में अंशकालिक काम (part-time jobs) के निम्न स्तर हैं, सिवाए उन महिलाओं के जो अपने उम्र के बीसवें या तीसवें वसंत में हैंI रिपोर्ट में बताया गया है कि, 'शादी-विवाह और संतान प्राप्ति के कारण महिलाओं को या तो श्रम बाजार छोड़ना पड़ता है या अपने काम के घंटे कम करने पड़ते हैं। जब महिलाएं उद्योग छोड़ती हैं और बाद में लौटती हैं या अंशकालिक काम का विकल्प चुनती हैं, तो उन्हें पदोन्नति नहीं मिलती है और मजदूरी में वृद्धि भी नहीं होती है, जो उनके पुरुष समकक्षों को मिलती है। इसलिए वे अपने बाकी काम पुरुषों की तुलना में कम मजदूरी के साथ करती हैं, जो समान कार्य करते हैं। यह कहा जाना ज्यादा उचित प्रतीत होता है कि वे कम वेतन पर काम करने को एक तरह से मजबूर कर दी जाती हैं, क्योंकि उन्हें अपना समय घर पर किये गए अवैतनिक कार्य के लिए भी देना पड़ता है, जबकि पुरुष कर्मचारियों के लिए ऐसी कोई बाध्यता नहीं है।

महिलाओं ने सैकड़ों वर्षों से इन सामाजिक परिस्थितियों के खिलाफ लड़ाई लड़ी है। महिलाओं के नेतृत्व में किए गए संघर्षों ने श्रम और मानवाधिकारों पर कई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की स्थापना भी की है। **ट्राईकॉन्टिनेंटल: इंस्टीट्यूट फॉर सोशल रिसर्च** में ऐसे संघर्षों और उनका नेतृत्व करने वाली महिलाओं की कहानियां बताई गई हैं। एल्बा मोविमिएंतोस (*ALBA Movimientos*) के सहयोग से तैयार किए गए उनके नवीनतम प्रकाशनों में से एक को **क्रिसलिस: लैटिन अमेरिका और कैरेबियन से नारीवादी यादें** के नाम से प्रकाशित किया गया है। इस प्रकाशन में उन्होंने निकारागुआ की अर्लेन सिउ (1955-1975), ब्राजील की डोना नीना (बी। 1949), और 1980 में स्थापित बोलीविया की किसान महिलाओं के बार्टोलिना सिसा राष्ट्रीय परिसंघ (जिनके सदस्यों को लास बार्टोलिनस के रूप में जाना जाता है) पर प्रकाश डाला हैं। इनमें से प्रत्येक महिला और उनके संगठन, असमानता की दयनीय सामाजिक स्थितियों के खिलाफ वैश्विक लड़ाई का हिस्सा रही हैं। यह अर्लेन, डोना नीना और लास बार्टोलिनस जैसी महिलाएं हैं जिन्होंने आर्थिक स्वायत्तता के लिए महिलाओं की मांगों को लेकर विश्व महिला रैली का मसौदा तैयार किया है। वे मांग करती हैं कि:

1. दुनिया भर में बिना किसी भेदभाव (राष्ट्रीयता, लिंग, अक्षमता आदि), बिना किसी उत्पीड़न, गरिमामयी सम्मान के द्वारा सुरक्षित और स्वस्थ कामकाजी परिस्थितियों के साथ रोजगार के लिए सभी श्रमिकों (घरेलू और प्रवासी श्रमिकों जैसे कमजोर श्रमिकों सहित) के अधिकारों की रक्षा की जाए ।
2. सभी को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार (जिसमें बीमारी, विकलांगता, मातृत्व और पितृत्व अवकाश, और सेवानिवृत्ति के मामले में आय हस्तांतरण शामिल है) दिया जाए, जो सभी महिलाओं और पुरुषों को जीवन की एक अच्छी गुणवत्ता प्रदान करने की अनुमति देता है।
3. महिलाओं और पुरुषों के लिए समान काम के लिए समान वेतन तथा ग्रामीण क्षेत्रों में काम के पारिश्रमिक का ध्यान रखा जाए।
4. वे मांग करती हैं एक उचित न्यूनतम वेतन की जो उच्चतम और निम्नतम वेतन के बीच के अंतर को कम करता हो और श्रमिकों को अपना और अपने परिवार का पालन पोषण करने योग्य बनाता हो। उनकी मांग में यह भी शामिल है कि सरकारें ऐसे कानून लाये जो की सभी भुगतान किए गए कार्यों (सार्वजनिक और निजी) और सार्वजनिक सामाजिक भुगतानों के लिए एक संदर्भ के रूप में स्थापित किया जा सके। उपक्षेत्रों या

क्षेत्रों के लिए न्यूनतम मजदूरी और सामान्य मूल्यों के स्थायी मूल्यांकन की नीति का निर्माण या सुदृढ़ीकरण करना भी उनकी कई मांगो में से एक हैं।

5. कम ब्याज ऋण, वितरण और व्यावसायीकरण के लिए समर्थन और स्थानीय ज्ञान और प्रथाओं के आदान-प्रदान के साथ एकजुटता, अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का काम करती है, अतः इन महिलाओं की ये मांगे जायज़ प्रतीत होती हैं।
6. भूमि, बीज, पानी, तथा प्राथमिक सामग्री तक महिलाओं की पहुंच और कृषि, मछली-पालन, पशुपालन एवं हस्तकला में उत्पादन और व्यावसायीकरण के लिए सभी आवश्यक सहायताएँ भी महिलाओं को हासिल होनी चाहिए।
7. घरेलू और देखभाल के काम का पुनर्गठन इस तरीके से किया जाना चाहिए ताकि इस काम की जिम्मेदारी एक परिवार या समुदाय के भीतर पुरुषों और महिलाओं के बीच समान रूप से साझा हो । इसे एक वास्तविकता बनने के लिए, हमें सामाजिक पुनरुत्पादन (जैसे क्रेच, सामूहिक लॉन्ड्री और रेस्तरां, बुजुर्गों की देखभाल, आदि) के समर्थन के लिए सार्वजनिक नीतियों को बनाने की मांग करनी चाहिए, साथ ही साथ वेतन में कटौती के बिना काम के घंटे कम करने की मांग पर भी विचार किया जाना चाहिए।

ज़रूरत न केवल महिलाओं के आर्थिक योगदान को पहचानने और उन्हें महत्व देने की है, बल्कि उनके सामाजिक योगदान जैसे बच्चों, बीमार, और बुजुर्ग लोग की देखभाल, अन्य गतिविधियाँ जो महिलाएँ परिवार और समुदाय के लिए करती हैं, उन्हें भी चिन्हित करके उसके महत्व को समझने की है तभी हम पूर्ण रूप से एक लैंगिक-समानता वाले समाज का निर्माण कर पाएंगे ।

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 7011579859

ईश्वरीय सम्प्रत्य

—डॉ. शुचिता शर्मा—

"ईश्वर" का अर्थ आध्यात्मिक और धार्मिक विचारधाराओं के अनुसार भिन्न हो सकता है, लेकिन यह एक उच्च शक्ति या परमात्मा की प्रतीति करता है, जो सृष्टि और उसकी दिशा को नियंत्रित करता है।

न रूप, न आकार, रंग, गंध, स्वर सबसे परे, केवल अनुभूति एक दिव्य ऊर्जा की। वो ऊर्जा जिसकी अनुभूति असीम आनन्द से पूर्ण ओज से पूर्ण आह्लादित करने वाली, लेकिन उस अनुभूति को अनुभव करने के लिए ध्यान की आवश्यकता है। अपने मन मस्तिष्क शरीर को उसमें लीन करने के लिए तैयार करना होगा। वो तैयारी अथक प्रयास से आयेगी, प्रयास ध्यान का, एकाग्र होने का, उस परमात्मा का अनुभव करने का। ईश्वर का रूप गढ़ना कलाकार का काम था। कलाकार के गढ़न के पहले क्या था। अरूप था जिसका हमने मनन किया। बाद में कलाकारों ने रूपों का गढ़न किया और ईश्वर मानव रूपों में बिंध कर रह गया। रूप के आकार अधिकतर सीमित रह गये, जबकि उस परमपिता की सीमा न थी। वो अनन्त है, वो व्याप्त है, नाम से परे, रूप से परे, किसी धर्म से परे। हमने उसे रूप, आकार, नाम, स्थान, धर्म से बाँध दिया। हमने वह कोशिश की, जो हमारे करने योग्य थी ही नहीं, लेकिन की। उसे सीमित कर दिया अज्ञानता के चलते, जबकि वो तो हर जगह व्याप्त है। उसका न जन्म हुआ और न मृत्यु, लेकिन हमने ये सब किया। उसका जन्म भी किया और मृत्यु भी की। बहुत कुछ प्रकृति से विपरीत किया, लेकिन अब फिर से उसे वापस किया जा सकता है। पुनः उसे खोजा जाये रूप, आकार, नाम, स्थान, धर्म से परे। सिर्फ उसे खोजा जाये अपने भीतर। अपने भीतर उसे अनुभव करने की आवश्यकता है। थोड़ी मेहनत करनी होगी ध्यान के लिए, मन मस्तिष्क शरीर को तैयार करना होगा। ध्यान में प्रविष्ट करने की आवश्यकता होगी। वो ध्यान जहाँ ईश्वरीय अनुभूति होगी, आनन्द का नृत्य होगा, दिव्य व अलौकिक होगा। संवेदनशील होना होगा, विचारशून्य होना होगा। अब कैसे विचारशून्य हुआ जाये ? ये प्रश्न है, क्योंकि हमें तो आदत है विचारों में रहने की। हर समय अनावश्यक विचारों की शृंखला मन-मस्तिष्क को घेरे रहती है और उसी में हमें रहने की आदत भी है, फिर हम उससे निकलें कैसे? बस ये ध्यान से संभव है। धीरे-धीरे ध्यान में रहने की अवस्था आपको अनावश्यक विचारों से दूर रखेगी। विचारों की शृंखला टूटते ही आपको अनुभव होगा कि आप में मोह-माया की भी

कमी आ गई है। जब तक विचार न होंगे, आप निर्मल रहेंगे। क्योंकि मन को केन्द्रित करने का प्रथम सोपान ही विचार है। विचार शून्य होने का, ध्यान में शून्य हो जाओ, जहाँ शून्य की स्थिति होगी आनन्द होगा, वहीं ईश्वर की अनुभूति का आनन्द होगा। आप अपने विचार स्तर को ध्यान दें, स्तरों को कम करते जाइये, अपने मन को सीमित और सीमित करते जाइये, फिर धीरे-धीरे विचारशून्यता की ओर बढ़ें। निश्चय ही सफलता मिलेगी।

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8808419048

भारत और नारी

—ओजस शांडिल्य—

यह 21वीं शताब्दी है, आधुनिक युग है, अगर आज के विज्ञान या विशेष रूप से पश्चिमी खोजों की मानें तो हम पुरानी सभ्यताओं की अपेक्षा अधिक विकसित हुए हैं, संभवतः हर क्षेत्र में। परन्तु क्या वाकई हुए हैं, समाज और सामाजिक समरसता के स्तर पर भी? यह प्रश्न हृदय में तीर की भांति चुभता है, नहीं?

अगर आपका उत्तर 'नहीं' है, तो विचार कीजिये कि क्यों आज भी सरकार को नारी सशक्तिकरण हेतु भिन्न-भिन्न योजनाएं/सुविधाएं जैसे- 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', 'स्वाधार गृह', 'नारी शक्ति केंद्र', 'निर्भया', आदि बनानी/देनी पड़ती हैं? क्यों उनकी सुरक्षा के लिए महिला पुलिस स्वयंसेवकों की आवश्यकता पड़ती है? क्यों उन्हें शिक्षा तक प्राप्त करवाने के लिए विशेष कार्यक्रम चलाने पड़ रहे हैं? क्या यह समाज की सामान्य व्यवस्था का स्वतः ही अंग नहीं होना चाहिए था?

एक और प्रश्न उठता है, आखिर स्त्रियों के साथ यह भेदभाव, उनका शोषण भारतीय समाज में कब से व्याप्त है? यह प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसका उत्तर भी, क्योंकि भारतीय समाज में इन सुधारों को इस रूप में रखा जाता है जैसे कि ये व्याधियां भारतीय समाज में इसके प्रारम्भ से ही व्याप्त रही हों।

समाज में नारी का जो स्थान भारत में रहा है और जैसे उसके उदाहरण और प्रमाण मिलते हैं वैसे शायद ही विश्व के किसी और सभ्यता या राष्ट्र में मिलते हैं। सहस्राब्दियों की भारतीय सभ्यता में इसके प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं कि भारत में कभी सामाजिक व्यवस्थाएं भी नारीसत्तात्मक थीं।

सम्मान का संस्कार भारत में कुछ ऐसा है कि यह सजीव मात्र का ही नहीं होता अपितु निर्जीव का भी होता है। इनमें से अधिकाँश का सम्बोधन स्त्रीलिंग है और उपमा 'माँ' की है, जैसे- प्रकृति, धरती, वर्षा, नदी, विद्या, आदि। यह नारी के प्रति सम्मान का भाव नहीं तो और क्या है ?

यदि संपूर्ण भारतीय इतिहास को तनिक गहनता से देखें तो यह जाना जा सकता है कि भारत में नारी की स्थिति पूर्व में क्या रही है और आज क्या है? इससे कदाचित यह भी समझ सकें की क्यों है?

प्राचीन भारत में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है की नारी का स्थान समाज में न केवल पुरुषों के समतुल्य था, अपितु उनसे ऊपर था। विद्वान स्त्रियों के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला शब्द था 'विदुषी'। हमारे वेदों में ऐसे कई श्लोक हैं जो समाज में नारी के स्थान और उसके सम्मान की पुष्टि करते हैं।

ऋग्वेद के श्लोक 6.61.2 का भावार्थ है –

> "ओ विदुषी नारी, जिस प्रकार एक नदी शक्तिशाली पर्वतों और चट्टानों को तोड़ देती है उसी प्रकार एक विदुषी नारी मात्र अपनी बुद्धि/ ज्ञान के प्रयोग से सभी मिथकों और दुष्प्रचारों को नष्ट कर देती है।"

ऋग्वेद के श्लोक 2.41.17 का भावार्थ है –

> "समाज का पूरा अस्तित्व एक विदुषी नारी पर निर्भर करता है। आप हमें ज्ञान प्रदान करें और पूरे समाज को भी ज्ञान प्रदान करें।"

इसी प्रकार ऋग्वेद के श्लोक 2.41.16, 6.49.7, 6.61.3 के भावार्थ का सार यह बतलाता है की कैसे नारी से यह याचना की जा रही कि चूँकि वो हमारे चरित्र को पवित्र करती है, उसमें दिव्य गुण हैं, वो अन्नदात्री है, उसके बिना हमारा अस्तित्व बिखरा हुआ है, इसलिए वो हमारे अंदर की बुराइयों को नष्ट करे, हमें वेदों का ज्ञान प्रदान करे, वो हममें वैसे ही ज्ञान का प्रवाह करे जैसा की नदी में जल का होता है।

ऋग्वेद के श्लोक 7-96-3 का भावार्थ है –

> "विदुषी, कुलीन नारी समाज में सुख ही सुख लाती है। वो हमें जानकार और सतर्क बनाती है। वो यज्ञ के मन्त्रों की तरह हमारा मार्गदर्शन करती है और हमें दुनिया की चीज़ों का उपयोग करना सिखाती है।"

अथर्ववेद के श्लोक 7-57-1 का भावार्थ है –

> "जब भी मैं विश्व की संकीर्णता या दूसरों की नासमझी से आहत होता हूँ तो एक विदुषी मेरे घावों पर मरहम लगाती है।"

ऐसे ही और भी कई प्रमाण ऋग्वेद से ही नहीं, अपितु अथर्ववेद और यजुर्वेद से भी मिलते हैं। ये मात्र विदुषी नारी का ही सम्मान और उसकी शक्तियों या उससे याचना का वर्णन नहीं करते अपितु उसकी शिक्षा के विषय में भी बताते हैं। ये यज्ञ में नारी की महत्ता और नारी के शौर्य का भी वर्णन करते हैं।

हमारे वेदों में अनेक विदुषियों के नामों का भी वर्णन है और उनकी महिमा का भी जैसे- काथी, कलापी, बहविसी, घोषा, लोपमुद्रा, इंद्राणी आदि। हमारे उपनिषदों में भी अनेक विदुषियों का वर्णन है जैसे - सुलभा, मैत्रेयी, गार्गी, आदि। हरितास्मृति में ब्रह्मवादिनी नामक महिलाओं के एक वर्ग का उल्लेख मिलता है जो अविवाहित रहती थीं एवं अपना जीवन अध्ययन और अनुष्ठान में व्यतीत करती थीं।

पाणिनि द्वारा आचार्य और आचार्यिणि, उपाध्याय और उपाध्यायिनी में अंतर बताना यह इंगित करता है की नारियां केवल विद्यार्थी ही नहीं हो सकती थीं अपितु शिक्षिका भी हो सकती थीं।

भारत में नारी को 'शक्ति' की संज्ञा दी जाती है। आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व में ईरान के हख़मनी वंश के राजाओं के आक्रमण से लेकर अंतिम मुग़ल शासक तक भारतीय इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है। यूनान का रक्त पिपासु सिकंदर जब फारस जैसे साम्राज्य को तहस-नहस कर भारत की ओर बढ़ता है तो इसकी बाहरी सीमाओं पर ही उसका सामना अष्वाकों से होता है। अष्वाकों के पास बीस हजार घुड़सवारों की सेना थी। सिकंदर से युद्ध में अश्वाक राजा 'अश्वाक्यन' जिसे 'असाकेनोस' या 'असाकेनस' के नाम से भी जाना जाता है, की मृत्यु के उपरान्त सेना की कमान अश्वाक रानी क्रुपा ने संभाल ली । कुछ इतिहासकारों का यह भी मानना है कि रानी क्रुपा ने सिकंदर को समझौते कि लिए विवश कर दिया था। यह ध्यान देने वाली बात है कि रानी क्रुपा ने सेना की कमान सम्हाली थी और युद्ध लड़ा था न की सती हुई थीं और वो भी आज से दो हजार वर्ष से भी अधिक पहले।

मेगस्थनीज़ ने अपनी पुस्तक में स्त्री योद्धाओं का वर्णन किया है, जो सम्राट चन्द्रगुप्त के महल की रक्षा करती थीं। वहाँ से लेकर रानी नाइकी देवी जिन्होंने मुहम्मद गोरी को हराया, रानी दुर्गावती, रानी रुद्रमादेवी, कित्तूर की रानी चेन्नम्मा, रानी पद्मावती, रानी वेलु नाच्चियार जिन्हें वीरमँगाई के नाम से भी जानते हैं, कलाड़ी की रानी चेन्नम्मा, अक्कादेवी, रानी भाबनि, माई भागो या माता भाग कौर, अहिल्याबाई होल्कर, महारानी ताराबाई, गढ़वाल की रानी कर्णावती जिन्हें नक्कट्टी रानी के नाम से भी जानते हैं क्योंकि उन्होंने नजाबत खान के नेतृत्त्व में भेजे गए शाहजहां के तीस हजार सिपाहियों की नाक कटवा कर उन्हें जीवन दान दिया था, महारानी लक्ष्मीबाई, और ऐसे ही न जाने कितने नाम, जिन्हें लिखते-लिखते शायद पन्ने कम पड़ जाएंगे भारत में नारी शक्ति और सम्मान की गाथा को गर्व से सुना रहे होते हैं। यह ध्यान देने योग्य है की ऐसी सहस्त्रों वीरांगनाएं और विदुषियां हैं जिन्होंने भारत के गर्व को ऊँचा रखा, भारत में नारी सम्मान और उसकी शक्ति का प्रमाण दे रही होती हैं। परन्तु इनमें से अधिकाँश के बारे में हमें पढ़ाया ही नहीं जाता। ध्यान देने योग्य बात यह भी है की इनमें से कोई भी सती

नहीं हुई, वो कुप्रथा जिसका कलंक भारत के माथे पर लगाया जाता है कि यहां सदियों से व्याप्त रही है।

"फूट डालो और राज करो", भारत में फिरंगियों के वैमनस्यतापूर्ण, क्रूरतापूर्ण और कायरतापूर्ण शासन का दौर आया, भारत में अनेक विसंगतियों के विषय में लिखा गया और पढ़ा-पढ़ाया गया। पर ये नहीं पढ़ाया गया कि भारत में मुग़लों के आने से पूर्व विश्व की अर्थव्यवस्था में भारत का हिस्सा 25 प्रतिशत से भी अधिक था और फिरंगियों के आने से पूर्व लगभग 23 प्रतिशत था। यह भी नहीं पढ़ाया गया कि जिस समाज में नारी इतनी शोषित और पीड़ित थी वो इतना समृद्धशाली, इतना ज्ञान, विज्ञान और अर्थ से परिपूर्ण कैसे था। कुछ स्रोतों की मानें तो मैकॉले के लिखे एक पत्र के कुछ अंश इस प्रकार हैं –

> "मैंने भारत भर में यात्रा की है और मैंने एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं देखा जो भिखारी हो, जो चोर हो। मैंने इस देश में इतनी संपत्ति देखी है, इतने ऊंचे नैतिक मूल्य और इतनी क्षमता वाले लोग, कि मुझे नहीं लगता कि हम इस देश को कभी जीत पाएंगे, जब तक कि हम इस देश की रीढ़ की हड्डी को नहीं तोड़ देते, जो इसकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत है, और इसलिए, मेरा प्रस्ताव है कि हम उसकी पुरानी और प्राचीन शिक्षा प्रणाली, उसकी संस्कृति को बदल दें, क्योंकि अगर भारतीय सोचते हैं कि जो कुछ भी विदेशी और अंग्रेजी है वह अच्छा है और उनकी अपनी संस्कृति से महान है, तो वे अपना आत्म-सम्मान, अपनी मूल आत्म - संस्कृति खो देंगे और वे वही बनेंगे जो हम उन्हें बनाना चाहते हैं, वास्तव में हमारे प्रभुत्त्व वाला राष्ट्र।"

क्या भारत, जैसा कि मकौले ने उसका वर्णन किया है बिना नारियों के योगदान के ही बन गया? और भारत में स्त्रियों के शोषण की कहानी उन्होंने सुनाई जो स्वयं को विश्व में सबसे ऊपर समझते थे, इतना कि स्वयं ही अपने नाम के आगे महान लगा लिया और बन गए "द ग्रेट ब्रिटेन", पर स्वयं अपने देश में स्त्रियों को मत डालने का भी अधिकार 1918 में जाकर दिया। पूरी शिक्षा पद्धति ऐसी बनाई कि हम अपनी संस्कृति से दूर होने के षड्यंत्र में फंसते जाएँ, आश्चर्य तो यह है की स्वतंत्रता के उपरान्त भी इसमें किसी विशेष सुधार का प्रयास नहीं हुआ। आश्चर्यचकित न होइए, क्योंकि अगर ऐसा न होता तो स्त्रियों के लिए इतने विशेष कार्यक्रम न चलाने पड़ रहे होते।

आज का वर्तमान कल के षड्यंत्रों से निर्मित हुआ है। षड्यंत्र इसलिए क्योंकि अगर षड्यंत्र न होता तो निर्भया न होता, वो भी उस देश में जहां नारी को दुर्गा माना जाता है। भ्रूण

हत्याएं न होतीं, वो भी उस देश में जहां नारी को जगदम्बा माना जाता है। दहेज़ के लिए हत्याएं न होतीं, वो भी उस देश में जहां नारी को लक्ष्मी माना जाता है। शिक्षा स्वतः ही व्यवस्था का अंग होती, न कि बालिकाओं की शिक्षा के लिए विशेष कार्यक्रम चलाने पड़ रहे होते, वो भी उस देश में जहां नारी को सरस्वती माना जाता है। नारियों का इतना अपमान न होता, वो भी उस देश में जहां नारी के सम्मान में वर्ष में दो बार नौ-नौ दिन का व्रत रखने का संस्कार हुआ करता था, और आज भी अपनी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में जीवित है।

किसी शिक्षा के मंदिर में कोई अधिकारी नारी के अपमान पर यह दृष्टिकोण न रखता कि "कोई भी कृत्य अशिष्टता, अभद्रता या अपराध इसलिए नहीं होता कि उस कृत्य का चरित्र क्या है अपितु इस बात से होता है कि जिस स्थान विशेष पर यह कृत्य किया गया वहां ऐसे कृत्य सामान्य हैं या नहीं" और कुतर्कों का सहारा न ले रहा होता। किसी नारी के साथ दुष्कर्म होने पर कोई मुख्यमंत्री यह नहीं कहता कि "लड़के, लड़के हैं---- उनसे गलती हो जाती है"। जिस देश की संस्कृति में विवाह के संस्कार को सात जन्मों का बंधन मानते हैं और उसे पूरी निष्ठा से निभाना जहां का संस्कार था, उस देश में "डाइवोर्स" जैसे व्यवहार का आगमन हो चुका है, "तलाक तलाक तलाक" और हलाला तो ऐसा हो गया है जैसे अत्यंत सामान्य व्यवहार हो, और कहाँ तो नारी को स्वयंवर का अधिकार था। राह चलते छींटाकशी तो आम बात है ही। विश्वास होता है क्या, ये वह देश है जहां नारी के सम्मान के लिए लंका जला दी गयी और महाभारत हो गई?

परन्तु कहते हैं न, जब जागो तभी सवेरा। षड्यंत्र तो बहुत हुए परन्तु संस्कारों का संपूर्ण विनाश कर सकने का सामर्थ्य नहीं था उनमें। इसलिए आज योजनाएं बन रही हैं, संस्कृति को पुनर्जीवित करने को दृढ़ संकल्पित होकर उन पर कार्य किये जा रहे हैं। समय लगेगा परन्तु केवल नए पौधे ही तो नहीं लगाने हैं बल्कि पुरानी, गहरी जड़ें जमा चुकी विष-बेलों को काटना और पूर्णतया नष्ट भी तो करना है। देश की व्यवस्था को सरकार और उसका प्रशासन तंत्र चलाते हैं। वर्तमान में जैसे कार्य किये जा रहे, उनसे यह आशा जगती है कि भविष्य सुखद और सुरक्षित होगा। नारी के लिए भारत पुनः वैसा होगा जहां वो पूज्य होगी, सम्मान की अधिकारिणी को उसका अधिकार प्राप्त होगा। और वैसे भी -

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।

सिस्टम मैनेजर (आई. सी. टी)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 9473531744

धर्म

—रीना पांडेय—

मैं एक बार अपनी एक पुरानी सहपाठिनी से मिली। जब हमारी आंखें मिलीं तो मैंने उसके मुख पर एक भाव देखा जो सुखद था, एक प्यारी सी मुस्कुराहट उस सुखद भाव को और भी अलंकृत कर रही थी। यह लक्षण प्रसन्नता के थे। व्यक्ति अपने जीवन में किसी भी परिस्थिति में हो उसका व्यवहार उसकी परिस्थिति को परिलक्षित कर रहा होता है। प्रसन्नता के अपने लक्षण हैं और अप्रसन्नता के अपने। सुख के अपने लक्षण हैं और दुःख के अपने।

कोई व्यक्ति जीवित है या मृत, यह जानने के लिए कुछ लक्षणों पर ध्यान देते हैं, अन्यथा दिन भर के अथक परिश्रम के उपरान्त सुषुप्तावस्था की सबसे अंतिम और सुखद अवस्था को प्राप्त एक व्यक्ति के आस-पास दुःख और रुदन के वातावरण का निर्माण एक अनोखी असहजावस्था को जन्म दे देगा।

मुर्गे की बांग और चिड़ियों की मन को गुदगुदा देने वाली चहचहाहट, वो प्राकृतिक लक्षण हैं जो संकेत करते हैं की भोर होने वाली है।

इसी प्रकार धर्म एक आचरण है और जैसा कि मनुस्मृति में वर्णित है। उसके अपने दस लक्षण हैं-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यं अक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम्॥

धृति अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम अर्थात् संयम, अस्तेय अर्थात् चोरी न करना, शौच अर्थात् पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह अर्थात् इन्द्रियों को सद्कर्म में लगाना, धी अर्थात् सद्कर्म, विद्या अर्थात् यथार्थ का ज्ञान, सत्यम अर्थात् सत्य का आचरण एवं अक्रोध अर्थात् क्रोध रहित होना।

आज धर्म को अंग्रेजी के शब्द रिलिजन से जोड़ा जाता है और उसी के अर्थ के रूप में देखा भी जाता है। हृदय पीड़ित हो उठता है। रिलिजन शब्द अंग्रेजी के लैटिन शब्द रेलीजियन्स से बना है और यह दो शब्दों से बनता है, एक 'रि' जिसका अर्थ है पुनः और दूसरा लिगारे जिसका अर्थ है बंधन। यह बंधन को दर्शाता है, इसका निर्माण कदाचित उस समय हुआ जब यूरोप में चर्च का शासन चलता था और लोगों का उसे ही मनाने को विवश किया जाता था। पुरानी फ्रेंच और जर्मन भाषाओं में भी रिलिजन शब्द का उद्धरण मिलता है।

परन्तु धर्म बांधता नहीं है, यह तो स्वतंत्रता प्रदान करता है, व्यक्तित्व को सुदृढ़ और आचार और विचार को आदर्श और संस्कार प्रदान करता है। पुत्र का धर्म माता-पिता के प्रति पुत्र को कर्तव्यनिष्ठ बनाता है, पिता का धर्म उसे उसके पुत्र और पुत्रियों के प्रति कर्तव्यनिष्ठ बनाता है, माता का धर्म तो स्वयं संजीवनी प्रदान करता है, पति-पत्नी का धर्म उन्हें एक दूसरे का परस्पर सहयोगी एवं जीवन का सहयात्री बनाता है, राष्ट्रधर्म राष्ट्र के प्रति कर्तव्यनिष्ठ बनाता है। और भी अनेक प्रकार के ऐसे धर्म हैं जो जीवन के आचरण का निर्माण करते हैं, व्यक्ति को उन्मुक्तता प्रदान करते हैं उस अकर्मण्यता से जो समाज के कल्याण में बाधक होती है।

आवश्यकता 'धर्म' और 'रिलिजन' के अंतर को समझने की भी है। धर्म कट्टरपंथी नहीं बनाता, यह मनुष्य को असहिष्णु, अज्ञानी, रूढ़िवादी, अंधविश्वासी या अनैतिक नहीं बनाता और यदि कोई कहीं इससे असहमत हो और यह कहे कि धर्म ऐसा करता है तो समझने कि आवश्यकता है कि यह धर्म नहीं है, हो ही नहीं सकता है। क्योंकि ये बातें, ये विचार धारणीय नहीं हैं।

धर्म तो एक ऐसी व्यापक अभिवृद्धि है जिसमें मात्र ज्ञानात्मक और भावनात्मक ही नहीं अपितु क्रियात्मक पक्ष भी निहित होते हैं। धर्म व्यक्ति के जीवन में निहित असुरक्षा के भाव को नष्ट करता है। कहा भी गया है:-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

अर्थात् "जो पुरुष धर्म का नाश करता है, धर्म उसी का नाश कर देता है। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। इसलिए मारा हुआ धर्म कभी हमको न मार डाले, इस भय से धर्म का हनन अर्थात् त्याग कभी न करना चाहिए।"

धर्म सद्कर्म है, कर्तव्य है, नैतिकता है, सदाचार है, संस्कार है और वही है जो धारण करने योग्य है। अत एव उच्यते:

धरती धारयति वा लोकं इति धर्मः॥

"मानवता की राह पर, चलना सबको साथ। मानव हैं पकड़े रहो, एक दूजे का हाथ॥
मानवता की राह पर, चलना सबको साथ। मानव हैं पकड़े रहो, एक दूजे का हाथ॥"

कार्यालय सहायक
के.उ.ति.शि. सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं. - 8765623681

कविता

—डॉ. रमेश चन्द्र नेगी (माथस)—

(1)

इम्तिहान[1]

चमन के फूल हो, आस्मां के सितारे।
उमंग हो मन में, तो मुश्किलें कुछ नहीं ॥ 1 ॥

उत्साह है उमंग है, बुलन्दियों को छू लें।
अभी नौजवाँ हो, चाँद तारे तोड़ लें ॥ 2 ॥

जीवन एक गुलिस्ताँ है, उसे सँवार लेना।
मुश्किलें जहाँ हैं, उन्हें सम्भाल लेना ॥ 3 ॥

इन्सां वही, जो मुश्किलों में जी ले।
जानवर क्या खाक जिया करते हैं ॥ 4 ॥

मन की ताकत को, अगर समझ लें तो।
मुश्किल नहीं है, आस्मां से आगे बढ़ना ॥ 5 ॥

ऐ नौजवाँ हमसफर ! बढ़ते ही जाना।
पीछे न मुड़ना, चलते ही जाना ॥ 6 ॥

रात-दिन एक ही, उम्मीदों में जीना।
पाना है मञ्जिल आगे है बढ़ना ॥ 7 ॥

अमन और चैन की, फिकर हमें तो है ही।
सारे जहाँ में, उसे बढ़ाते जाना ॥ 8 ॥

---

1. दिनांक 01.12.2003 ई. को माया देवी छात्रावास के छात्रप्रतिपालक रहते समय यह कविता परीक्षा के समय छात्रवास की छात्राओं के उत्साहवर्धन हेतु लिखी गयी थी।

हर घड़ी उम्मीदों में, जीना सीख लेना।
हर घड़ी इम्तहाँ है, आसाँ समझ लेना ॥ 9 ॥

(2)
नया साल मुबारक हो[1]

जीवन ये खुशनुमा सफर, दुःख के साये से हम दूर।
रहे सदा मन मौजी बन, नया साल मुबारक हो ॥ 1 ॥

बचपन का-सा सुखी रहे, सदाचार जीवन में लायें।
कदाचार से दूर रहें हम, नया साल मुबारक हो ॥ 2 ॥

इल्म की रोशनी बढ़े, भाई-भाई में प्यार बढ़े।
खुशियों की बौछार बढ़े, नया साल मुबारक हो ॥ 3 ॥

छोटे-बड़े का ध्यान रहे, समय की कदर को जानें।
महफिल सबों की बना रहे, नया साल मुबारक हो ॥ 4 ॥

गम के साये से दूर रहें, जीवन की हसरत को जानें।
क्षण-क्षण जीवन सफल बनें, नया साल मुबारक हो ॥ 5 ॥

अमन चैन की बारिश होये, हमसायों में फसाद न हो।
जीवन मूल्यों का होश रहे, नया साल मुबारक हो ॥ 6 ॥

(3)
सफलता कैसे प्राप्त करें [2]?

श्रम करें, परिश्रम करें
जीवन को सदा स्वस्थ रखें।

---

1. दिनांक 21.02.2004 ई. को यह कविता नववर्ष के अवसर पर मायादेवी छात्रावास के छात्रप्रतिपालक रहते हुये छात्राओं के लिए लिखी गयी थी।
2. दिनांक 29-04-2004 ई. को यह कविता परीक्षा के पूर्व छात्राओं के उत्साहवर्धन के लिए माया देवी छात्रावास के छात्रप्रतिपालक रहते हुए लिखी गयी थी।

समय का सदा सदुपयोग करें
सफलता की सदा दुआ करें ॥ 1 ॥

मेहनत मन से कर लोगे तो
सदा सफलता को चूमोगे।
सत्य को सदा पूजोगे तो
शान्त, दृढ़ सदा विश्वासी होंगे ॥ 2 ॥

मन में भय को जगह न देना
आलस को न पास आने देना।
अध्ययन में सदा समय बिताना
सफल रहोगे, सफल रहोगे ॥ 3 ॥

प्रधान संपादक (कोश-विभाग)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415698420

भारत माँ की बिंदी हिंदी

—दीपंकर—

तकनीकी, वाणिज्य, मार्केटिंग,
जन-जन की यह भाषा है।
भारत के चहुँमुखी विकास की,
वाहक हिन्दी भाषा है॥

ना दक्षिण का रोष रहा अब,
ना पूरब संकोची है,
पूरे देश में बोली जाती,
संघ की राजभाषा है॥

देवनागरी में यह लिपटी,
जैसा बोला वैसा लिखती,
जो लिक्खा है उसी को पढ़ती,
अति वैज्ञानिक भाषा है॥

राष्ट्रभाव का पोषण करती,
क्षेत्रभाव से सिंचित होती,
देववाणी से है यह उपजी,
भारत का प्रतिबिम्ब है॥

आज़ादी के आन्दोलन में,
एका की यह ग्रन्थि बनी।
क्रान्तिमान उद्दीप्त रोशनी,
शान्तिमार्ग की द्योतक है॥

कथा, संस्मरण और सम्पादन,
कविता, लेखन या आलोचन,
कोई विधा ना रही बची अब,
व्यापकता चहुँओर है॥

इस भाषा में काम करें हम,
गौरव का एक बोध लिए।
कम्प्यूटर या बैंक कागजात,
सबमें सक्षम है हिन्दी॥

हिन्दी जीती तो हम जीते,
यह संकल्प हमारा हो।
विश्व-गुरु का सपना अपना,
निज भाषा से पूरा हो॥

भारत-माँ की बिन्दी है यह,
लाज हमें ही रखनी है।
वक्त मिला है कुछ कर गुजरें,
देश की सेवा करनी है॥

वैयक्तिक सहायक (कुलसचिव कार्यालय)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415600692

ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी

—डॉ. विश्व प्रकाश त्रिपाठी—

रात की चादर को काली ओढ़कर,
आसमाँ हो चैन से सोया पड़ा,
और उसके अनगिनत तारों को मैं,
देखता जी भर रहूँ छत पर खड़ा।
ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी॥ 1॥

आम की बगिया में जेठी दोपहर,
पत्तियों के सूखे ऊँचे ढेर पर,
गुनगुनाती सी हवा की तान पर,
गीत कोई मैं बनाऊँ फिर कभी।
ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी॥ 2॥

शाम को गंगा के निर्मल घाट पर,
बस अकेले सीढ़ियों पर बैठ कर,
मुस्कुराती झिलमिलाती लहर पर,
चित्र कोई मैं बनाऊँ फिर कभी।
ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी॥ 3॥

अनगिनत से मन्दिरों के बीच से,
उम्र से लम्बी गुज़रती गली में,
बे-वजह बस यूँ हीं फिरते हुए,
अपने को फिर खोज पाऊँ मैं कभी।
ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी॥ 4।।

मानता हूँ तुम अभी मजबूर हो,
चाहकर भी आज हमसे दूर हो,
फिर कभी फ़ुरसत में थोड़ी देर ही,
ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी।
ज़िन्दगी मेरे लिये आना कभी॥ 5॥

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9455925269

इंसान बनके देख

(कविता)

—डॉ. सुशील कुमार सिंह—

गैरों के रंजोगम को पहचान करके देख।
छोड़ मतलबों की बात, तू इंसान बनके देख॥

इन जाति और मजहब के सारे बंधनों को तोड़।
इंसानियत के हर रिश्ते को इंसानियत से जोड़।
तू वेद, बाइबिल, गीता और कुरान बनकर देख।
छोड़ मतलबों की बात, तू इंसान बनके देख॥

बन सूर्य इस जहाँ के अन्धेरे को मिटाओ।
बन धार प्रेम का, सबके प्यास बुझाओ।
तू साहित्य, संगीत, दर्शन और विज्ञान बनके देख।
छोड़ मतलबों की बात, तू इंसान बनके देख॥

जीते तो हैं जहाँ में अपने लिए सभी।
उन तड़पती आँखों को देखा है क्या कभी।
जो बेबस, लाचार हैं, उनका सम्मान करके देख।
छोड़ मतलबों की बात, तू इंसान बनके देख॥

गर आ गई इंसान को इंसानियत यहाँ।
हर जर्रा चमक जायेगा, महकेगी ये धरा।
तू होली, क्रिसमस, वैशाखी, रमजान बनके देख।
छोड़ मतलबों की बात, तू इंसान बनके देख॥

सहायक प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8005304374

अधूरी-जिन्दगी

—अमित कुमार विश्वकर्मा—

जिन्दगी बड़ी अधूरी सी है एक दूजे के बिन।

जिन्दगी आधी-आधी सी तुम्हारी भी है
जिन्दगी आधी-आधी सी हमारी भी है
हमारे बिन तुम अधूरे, तुम्हारे बिन हम अधूरे
अधूरे न तुम्हें सुकून और न हमें चैन
फिर क्यूँ अधूरे हैं हम, पूछती है जिन्दगी।

आओ मिलकर अधूरे से अधूरे को जोड़ें हम
आओ एक जिन्दगी को पूरा बनायें हम।

पुरानी बात है कि घर में टूटा/अधूरा सामान नहीं रखते
फिर क्यूँ अधूरे होकर एक टूटा सामान बनें हम
आओ मिलकर अधूरे से अधूरे को मिलाएं हम
और एक जिन्दगी को पूरा बनायें हम।

जिन्दगी अधूरी है एक दूजे के बिन
एक दिन अधूरे-अधूरे ही चले जाना है
आओ इस अधूरे को पूरा बनायें हम।

अधूरी जिन्दगी पहाड़ है, जिसे काटना है मुश्किल
आओ साथ मिल कर इस पहाड़ को हटायें हम
आओ मिलकर सुकून से जिन्दगी बिताएं हम।

अधूरे जिन्दगी की राह है बहुत कठिन
दूर करके सारे गिले शिकवे
बैठकर पास निखार लो जिन्दगी
बहुत खूबसूरत है एक पूरी ज़िन्दगी
आओ साथ मिलकर बिताएं ये जिन्दगी।

कार्यालय सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8419020091

दैनिक उपयोग के शब्द

Above cited/said	उपर्युक्त
Acceded to	स्वीकार है
Acknowledgement	पावती
Action may be taken accordingly	तदनुसार कार्रवाई की जाय
Ad interim	अंतरिम
After discussion	विचार-विमर्श के बाद
Agenda	कार्य-सूची
Agreed to	सहमति है
Allotment	आबंटन
Anticipated	प्रत्याशित
Apart from this	इसके अलावा
Applicable to	पर लागू है
Approved as proposed	यथा प्रस्ताव अनुमोदित
As above	यथोपरि
As amended	यथा संशोधित
As a rule	नियमतः
As discussed	चर्चानुसार
As modified	यथा-आशोधित
Brought forward	अग्रेनीत
Confidential	गोपनीय
Priority	प्राथमिकता
Deduction at source	स्रोत पर कटौती
Discretionary Power	विवेकाधिकार
Duly verified	विधिवत सत्यापित
Ex gratia payment	अनुग्रह भुगतान
Ex parte Judgement	एकपक्षीय निर्णय
For approval	अनुमोदनार्थ, अनुमोदन के लिए
For compliance	अनुपालन के लिए, अनुपालनार्थ
For consideration	विचारार्थ

For early compliance	शीघ्र अनुपालन के लिए
For information only	केवल सूचना के लिए
Hard and fast rule	पक्के नियम
I agree	मैं सहमत हूँ
If deemed fit	यदि उचित समझें
In Toto	पूर्णतः
Later on	बाद में
May be considered	विचार किया जाय
Noted please	नोट कर लिया
On behalf of	की ओर से
On receipt of	प्राप्त होने पवर
Please advise	कृपया सूचित करें
Self-explanatory	स्वतः स्पष्ट
Ab intitio	प्रारंभ से
Ad hoc	तदर्थ
Ad volorem	मूल्यानुसार
Ante	पहले
Bonafide	सदासयी/वास्तविक
Corrigendum	शुद्धिपत्र
Defacto	वस्तुतः
De jure	विधितः
Dies non	अकार्य दिवस
Example ration (E.g.)	उदाहरणतया
Ex. Officio	पदेन
Past Facto	कार्योत्तर
Ipso Facto	स्वतः
Modus operandi	कार्य-प्रणाली
Prima facie	प्रथम दृष्टि में
Status quo	यथापूर्व स्थिति
Suo mote	स्वप्रेरणा से

•

पारिभाषिक शब्दावली

Abandon	परित्याग	Case	प्रकरण/मामला/विषय
Abatement	कमी	Caution	चेतावनी/सावधानी
Ability	योग्यता	Cemented	सुदृढ़
Abolish	समाप्त करना	Census	जनगणना
Abolition	नष्ट करना/उन्मूलन	Census	जनगणना
Academy	अकादमी	Child Rearing	शिशुओं का पालन-पोषण
Accede	सम्मिलित होना/मान लेना	Clause	खण्ड
Accrue	उत्पन्न होना/प्रोद्भुत	Colonization	उपनिवेशन
Accuse	अभियोग	Compensation	मुआवजा
Accused	अभियुक्त	Confiscate	जब्त करना/अधिग्रहण
Acquire	अर्जन करना/अधिग्रहण	Conversion	परिवर्तन
Adjourn	काम रोकना	Convocation	दीक्षान्त समारोह
Adjourn	स्थगित	Convocation	सभा
Administration	प्रशासन	Coordination	समन्वय
Adult	वयस्क/युवा	Debtor	कर्जदार/ऋणी
Allotment	वितरण/विभाजन/आवंटन	Deed	कार्य/विलेख
Annual	वार्षिक	Delegation	प्रतिनिधि मण्डल
Anomaly	असंगति, विषमता	Deputation	प्रति-नियुक्ति
Anticipatory Bail	अग्रिम जमानत	Discretion	विवेक
Appeasement	तुष्टिकरण	Discrimination	विभेद करना
Appellant	अपीलकर्ता	Dismiss	पदच्युत
Appendix	परिशिष्ट	Dismiss	पदच्युत करना
Appendix	परिशिष्ट	Disparity	असमानता
Appreciation	सराहना	Disposal	निपटरा/निष्पादन
Attitude	अभिवृत्ति	Dispute	विवाद
Bad Conduct	दुराचरण	Distinction	विभेद
Basic Pay	मूल वेतन	Emigrant	उत्प्रवासी
Biased opinion	पूर्वाग्रही मत	Endorsement	पृष्ठांकन
Bibliography	संदर्भ ग्रन्थ सूची	Enforce	प्रवर्तन
Bond	बंध-पत्र	Entertainment	मनोरंजन
Brochure	विवरणिका	Ethos	लोकाचार
Cabinet	मंत्रिमण्डल	Evolved	विकसित करना
Cadre	संवर्ग	Executive	कार्यकारी

Ex-Officio	पदेन
Explanatory	व्याख्यात्मक
Factor	कारक
Financial Grant	वित्तीय अनुदान
Forwarding Note	अग्रेषण टिप्पणी
Fundamental	मौलिक/आधारभूत
Grant	अनुदान
Interception	अवरोध
Interim Government	अन्तरिम सरकार
Interim report	अंतरिम रिपोर्ट
Interruption	व्यवधान
Investigation	खोज करना
Judicial	न्यायिक
Lapse	बीतना/नष्ट होना
Lockup	हवालात
Maintenance	रख-रखाव
Maltreatment	दुर्व्यवहार
Manifesto	घोषणापत्र
Manifesto	घोषणा-पत्र
Migrant	प्रवासी
Notification	अधिसूचना
Notified	अधिसूचित
Nutrition	पोषण
Oath	शपथ
Occupant	अधिभोक्ता
Offence	अपराध
Operation	कार्य/शल्य क्रिया
Opponent	प्रतिवादी
Ordinance	अध्यादेश
Orientals	पूर्व देशीय
Parole	अधिवचन
Part Time	अंशकालिक
Patent	एकस्वरूप
Pending	लम्बित
Persuade	समझना/मनाना
Petition	याचिका
Petition	याचिका/अपील
Preliminary	प्रारंभिक
Prima-Facie	प्रथम दृष्ट्या
Probation Period	परिवीक्षा काल
Probation	परिवीक्षा/परख
Promotion	पदोन्नति
Prompt Action	तुरंत कार्रवाई
Pros and cons	पक्ष-विपक्ष
Provisional	अनंतिम
Proviso	शर्त/परंतुक
Recoverable	वसूली योग्य
Recruitment rules	भर्ती नियम
Recurring Expenditure	अवर्ती व्यय
Recurring	आवर्ती
Recurring	आवर्ती
Rehabilitation	पुनर्वास
Reimburse	प्रतिपूर्ति करना
Report	प्रतिवेदन/सूचना
Sacramental Marriage	धर्म संस्थापित विवाह
Significant	महत्वपूर्ण
Specific	विशिष्ट
Speed Limit	गति-सीमा
Status quo	यथापूर्व स्थिति
Stipend	छात्रवृत्तिका
Subordinate	अधीनस्थ
Substandard	अमानक
Taxable	कर योग्य
Tenure	अवधि
Total service	कुल सेवा अवधि
Transportation	परिवहन
Tribunal	अधिकरण
Veto	निषेधाधिकार
Vigilance	सतर्कता

•

राजभाषा अधिनियम-1963 की धारा-3(3) के अन्तर्गत आने वाले दस्तावेज

1. संकल्प	8. संविदाएं
2. सामान्य आदेश	9. करार
3. परिपत्र	10. अनुज्ञप्तियां (License)
4. नियम	11. अनुज्ञा-पत्र (Permit)
5. अधिसूचनाएं	12. निविदा
6. प्रशासनिक एवं अन्य प्रतिवेदन	13. सूचनाएं
7. प्रेस विज्ञप्तियां	14. संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखे जाने वाले कागजात

उपर्युक्त समस्त कागज़ातों का द्विभाषी होना अनिवार्य है।

संविधान की अष्टम अनुसूची में मान्य भाषाएं-		
1. संस्कृत	9. मराठी	17. सिंधी
2. हिंदी	10. असमिया	18. मैथिली
3. मणिपुरी	11. बंगला	19. बोडो
4. कोकणी	12. उड़िया	20. संथाली
5. कन्नड़	13. तमिल	21. डोगरी
6. उर्दू	14. तेलुगु	22. कश्मीरी
7. गुजराती	15. पंजाबी	
8. मलयालम	16. नेपाली	

राजभाषा प्रयोग की दृष्टि से देश को निम्न तीन क्षेत्रों में बांटा गया है-	
'क' क्षेत्र	**उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, म.प्र., छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली एवं अंडमान निकोबार द्वीपसमूह।**
'ख' क्षेत्र	**पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात, केन्द्रशासित चण्डीगढ़, दमन-दीव एवं दादरा-नगर हवेली।**
'ग' क्षेत्र	**शेष सभी राज्य।**

भाषा से संबंधित कार्यक्रम

दिनांक 11 दिसम्बर, 2022 : आजादी के अमृत महोत्सव के क्रम में एक भारत (श्रेष्ठ भारत) की भावना के अनुरूप महाकवि सुब्रमण्य भारती की जन्म-जयन्ती के अवसर पर मेरी भाषा मेरा हस्ताक्षर अभियान के अतर्गत हस्ताक्षर करते हुए माननीय कुलपति प्रो. गेशे ङवङ् समतेन एवं साथ में सहायक प्रोफेसर डॉ. शुचिता शर्मा

भारतीय भाषा उत्सव के आयोजन के क्रम में मेरी भाषा मेरा हस्ताक्षर के बोर्ड पर संस्थान के कर्मचारियों एवं अधिकारियों के हस्ताक्षर

दिनांक 11 दिसम्बर, 2022 : आजादी के अमृत महोत्सव के क्रम में एक भारत (श्रेष्ठ भारत) की भावना के अनुरूप महाकवि सुब्रमण्य भारती की जन्म-जयन्ती के अवसर पर मंगलाचरण करती संस्थान की सहायक प्रोफेसर शुचिता शर्मा एवं सहायक प्रोफेसर डॉ. ज्योति सिंह

दिनांक 17 दिसम्बर, 2022 को आयोजित राजभाषा कार्यान्वय समिति की बैठक की अध्यक्षता करते हुए माननीय कुलपति प्रो. गेशे ङवङ् समतेन एवं सदस्य गण

दिनांक 17 दिसम्बर, 2022 को आयोजित राजभाषा कार्यान्वय समिति की बैठक में
पी.पी.टी. प्रस्तुतिकरण का एक दृश्य

दिनांक 19 दिसम्बर 2022 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय, श्री आर.के. मिश्रा एवं डॉ. सत्यप्रकाश पाल तथा विचार व्यक्त करते हुए सहायक कुलसचिव श्री प्रमोद कुमार सिंह

दिनांक 19 दिसम्बर 2022 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में सहभागिता करते संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी गण

दिनांक 19 दिसम्बर 2022 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में अध्यक्षीय सम्बोधन करते हुए कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय

दिनांक 4-5 मार्च, 2023 को आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'बुद्ध की धरती पर कविता' के मंचासीन विद्वत् गण

दिनांक 4-5 मार्च, 2023 को आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'बुद्ध की धरती पर कविता' के मंच का एक दृश्य

दिनांक 4-5 मार्च, 2023 को आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी 'बुद्ध की धरती पर कविता' में विचार व्यक्त करते हुए प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी

दिनांक 3 मार्च, 2023 को आयोजित केदारनाथ सिंह सम्मान समारोह के अवसर पर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा प्रकाशित राजभाषा पत्रिका बोधिप्रभ का लोकार्पण करते माननीय कुलपति प्रो. गेशे ङवङ् समतेन

दिनांक 3 मार्च, 2023 को आयोजित केदारनाथ सिंह सम्मान समारोह के अवसर पर माननीय कुलपति प्रो. गेशे ङवङ् समतेन को स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी

दिनांक 15.03.2023 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में दीप प्रज्ज्वलित करते श्री आर.के. मिश्र एवं साथ में प्रो. उमेशचन्द्र सिंह तथा प्रो. सत्यपाल शर्मा

दिनांक 15.03.2023 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन प्रो. सत्यपाल शर्मा, डॉ. रामसुधार सिंह, प्रो. उमेशचन्द्र सिंह एवं श्री प्रमोद सिंह तथा संचालन करते हुए डॉ. अनुराग त्रिपाठी

दिनांक 15.03.2023 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन विद्वद् गण

दिनांक 15.06.2023 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में कुलसचिव डॉ. सुनीता चन्द्रा को स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए प्रलेखन अधिकारी श्री आर.के. मिश्र

दिनांक 15.06.2023 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में सहायक प्रोफेसर डॉ. सत्यप्रकाश पाल को स्मृति चिह्न प्रदान करते हुए सहायक कुलसचिव श्री प्रमोद सिंह

दिनांक 15.06.2023 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन विद्वद् गण एवं संचालन करते हुए सहायक प्रोफेसर डॉ. अनुराग त्रिपाठी

दिनांक 15.06.2023 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में विचार व्यक्त करते हुए डॉ. सत्यप्रकाश पाल

दिनांक 27 जून, 2023 को आयोजित राजभाषा कार्यान्वय समिति की बैठक में अध्यक्षता करते हुए माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

दिनांक 27 जून, 2023 को आयोजित राजभाषा कार्यान्वय समिति की बैठक में पी.पी.टी. के माध्यम से समीक्षा करते हुए

दिनांक 28 जुलाई, 2023 को आयोजित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में माननीय कुलपति एवं सदस्यगण

दिनांक 28 जुलाई, 2023 को आयोजित नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक में सदस्य सचिव, नराकास, वाराणसी द्वारा ऑनलाइन पी.पी.टी. का प्रस्तुतीकरण

राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का स्वायत्त संस्थान

NATIONAL ASSESSMENT AND ACCREDITATION COUNCIL

An Autonomous Institution of the University Grants Commission

Certificate of Accreditation

The Executive Committee of the
National Assessment and Accreditation Council
is pleased to declare
Central Institute of Higher Tibetan Studies
(Deemed to be University u/s 3 of the UGC Act, 1956)
Mavaiya, Sarnath, Varanasi, Uttar Pradesh as
Accredited
with CGPA of 3.10 on four point scale
at A grade
valid up to October 25, 2027

Date : October 26, 2022

Director

EC(SC)/128/2nd Cycle/UPUNGN10015

2023
SENIORS'
Seniors' Farewell Gathering